

अद्वैत काव्य विचार

राजेश भुतकर

अत्यंत जाज्वल्य आणि क्रांतीकारी अद्वैत विचार
ज्यामुळे जीवनाकडे पाहण्याचा दृष्टीकोन
सर्वोच्च पातळीवर जाण्यास मदत होईल.

काव्य-सूची

1. विनम्र आवाहन...	16
2. श्री गुरु शरण प्रार्थना	17
3. काव्य स्फुरावे...	20
4. कृपा	21
5. जोहार.....	23
6. संतमय व्हावी काया.....	24
7. पाहता श्रीगुरुदेवा तुम्हा.....	25
8. जिथे जाशी.....	27
9. वडवानल.....	29
10. निरोप त्याचां.....	30
11. तूच ईश्वरा.....	32
12. पाहता मी आकाशा.....	33
13. घ्यावे नाम देवाचे.....	34
14. प्रसंग युद्धाचा.....	35
15. सामर्थ्य दे.....	36
16. साध्य तुला रे सर्व ईश्वरा.....	37
17. मीच पोरका मला इथे हा.....	38
18. भावद्वंद्व.....	39
19. रामनामामृत हे प्याहो.....	41
20. सकल मायेची महामाया.....	43
21. मांडीयेला ग माये.....	45
22. हरी माझी माता.....	46
23. उन्ह तापले तापले.....	47
24. आकाश	48
25. सृजनत्वाचे व्रत	49
26. अमृत नाव.....	50
27. गंध तुझा	51
28. सांत अनंत	52
29. सावळ सुंदर.....	54
30. ओ मेरे प्रीतम प्यारे.....	55
31. व्हावी ऐसी कृपा.....	57
32. शब्द माझे फुल.....	59
33. एनकैश.....	60

34.	वेगळेपणा...	61
35.	दृष्टांत...	63
36.	तुझं असं येणं...	65
37.	काटेरी वाट...	66
38.	सरण	69
39.	अस्वस्थता...	71
40.	कुठे हा आत्मा...	72
41.	रे मना...	74
42.	कधीच नाही...	76
43.	म्हणे माझा श्री गुरु रामदासी	77
44.	राम राम बोल राम नाम	78
45.	व्यक्त ते अव्यक्त	79
46.	निश्चयाचा महामेरू	81
47.	“मी” पणा आणि मी	85
48.	अनंतयात्रीचा झंझावात.....	87
49.	सम्मान किजीये	88
50.	आईचे नाव....	90
51.	श्रीरामप्रभु मुझे ऐसे मिल जावे	92
52.	अनहद नाद...	93
53.	रूथलेसनेस	94
54.	आमच्या हातून...	96
55.	आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी...	97
56.	कठपुतली	99
57.	अनिर्वचनीय मद्स्वरूप	101
58.	उद्दात्त उद्दिष्टे गाठताना ...	102
59.	एक अनोखा दीपोत्सव	103
60.	विपर्यस्त... वास्तव	104
61.	कुठेच नसलेल्या गावामध्ये...	106
62.	गुलाम बन के उन पांचो का	108
63.	सत्वपरीक्षा	109
64.	गूढ असे त्या विश्वाचे...	110
65.	सौंदर्य रहस्य	111
66.	जो कुछ...	113
67.	सावन आया रे सखी री..	114
68.	कर्ता कर्ते को देखता है...	115

69.	मकसद....	117
70.	ज्ञानाचा दिवा...	119
71.	भेट तिची....	120
72.	सखीरी मै तो...	122
73.	मनमोहना...	123
74.	तू योगियांचा योगी....	124
75.	ज्ञानियाची आस	126
76.	परिस स्पर्श	127
77.	मी कोण कुठला...	129
78.	प्रकाश मी...	130
79.	शून्य अहंभावाच्या उंबरठ्यावर	132
80.	तो मृत्यू जगतो...	133
81.	वचन होते दिलेस तू....	134
82.	परक्या जाणीवा	137
83.	प्राणेश्वरा जगदीश्वरा	139
84.	गुढत्वाचे गूढ...	141
85.	बुद्ध्याविष्कार	143
86.	मार्दवता शोधतो मी.....	144
87.	कलियुगाचे नाव..	146
88.	मी...	148
89.	मैं ना मालिक कहलावू रे	149
90.	रंग नको टाकुस....	151
91.	कसा साधावा परमार्थ...	153
93.	आपके लिये...	157
94.	स्वप्न कसे पाहिले...	158
96.	दीपोत्सव	161
97.	अनिर्वचनीयतेच्या पलीकडे	162
98.	हे कवीमना...	163
99.	तृष्णा	164
100.	मृत्यूदान	165
101.	Universe And Me	167
102.	The mystery of this self realization	168
104.	I am the space...	169
105.	अद्वैत स्वरूप दर्शन	170
106.	जे जे भेटे भूत	173

107.	सप्तपदी.....	175
108.	साज शृंगार....	176
109.	रुखसत लेता हूं.....	178
110.	का रे का रे कागा.....	179
111.	आज्ञाद जिंदगी.....	181
112.	विवेके जाणीले मी.....	182
113.	तू एक ओमकार.....	183
114.	तू मेरा पिता.....	184
115.	तव विन्मुखतेपरि विष चांगले.....	185
116.	सुंदर हा सारंगपाणि.....	187
117.	सखीरी मै तो शाम की भई री.....	189
118.	काया.....	190
119.	परब्रह्म मायबाप.....	192
120.	कर्ता नका बोलू.....	194
121.	In this so called Human Society	196
122.	आईचे एक गाव असतं.....	197
123.	ऐसे पहाता ते विश्व.....	198
124.	नीर नयनो बहे.....	199
125.	मदमायेचे भव मद्य प्राशुनी.....	200
126.	जाऊ जेव्हा.....	201
127.	हरी संग.....	202
128.	नीत नीत शरण.....	203
129.	फुलांचा रंग तुझ्या.....	204
130.	मंगलाहून मंगल.....	205
131.	राम सांग मज राम ग.....	206
132.	वर्षाव झाला.....	207
133.	माई मोको होली खेलन की आंस.....	208
134.	परमानंद प्रशांत पद.....	210
135.	शब्दब्रह्म.....	211
136.	शब्द.....	212
137.	सखा मित मेरे.....	213
138.	री माई मोसे हरिहर ना बिसारे.....	214
139.	चोख प्रचिती.....	215
140.	तुकयाची गाथा.....	216
141.	श्रद्धेच्या पलीकडे.....	217

142.	चोरी झाली	219
143.	जाऊ पंढरीला.....	223
144.	विवेक माझा भ्रतार.....	224
145.	संसाररुपी आखाड्यात.....	226
146.	या अनाम गावी.....	228
147.	नामा तू आमुचा शिंपी	230
148.	घट घट वासी.....	231
149.	प्रतिपालक तू.....	233
150.	मन हताश हताश	235
151.	मेरी मां.....	236
152.	तव चरण रज कण ते उठले.....	237
153.	भवरोग उतारा.....	238
154.	श्वास.....	239
155.	अजनबी.....	240
156.	ये ग माझे माई.....	242
157.	कन्यादान.....	244
158.	अंतर्बाह्य मी व्हावे आकाश.....	246
159.	जगद मिथ्या.....	247
160.	भेटल्या एकदा.....	248
161.	जन्मों का प्यासा... ..	250
162.	ओढी जो चुनरी.....	251
163.	प्रतिपाले तू.....	252
164.	या स्वरांनो आर्त व्हा.....	253
165.	तुझे एक नाम.....	254
166.	नाम ज्याचे ओठी.....	256
167.	करू तुझे गं ध्यान... ..	257
168.	मन मैला.....	258
169.	शून्यत्व मागतो मी.....	259
170.	राखे तू... ..	261
171.	बिरहा बिरहा	262
172.	नेती नेती.....	263
173.	म्या जीवरूप मी ब्रह्मरूप	264
174.	साक्षी चैतन्य.....	265
175.	अनंत अपार या ब्रह्मांडी.....	266
176.	स्त्रीशक्ती वंदना	267

177.	ज्ञानियाचे चित्त.....	268
178.	जागला गं जागला...	269
179.	रोम है जितने...	270
180.	मन पवित्र सुंदर...	271
181.	साक्षी चैतन्य.....	272
182.	अनंत संत अवस्था.....	273
183.	श्रीराम-सीता कर्तव्य दर्शन.....	274
184.	हे ५५ गोविंद हे ५ गोपाळ.....	277
185.	विठ्ठलाने घेतली भक्त पुंडलीकाची आण /शपथ...	278
186.	हीच एक आस.....	279
187.	समरथ है श्री नानकदेव गुरुबाणी,	280
188.	प्रभ पाया	282
189.	कमल नयन विशाल अतिसुंदर.....	283
190.	मै चातक जनमों का प्यासा	284
191.	विश्व कणांनो...	285
192.	प्रार्थना.....	286
193.	सभै रचना तेरी.....	287
194.	पहाणे.....	288
195.	प्रभु दर्शन प्यास बुझा पंचसखी री	289
196.	प्रित जुडी.....	290
197.	घन जलद सावळा	291
198.	प्रसंग युद्धाचा.....	292
199.	पारब्रह्म परमेश्वर.....	293
200.	जे जे भेटे भूत.....	294
201.	तेज प्रखर	295
202.	प्रिय बोल सखी री.....	296
203.	चल शोधू तिथे.....	297
204.	जरी मी आहे इथला.....	298
205.	मन पवित्र सुंदर सुंदर.....	299
206.	अज्ञानी मी असा.....	300
207.	जीवन वास्तव प्रखर	301
208.	लुटले लुटले.....	302
209.	रखो राखणहारे	303
210.	बिरहनिया.....	304
211.	प्राण सख्या श्रीरामा	306

212.	मी अनाथ ...	307
213.	येळकोट...	308
214.	श्रीराम हृदयी पाहिले...	309
215.	स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे	310
216.	श्री गुरु सन्मुख...	311
217.	निर्गुण समाधी	312
218.	मनोकमल...	313
219.	निरागस तू निरागस मी ही	314
220.	Lets have a feeling	315
221.	खुल खुल जाए	316
222.	भगवंत तू माझा भगवंत तू	317
223.	कोण हा मी?	318
224.	कठपुतली ओळखली	320
225.	देवपूजा	321
226.	किती वाहती या नयनी...	322
227.	दर्शन की अभिलाषा	323
228.	कठपुतली श्रीकृष्ण कन्हैया की	324
229.	आत्मनिवेदन	325
230.	ऐसी व्याकुळता	326
231.	कोंदण अद्वैताचे	327
232.	कोण इथे ?	328
233.	कशी करू देवा मी पूजा आरती	329
234.	पाहणार्याने एक दिवस	330
235.	धर्म क्या है?	331
236.	अविद्येचे पेव फुटले	332
237.	वैराग्याचे सजीव पुतळे	334
238.	रिक्त रिक्त श्वास माझे	335
239.	झडकरी मज कर तव चरणांची ती धूळ	336
240.	महात्मान काकड आरती	337
241.	चिन्मय रूप घेउन ये ग माय	338
242.	आज माझा ज्ञानराज निवृत्ती पावला	339
243.	मोह ना अन्य जडो	340
244.	भगवंत तू माझा	341
245.	कोण हा "मी"	342
246.	देवपूजा	344

247.	Revolutionary Thought Vibe.....	345
248.	अश्रुंच्या या संतत धारा.....	346
249.	संतांची दिवाळी	347
250.	गुज दीपांचे.....	348
251.	कुणी नाही इथे	349
252.	हा गडी आला कुठून	350
253.	जेव्हा मन ते शिणते.....	352
254.	नमितो श्रीगुरुचरण मी	353
255.	तिथे तुला ईश्वरा... ..	354
256.	बाबा	355
257.	जशा पावसाच्या सरी	356
258.	अनंताचा ठाव	357
259.	माया महाभयंकर	358
260.	कधीच नाही	360
261.	परब्रह्म	361
262.	भरून पावलो.....	362
263.	मी तर आकाश आहे	363
264.	मैत्र	364
265.	निष्कला परमात्म रूपा.....	365
266.	शब्द रखो उरधार	367
267.	महादेवी योगिनी	368
268.	लाभो मज संतांची दृष्टी.....	369
269.	परमानंद दर्शन	370
270.	निर्गुण निर्गुण	371
271.	साक्षात परब्रह्म	372
272.	तू बा विश्वा	373
273.	निहत्था मी उभा	374
274.	हे ईश्वरा.....	375
275.	म्हणून मला	376
276.	तुज ठावे	377
277.	मन निर्मल निर्मल... ..	377
278.	प्राण सख्या श्रीरामा	379
280.	स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे	380
281.	मांगन... ..	381
282.	क्या गत मिले.. क्या मन पावत... ..	383

284.	रिक्त रिक्त तुम्ही श्वास हो माझे.....	385
285.	श्री गुरु चरण मानस पूजा.....	386
286.	मन सात्विक सात्विक.....	387
287.	संजीवन मज द्यावे.....	388
288.	आम्ही परब्रह्माचे हो पुत्र.....	389
289.	भेटावी तिथे मज श्रीराम रघुराई.....	390
290.	श्रीमंती हवी.....	391
291.	शिवकारा.....	392
292.	जागर व्हावा माय मराठीचा.....	393
293.	आई माझी पार्वती.....	394
294.	हे ईश्वरी प्रकृती गे माये.....	395
295.	ग्रंथ साहित्य शब्दामृत.....	396
296.	अपार आधार.....	397
297.	जाहलो सुखरूप.....	398
298.	रोज तुझे दर्शन घेता.....	399
299.	कोण तू कुठलासा तू.....	400
300.	प्राणांना तळहाती घेऊन.....	401
301.	घर माझे.....	402
302.	परब्रह्म पिता.....	403
303.	याचसाठी केला आहे अट्टहास.....	404
304.	होऊ दे प्रेमवर्षाव.....	405
305.	चैतन्य स्पर्श.....	406
306.	काहीच नाही घडले.....	408
307.	श्रीगुरु माझे पाठीराखे.....	409
308.	चित्त माझे विसरेना तुला.....	410
309.	मातपित्यांचा मिळता आशिष.....	411
310.	शक्ती तुझी.....	412
311.	तु मेरा प्राण सखा.....	413
312.	कर्मे जळाली.....	415
313.	प्रभ बिन नाही कोई दुजा.....	416
314.	यार मितर.....	417
315.	भरम सुणिया, भरम बोलिया.....	418
316.	कित्येक जन्मी तो मी जाळला.....	419
317.	शेवटच्याच चार पायऱ्या.....	420
318.	बसावे सुखासनी.....	421

319.	प्रस्थान त्रयी...	424
320.	सोहळा मिलनाचा...	426
321.	अंतरानुभूती प्रार्थना	427
322.	आनंद	428
323.	या झोळीचा संग सुटू दे...	429
324.	श्रावण आला ग सखी हा...	430
325.	जाळले जाळले...	431
326.	दीनानाथा नारायणा	432
327.	अनंत संत अवस्था...	433
328.	ऋणानुबंध	434
329.	अस्पर्शित मी	435
330.	फरकाच्या पलिकडे	436
331.	काय सांगू खुण सखे...	438
332.	मै चात्रिक ...	439
333.	प्रज्ञा दीपावली	440
334.	महा आनंद	441
335.	हे मना	442
336.	श्रीहरी	443
337.	मेरे मन जप...	444
338.	पैलतीर	445
339.	Oh my God	446
340.	Listen to me I pray	447
341.	माया	448
342.	कशी लाज ना आली...	449
343.	परब्रह्म प्रकटले	450
344.	गीत मुक्तीचे	451
345.	श्री गुरु ग्रंथ साहेब जी महिमा	452
346.	घे परतुनी घे	453
347.	त्रिगुनातित ईश मेरा	454
348.	श्री गुरु महिमा	455
349.	मायेच्या कळा	456
350.	ध्यास लागला	457
351.	आत्मानंदी	458
352.	दाव दाव नीजधाम	459
353.	कर माधव मजला	460

354.	भाग्य असे आमुचे.....	461
355.	माधव मुरारी कृष्ण सखा	462
356.	श्री कुण्डलिनी माता	463
357.	मीच माझे चैतन्य.....	464
358.	मज पाहुण आले.....	465
359.	धीर धरवेना	466
360.	श्री गुरुत्व	467
361.	धन्य जाहला जीव.....	468
362.	आओ आओ जी मेरे पीर.....	469
363.	कोइ न आयेगा साथ तुम्हारे.....	470
364.	सोडून दे रे... ..	471
365.	मायेच्या या मिथ्या दरबारी... ..	472
366.	मागतो जोगवा	473
367.	तिथे तुला ईश्वरा... ..	474
368.	मना तू ऐसा बाहेर ये	475
369.	नाते... ..	476
370.	शरण गहि... ..	477
371.	श्री गुरुदत्ता... ..	478
372.	माये ग माये... ..	479
373.	श्री विठ्ठल स्वगत... ..	480
374.	मस्तक भाग लिखिया... ..	482
375.	तू निष्कलंक निर्भय निर्वैर	483
376.	तू पूर्णाति पूर्ण... ..	484
377.	ऐक सखी... ..	485
378.	तू अद्वैत अन मी अद्वैत.....	486
379.	तंटा... ..	488
380.	ओळख तुझी आणि माझी	489
381.	श्री गुरु प्रसादी... ..	490
382.	नको देऊ विश्वा	491
383.	सद्गुरु मूर्ती परम दिव्यत्वाची	492
384.	सद्गुरु कारुण्य मूर्ती	493
385.	हरी मंगल गा ग सखी	494
386.	जयाच्या मुख दर्शनी	495
387.	धीर धरवेना... ..	496
388.	परम सुखदायी... ..	497

389.	जा बाबा जा	498
390.	लीन आम्ही सद्गुरु चरणी	499
391.	गुरुबंधू	500
392.	श्वासांकडे पहाणे	501
393.	सखी)जीवरूप वधु(.....	502
394.	मायाजाल	503
395.	सद्गुरु माझा	504
396.	अगा विठ्ठला	505
397.	ये पांडुरंगा	506
398.	सोडून दे रे मी पणा	507
399.	आगमन होता वर्षा ऋतूचे... ..	508
400.	अस्तित्वाचे कर्ज	509
401.	उंबरा करून श्वासांचा	510
402.	श्री हरी लक्ष्मी	511
403.	जो गुण गाईल	512
404.	पाहता श्री गोविन्द रूप	513
405.	श्रीरंग पावला ग सखी	514
406.	परब्रह्म बोले... ..	516
407.	विरहणी... ..	519
408.	माई मज पाहू दे ते श्रीहरी मुख	520
409.	अनसूयानंदन	521
410.	सुदामा श्रीकृष्ण भेट	523
411.	तुझा तुलाच पत्ता नसेल... ..	525
412.	जय मल्हार	526
413.	हरी हरी हरी हरी	527
414.	मनाचा खेळ	528
415.	तूच शोध देवा आता... ..	529
416.	जे जे तू कराविसी हरी	530
417.	ना पाही परीक्षा... ..	531
418.	अमृताची वृष्टी	532
419.	दूस्तर है भाई	533
420.	स्वतः श्रीहरी नाम घेई	535
421.	माधव मुरारी	536
422.	निकट निकट	537
423.	रे मना... ..	538

424.	सदा मी धूळ श्रीहरी चरणतळी.....	539
425.	सतगुरु भेटता.....	540
426.	श्रीराम नाम.....	541
427.	नक्कीच भेटेल श्रीहरी.....	542
428.	बंध मुक्तीचे गाणे.....	543
429.	सद्गुरु वाणी.....	544
430.	हे ईश्वरी.....	545
431.	दृश्याहून तो पहाणारा निराळा.....	546
432.	जर तुला असे वाटले कधी गोपाळा.....	548
433.	अद्वैताच्या प्रांगणी.....	550
434.	ब्रह्म ज्ञान द्या हो.....	551
435.	स्वसंवेद्य तत्व नित्य.....	552
436.	श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी.....	553
437.	हरिदास.....	554
438.	खेळ हा कुणाचा.....	555
439.	साक्षी तू.....	556
440.	श्री गुरु संत तुकाराम महाराज.....	557
441.	सती.....	558
442.	बाबा तू सर्व साक्षी हो.....	560
443.	साधक.....	561
444.	सती.....	562
445.	संत श्री.....	564
446.	साक्षी तू ...	565
447.	झालो मोकळे मोकळे.....	566
448.	ध्यास लागला.....	567
449.	डंका.....	569
450.	पाती.....	570
451.	तुला मृत्यू नाही.....	572
452.	भाग्योदय ..	574
453.	विरह अश्रू.....	575
454.	रिक्त रिक्त ..	576
455.	वारी.....	577
456.	विरह बल.....	578
457.	अद्वैत रूप घन.....	579
458.	आले कुठून..	580
459.	नको पुन्हा जन्म.....	581

460.	देवाला झालेला विरह.....	582
461.	राम रघुराई.....	583
462.	विनंती.....	584
463.	घे ना रे सामावून मजला.....	585
464.	मुंगी.....	586
465.	हरि प्रेमजल.....	587
466.	श्रीहरीशिवाय काही नाही.....	588
467.	आता ना धरवे धीर.....	589
468.	सोपे नाही होणे श्रीहरिचा दास.....	590
469.	खेळ हा कुणाचा?.....	591
470.	श्रीमहागुरूवाणी.....	592
471.	अंतर्बाह्य स्वसंवेद्य.....	593
472.	अद्वैताच्या अनंत प्रांगणी.....	594
473.	श्रीहरीने माझा शृंगार केला.....	595
474.	सदा चित्त अनंत.....	596
475.	याची देहि याची डोळा.....	598
476.	रूप गेल रंग गेला.....	599
477.	आम्ही मोकळे मोकळे.....	600
478.	महाकठीण परीक्षा.....	601
479.	मी निघाले ग बाई.....	603
480.	जयाच्या हृदयी.....	604
481.	परम तत्त्व.....	605
482.	घेता ऐसे नाम.....	606
483.	श्रीराम.....	607
484.	परब्रह्म अद्वितीय.....	608
485.	महाप्रसाद ...	610
486.	आभार श्रीगुरुंचे.....	611

1. विनम्र आवाहन...

आम्ही पुतळे विनम्रतेचे ...
दहन केले अहंकाराचे...

तुमच्या मनास जपण्या...
वागणे आमुचे असे संवेदनशीलतेचे...

विज्ञानाच्या हाती घेऊनिया मशाली...
दवितो वाट तुम्हा येथे नव-अध्यात्माची...

तुमच्या अध्यात्म सेवेसाठी आम्ही येथे जन्मलो...
तुम्ही मानिली आमुची सेवा आम्ही समाधान पावलो....

चला आमुच्या सवे त्या पवित्र संगमावर...
जेथे विज्ञान अन अध्यात्म सरिता करेल तुम्हा पावन...

2. श्री गुरु शरण प्रार्थना

आपण अनुभवत असलेले अनेकत्व किंवा द्वंद्व हे अद्वयतत्वात अदृश्य क्षमतेप्रमाणे लपलेले असते. या अदृश्य क्षमता म्हणजे शून्य आणि म्हणजेच अवकाश पोकळी होय. चैतन्याश्रीत निरीक्षक जेव्हा त्या अद्वयतत्वाचे प्रतिक असलेल्या शून्यामध्ये “मी कोण आहे” हे पाहण्यास गेला तेव्हा ही सृष्टी निर्माण झाली. आता अनेकत्वातून एकत्व शोधण्याच्या प्रयत्नात आपण सार्वजन्य आहोत. आता निरिच्छ अवस्थेत जाऊन शून्यत्व अनुभवले की आपले आत्मभान अनेकत्वातून एकत्वात सहज विलीन होईल.

दरम्यान आपण आपल्या भौतिक व मानसिक गरजांचे व्यवस्थापन करतो आणि त्यालाच समग्र जीवन असे म्हणतो. पण ते नेहमी अपूर्ण राहणार आहे. जीवनाचे उद्दिष्ट हे स्वतःमध्ये देवत्व प्रकट करणे आहे म्हणजेच पूर्णत्व प्राप्त करणे आहे. पूर्णत्वाच्या पलीकडे गेल्याशिवाय पूर्णत्व प्राप्त होत नाही. आणि तिथे काहीही प्राप्त करायचे राहत नसल्याने “मी पूर्णत्व प्राप्त केले आहे” हा भाव निर्माण करायची आणि त्याचा स्वतंत्रपणे अनुभव घेण्याचीसुद्धा आवश्यकता उरत नाही. म्हणून “...पूर्णाति पूर्णमुदच्यते” असे उपनिषदात म्हटले आहे.

अशा या भौतिक व मानसिक गरजांचे व्यवस्थापन करता करता आपल्याला हे जीवन उद्दिष्ट गाठावयाचे आहे. हे लवकरात लवकर समजून घेतले पाहिजे. देवत्व म्हणजे काय ? देवत्व म्हणजे जे जे काही आपण आहे म्हणतो आणि जे जे काही नाही म्हणतो त्याच्या पलीकडील परम तत्व होय. देवत्व हे वर्णन करण्यापलीकडे असून अगदीच वर्णन करायचे झाल्यास त्याला आपण निरहंकार, निर्विकार, निराकार, निर्गुण व अनंत तत्व असे म्हणूयात.

श्री गुरु तत्व हे आपल्या व देवामधील दुवा असते. आपण प्रयत्न करायचे आणि आपल्या प्रयत्नांना योग्य दिशा देऊन त्या देवाच्या प्रत्यक्ष अनुभवापर्यंत घेऊन जाण्याचे महत्वाचे कार्य श्री गुरु करतात. श्री गुरु आपल्याला आपल्यातूनच हे देवत्व प्रकट करण्यास मदत करतात. तमोगुण आणि रजोगुणांच्या चक्रव्यूहातून सोडवून सात्विकतेच्या प्रशस्त मार्गाने ते शून्यत्वाचा उंबरठा ओलांडून आपल्याला आपल्यातल्या निर्गुण देवतत्वापर्यंत ते घेऊन जातात.

ही पात्रता आपल्यामध्ये निर्माण होण्यासाठी श्री गुरुंचे आशीर्वाद आणि त्याची कृपादृष्टी आवश्यक असते. श्री गुरु वैश्विक शक्तीशी थेट जोडले गेलेले असल्याने मनाच्या गतीवर त्यांच्या मार्गदर्शनाचा थेट परिणाम होतो.

अद्वैत शास्त्रात या जीवनाला आभासी सत्यता असे संबोधले आहे. क्वांटम शास्त्राच्या अभ्यासानंतर आपण तर्काच्या दृष्टीने हे आपण सहज सिद्ध करू शकतो की जीवनानुभव हे आभासी सत्यता प्रकट करतात. वस्तुमय जग ही वास्तव सत्यता आणि मनामध्ये त्याचे अर्थ प्रकट होणे ही आभासी सत्यता, असे हे द्वंद्व या विश्वात प्रकट झाले आहे. अद्वैतातून हे द्वैत प्रकट झाले असून आपल्याला हे द्वैत कायम असंतुष्ट व तहानलेल्या अवस्थेत ठेवत असते. म्हणून या द्वैताचा त्याग करून अद्वैत मार्गाने श्री गुरुंच्या

मार्गदर्शनाखाली प्रस्थान ठेवणे हे मानवी जीवनाचे सर्वोच्च उद्दिष्ट आहे. त्यासाठी ही श्री गुरु प्रार्थना लिहिली गेली आहे.

श्री गणेशाय नमः
श्री गुरु शरण प्रार्थना

हे जयजयाजी श्री गुरुदेवा, साक्षात श्री गुरुतत्व अधिष्ठाना,
सात्विक बुद्धीयोगे स्थिर करण्या मना, आशीर्वच दे आम्हा हे दयाघना ॥४॥

उद्दिष्ट जीवनाचे जाणण्या कित्येक जन्म गेले,
“अद्वैतस्वरूप जाणण्या जीवन ते प्राप्त झाले”,
तुझिया कृपेकरुनी या जन्मी जाणिले ते आम्ही पुरते,
परि मनोगती थांबविण्या आम्ही दुर्बल गे श्री गुरुमाते.

हे जयजयाजी श्री गुरुदेवा, साक्षात श्री गुरुतत्व अधिष्ठाना,
सात्विक बुद्धीयोगे स्थिर करण्या मना, आशीर्वच दे आम्हा हे दयाघना ॥१॥

म्हणुनी धरिले चरण तुझे हे श्री जगद्गुरू माते,
समर्पित केले अवघे जीवन आम्ही आमुचे तुला ते,
आता हाती धरुनी तुझिया घट्ट धरावे आमुचे हे कर,
दे आत्मबल पार करण्या हा आभासाचा भवसागर.

हे जयजयाजी श्री गुरुदेवा, साक्षात श्री गुरुतत्व अधिष्ठाना,
सात्विक बुद्धीयोगे स्थिर करण्या मना, आशीर्वच दे आम्हा हे दयाघना ॥२॥

साक्षात अद्वैत आनंदरूप असे ती जगन्माता,
तिची लेकरे आम्ही द्वैतामध्ये अडकलो जी,
कृपा करुनी हे श्री गुरुराया घालावे साकडे तिजला,
भक्तांना देशी अभय आणि प्रसाद अद्वय आनंदाचा.

हे जयजयाजी श्री गुरुदेवा, साक्षात श्री गुरुतत्व अधिष्ठाना,
सात्विक बुद्धीयोगे स्थिर करण्या मना, आशीर्वच दे आम्हा हे दयाघना ॥३॥

तो धाक आपल्या आशीर्वादाचा, नियंत्रित करिती मनोव्यापार,
श्री गुरुकृपेनेची साधना होते निर्विघ्नतेने ती पार,
घेउनी ताबा मनानेच मनाचा अहंभाव तो विरघळला,
वृत्ती प्रवृत्ती इच्छा वासनांचा आभास हा कोसळला.

हे जयजयाजी श्री गुरुदेवा, साक्षात श्री गुरुतत्व अधिष्ठाना,
सात्विक बुद्धीयोगे स्थिर करन्या मना, आशीर्वच दे आम्हा हे दयाघना ॥४॥

आता हे श्री गुरुराया राहो सतत समवेत आम्हा,
द्यावे आशीर्वाद आम्हा सिद्ध करावया साधना,
दिव्य तेज आपुले भक्तिमार्ग हा अवघा उजळूनी टाका,
घेउनी जावे आम्हा त्या परम धामा जेथे असे अद्वैत जगन्माता,

हे जयजयाजी श्री गुरुदेवा, साक्षात श्री गुरुतत्व अधिष्ठाना,
सात्विक बुद्धीयोगे स्थिर करन्या मना, आशीर्वच दे आम्हा हे दयाघना ॥५॥

3. काव्य स्फुरावे...

काव्य स्फुरावे
काव्य लिहावे
विश्वाने तयाचे
माध्यम करावे

कल्पना कराव्या
कल्पनेने अन
शब्दांनी ते
सहाय्य करावे

सकल जनांचे
हृदय हरवावे
मनोरंजन ते
सर्वांचे व्हावे

सुंदर प्रतिभेचे
रंग उधळवावे
त्यात दिसावे
त्यात दिसावे
श्रीरूप ते सरस्वतीचे

ही रचना संत श्री कबीर दास यांच्या “अब के बार बक्श बंदे को...” या पंजाबी भजनावर आधारीत आहे. (थेट अनुवाद नाही.) देह रूपी गावात जीवनरूपी शेती करण्यासाठी दहा इंद्रिये येतात असे रूपक येथे वर्णिले आहे. पाच कर्मेन्द्रिये आणि पाच ज्ञानेन्द्रिये अशी ती दहा इंद्रिये आहेत. या गावात हा अदृश्य “मी” आपोआप निर्माण झाला आहे. त्याने त्याच्या इच्छावृत्तीरूपी पाण्याने ही आभासी जमीन कसण्यासाठी जीवन खर्ची घातले.

जे काही त्याच्या हाती आले ते भ्रांतमय होते. वास्तव सत्यता आपल्याला भौतिक सत्यतेच्या रूपाने अनुभवास येतात. आणि मन दिसत नसूनही त्याचे अदृश्य अस्तित्व प्रखरतेने जाणवते म्हणून दुसरी मनरूपी आभासी सत्यता आहे. या दोन्ही सत्यता व जीवनातील सातत्याने जाणवणारी फरकाची जाणीव, मानवी जीवनात अनुभवातून इच्छा, वासना, आकांक्षा, महत्वाकांक्षा वृत्ती, या भ्रांती निर्माण करतात. अशा या भ्रांती निर्माण झाल्या की मद, मोह, मत्सर, काम, क्रोध, लोभ हे षड्रिपू त्या “मी” ला सहज लुटून नेतात. जे काही मिळविल्यासारखे वाटते ते सतत संपत असल्याची आणि कमी असल्याची भ्रांती हे षड्रिपू तीव्र करत जातात. मग तो “मी” नैतिकता व धर्म विसरतो. शेवटी ते षड्रिपू त्याला देशोधडीला लावतात.

आता नियती जेव्हा हा केलेल्या प्रत्येक कर्माचा लेखाजोखा मागते तेव्हा ही दहा इंद्रिये तो मी नव्हेच म्हणून पळून जातात. आणि “मी” एकटा पडतो. परंतु तोपर्यंत हा “मी” दिशाहीन झालेला असतो, सैरभैर झालेला असतो. म्हणून तो श्री गुरूंना कळकळीने हाक देतो आणि गुणातीत म्हणजे अद्वैतात विसावा द्या अशी विनंती करतो.

कृपा

आता कृपा एवढी जी करा
न धाडी पुन्हा गर्भवासा मला

दशेंद्रिये इथे कसती शेती
परि जमीन आभासी असे ती
कोटून कुणी हा “मी” पातविला
बहुइच्छांनी त्याने सिंचियले तिजला
आता कृपा एवढी जी करा
न धाडी पुन्हा गर्भवासा मला

भ्रांतीचे जे बहु शेत बहरले
षड्रिपूंनी ते सहजची लुटले
असा हा त्यांनी डाव साधला

लावले हो मजला देशोधडीला
आता कृपा एवढी जी करा
न धाडी पुन्हा गर्भवासा मला

नियती मागे हिशेब मजला
दे रे आता त्या क्षणाक्षणाचा
जेव्हा मांडीला तो लेखाजोखा
गेली दशेंद्रिये ती पलायनाला
आता कृपा एवढी जी करा
न धाडी पुन्हा गर्भवासा मला

एकटा इथे मी दमलो भागलो
दिशाहीन मी हा कुठे बहकलो
ये गं ये गं श्री गुरुमाई आता
दे मजला गुणातित विसावा
आता कृपा एवढी जी करा
न धाडी पुन्हा गर्भवासा मला

जोहार...

(जोहार म्हणजे लवून नमस्कार करणे.)

उपाधी ही इथे आम्हा असे विस्तवासमानं,
जोहार जोहार तुम्हा आम्ही घालतो आदबीनं...

असे हा देह या विश्वाची निर्मिती,
निमित्त मात्र तयात असे आमुची वसती...

आम्ही हो रहिवासी स्वानुभवाच्या गावचे,
चालण्या इथे आलो श्रीगुरुंच्या मार्गाने...

(आपल्याला आपल्या शरीराचा व विश्वाचा अनुभव येतो पण स्वतःचा अनुभव घेण्यासाठी आपल्याला
इंद्रिय नाही(.म्हणून आपण स्वानुभवाच्या गावाचे वाट चुकलेले रहिवासी .

कर्म आमुची सदा ती इथे हो निष्काम,
उर्जारूप देहमन तिथे आत्मतत्त्व अधिष्ठान...

ईच्छा वासना वृत्तींनी देह रंगविला संसारी,
रंगमंच सोडूनी आता स्नान करीतो शून्य प्रवाही...

लाभले आम्हास असे प्रेम ते ईश्वराचे,
विश्व...हृदयातून फुटले ते उमाळे प्रेमाचे-

पाहतो हृदयी तुमच्या सदा सखा सारंगपाणि,
जोहार जोहार त्याला आम्ही घालतो मनोमनी...

6. संतमय व्हावी काया

पावलांची दिशा व्हावी कुंभार गोरा
हातीची ती कर्मे व्हावी माळी सावता

हृदयातील भाव व्हावा संत जनाबाई
नाम येती ओठी नामदेव यावे त्या नामी

कंठी यावी मंगल वाणी ती कृपा एकनाथ
श्वासांमध्ये प्राण तो व्हावा निवृत्ती नाथ

तुका व्हावा दृष्टी शोधण्या त्या भगवंता
ज्ञानदेव भेटवि तव चरणी ठेविता माथा

तेजाळू दे काया संत चोख्याचिया तेजा
त्यावर फुलु दे रोमरोम माई मुक्ताईचा

काया अवघी व्हावी ऐसी संतगुणांचे आगर
मन माझे गा व्हावे परमानंदाचा सागर

विश्वाचे आर्त मम चित्ती प्रकटावे
शरणागती होऊन अश्रू ते वाहू दे

ज्ञानाविना जीव इथे झालासे निष्प्राण
स्वस्वरूपी प्रकटूनी देवा तुम्ही व्हावे माझे प्राण

श्रीगुरुतत्व होण्या आसनस्थ मम बुद्धीचे आसनी
आत्मभान वाहतो मी आपुलीया चरणकमळी

7. पाहता श्रीगुरुदेवा तुम्हा...

आपण सर्वच जण मायेच्या मोहपाशात आत्मभान हरपून जीवन जगत असतो. त्यामुळे जीवन संघर्षमय होऊन जाते. या मायेच्या मोहपाशापासून सुटका होण्यासाठी श्रीगुरुदेव यांनी त्यांच्या शक्तीने संमोहित केले असता आपण या सामान्य द्वैतातून परम अशा अद्वैतात स्थिर होऊ शकणार आहोत. मायेचे मोहपाश तोडण्यासाठी श्रीगुरुदेवांचे संमोहन अन्न आवश्यक आहे. त्यासाठी केलेली ही प्रार्थना. “हम बिस्म भई मुख लागे...” श्री गुरु रामदास जी यांच्या या अत्यंत सुमधुर पंजाबी भजनावरून ही रचना निर्माण झाली आहे. (थेट अनुवाद नाही.)

ही विश्वमाया म्हणजे विश्वाची महाउर्जा आणि तिच्या इच्छाशक्तीने तिने “मी” ची निर्मिती केली आहे. तसेच या विश्वात असलेल्या अनंत क्षमतांना काळ, अवकाश आणि वस्तू विषयांना प्रकट केले आहे. त्या स्वतःच्या “मी” ला तिने तिच्या या अद्भुत अविष्कारात गुंतविले असून श्री गुरुंच्या संमोहनाने हा मायेचा पाश तुटणार आहे.

मायेने तिच्यातून तिच्याच प्रभावाने सर्व जीव विश्व निर्माण केल्याने मायेची ओढ मायेकडेच असते. परंतु श्री गुरु यांनी या मायेच्या सर्व शक्तीला जिंकले असल्याने त्यांनी त्यांच्या संमोहनाने बुद्धी स्थिर केली असता या मायेच्या बंधनातून सुटणे शक्य होणार आहे. जगद्धाव म्हणजे मायेकडील मनाची ओढ. हा जगद्धाव नाहीसा होण्यासाठी श्री गुरुंचे सहकार्य येथे प्रार्थिले आहे.

श्री गुरु हे साक्षात योगियांचे योगी , निर्गुण स्वरूप आहेत. वैराग्य आणि भक्ती यांचा सर्वोत्कृष्ट अविष्कार म्हणजे श्री गुरु आहेत. त्यांच्या मार्गदर्शनासाठी साधकामध्ये ती पात्रता निर्माण होणे आवश्यक आहे. त्यासाठी श्री गुरुंच्या आशीर्वादाने कारणदेह/आनंदमय कोष, विज्ञानमय कोष, मनोमय कोष, प्राणमय कोष आणि अन्नमय कोष या पाच कोषांची शुध्दी होऊ दे अशी प्रार्थना येथे केली आहे. त्यायोगे साधकामध्ये संपूर्ण सात्विकता परिस्थिती निर्माण होणार आहे. आणि आता जेव्हा हा साधक ध्यानात बसेल तेव्हा ते ध्यान इतके घट्ट लागेल की श्री गुरु सहजच त्याच्या अंतर्दामी येऊन त्याला निर्गुणाच्या धामी घेऊन जातील.

पाहता श्रीगुरुदेवा तुम्हा, हा विस्मयची मनी दाटला
तुमचे संमोहीनी जीव माझा मोहवा

पहा हा खेळ मायेचा
दुफळी माजवुनी सर्वत्र
मोहपाशा गुंतवी सर्व जीवा
तुम्ही आता कृपा मजवरी करा
तुमचे संमोहीनी जीव माझा मोहवा

पाहता श्रीगुरुदेवा तुम्हा, हा विस्मयची मनी दाटला

विश्वमाया ही सर्वान्तर्यामी
आपुलाच आपुला निर्माण करी “मी”
पातुनी काळ-आकाश-वस्तूविषयाला
स्वसंमोहनी मांडीयिले जगद-व्यापाला
तुमचे संमोहीनी जीव माझा मोहवा
पाहता श्रीगुरुदेवा तुम्हा, हा विस्मयची मनी दाटला

करीता प्रयत्न कितीही तरी
मायेची ओढ मायेकडे ही
तुमचे संमोहीनी स्थिर बुद्धी योगा
अशी द्यावी सिध्दी मायामोह तोडण्या
तुमचे संमोहीनी जीव माझा मोहवा
पाहता श्रीगुरुदेवा तुम्हा, हा विस्मयची मनी दाटला

तुम्ही साक्षात निर्गुणाचे निधान
माया घेतसे तुम्हा चरणी लोळण
आम्ही चातक होऊ दे करुणेची वर्षा
विलय करा सत्वर जगद्धाव हा आमुचा
तुमचे संमोहीनी जीव माझा मोहवा
पाहता श्रीगुरुदेवा तुम्हा, हा विस्मयची मनी दाटला

निर्मळ व्हावी आमुची पंचकोषकाया
तुमचेच नाव सदा यावे आमुच्या ओठा
वाहू द्या रोमरोमात तव सात्विक उर्जा
तुमचे चरणी माझ्या सर्वस्वाची माया
तुमचे संमोहीनी जीव माझा मोहवा
पाहता श्रीगुरुदेवा तुम्हा, हा विस्मयची मनी दाटला

योगियांचे योगी तुम्ही अद्वैताचे धनी
पिता तुमचा वैराग्य, भक्ती असे माता
तुमच्या अनुरोधे बैसलो आम्ही ध्याना
अन्तर्यामी तुम्ही घेउनी जा निर्गुण-धामा
तुमचे संमोहीनी जीव माझा मोहवा
पाहता श्रीगुरुदेवा तुम्हा, हा विस्मयची मनी दाटला

8. जिथे जाशी....

श्री हनुमान हे या विश्वातील सर्वोत्तम शिष्य आणि म्हणूनच सर्व साधकांचे ते श्री गुरु आहेत. ही रचना “जिथे जाये बाहे मेरा सतगुरु....” या पंजाबी भजनाच्या धर्तीवर संपन्न झाली आहे. (थेट अनुवाद नाही.) आवडेल तुम्हाला...

श्री हनुमान हे मृत्युंजय असून त्यांना येथे अमर्त्यभूषणा हे विशेषण दिले आहे. त्यांना शेवटी अशी विनंती केली आहे की तुम्ही मला श्रीरामाच्या धामी संपूर्ण आनंदमय अशा अवस्थेत घेऊन जा. मृत्यू नव्हे तर प्रयाणोत्सव म्हणून हा एक आनंदमय सोहळा व्हावा इतका माझा भाव श्रीरामाच्या चरणी धूढ व्हावा.

जिथे जाशी माझ्या श्रीगुरु रामदासा
तिथे श्रीराम जानकी येती निवासा

महाकाय तू महाबली वायूसूता
महाकाल थांबती बजरंग नाव घेता
जिथे जाशी माझ्या श्रीगुरु रामदासा
तिथे श्रीराम जानकी येती निवासा

अतिबुद्धि दिगंत तिला वेग तुझा
मनोवेगाशी तू जिकीले मारुती राया
जिथे जाशी माझ्या श्रीगुरु रामदासा
तिथे श्रीराम जानकी येती निवासा

ब्रह्मांड थरारे तुझा कोप होता
दुष्टशक्ति निवारी तू हनुमंता
जिथे जाशी माझ्या श्रीगुरु रामदासा
तिथे श्रीराम जानकी येती निवासा

महामाया स्वरूप असे तुझी काया
अणूपासूनी ब्रह्म व्यापिले बलभीमा
जिथे जाशी माझ्या श्रीगुरु रामदासा
तिथे श्रीराम जानकी येती निवासा

भक्तिप्रेम अपार तुझे हे महारुद्रा
तुझ्या रोमरोमात वसे श्रीरामराया

जिथे जाशी माझ्या श्रीगुरु रामदासा
तिथे श्रीराम जानकी येती निवासा

सुवर्ण कांती तुझी प्रकाशाच्या तेजा
नवग्रह कापिती तुला हे भानूप्रतापा
जिथे जाशी माझ्या श्रीगुरु रामदासा
तिथे श्रीराम जानकी येती निवासा

प्राणसखा तू लक्ष्मणाचा अंजनीच्या सूता
पंचप्राण वाहिले मी तुझिया चरणा
जिथे जाशी माझ्या श्रीगुरु रामदासा
तिथे श्रीराम जानकी येती निवासा

वैराग्याचे वरदान तुला अमर्त्यभूषणा
योगीयांचा तू योगी हे श्रीरामानंदा
जिथे जाशी माझ्या श्रीगुरु रामदासा
तिथे श्रीराम जानकी येती निवासा

दाव दाव मजला तव श्रीगुरुचरण आता
ने मजसी ने आनंदे श्रीरामाच्या धामा
जिथे जाशी माझ्या श्रीगुरु रामदासा
तिथे श्रीराम जानकी येती निवासा

9. वडवानल...

वडवानल हा द्वंद्वाचा गं उठला मायेचा
सापेक्षतेचे इंधन त्याचे पाहतो ग्रासाया

तनमनाची रचना ऐशी हे द्वैतची वाटे खरे
जोर तयाचा इतुका की हा जीव प्रपाती पडे

वास्तव भासे जैसा विस्तव
कधी उब तर कधी होरपळ

कुठे निवारा तो शोधू इथे
अग्निकांड ते द्वैताचे उठले

दुःखाची कधी वीज पडे
अन वादळ संघर्षाचे

अद्वैताचा घेऊ आसरा मनात वसंत फुलवू गं
जे जे भेटे भूत तयात चैतन्यची ते पाहू गं

वैराग्याचे कुंपण ते बांधू
त्याग करूनी भोग ते भोगू

श्रीरामाचे नामामृत ते मनी आपुल्या आणू गं
द्वंद्वाचा वडवानल हा श्रीगुरु कृपेने विझेल गं

10. निरोप त्याचां...

आज कुणी घेतला राम राम जगाचा
त्याचा हा उठला पहा हो जनाजा

लाविले पहा कोणी चार खांदेकरी
वैकुंठधामा त्याला नेती सत्तरी

किती सगेसोयरे मागे मागे चालती
अश्रुंची फुले त्यांच्या रस्त्यावर सांडिती

निष्प्राण देहावर कुणी फुले उधळती
त्यातील कित्येक रस्त्यावर पडती

त्यातील हो मी आहे फुल एक
माझ्याशी त्या आत्म्याने केले हितगुज

म्हणे येथे आज मी पाहतो सोहळा
माझ्या या मरणाचा आगळावेगळा

कित्येक यातील त्यांनी केले अपमान
आज हो माझ्या प्रेताला का देतात हे मान

कित्येक यातील त्यांनी सावरले मला
सर्वामध्ये त्या मी ईश्वर पाहिला

आज माझ्यासवे माझी पुण्याई हो असे
सांगा यांना तुम्ही मी एकटा हा नसे

कशाला ते विधी ते माझ्या मरणाचे दिवस
मरणाआधीच मी येथे झालो मुक्त सहज

आता उठले पहा लोळ ते अग्नीचे
झाले विघटन देहातील पंचतत्वांचे

आता बोलती गुज माझ्याशी ती माया
तुला आता कधी इथे नसे येरझारा

जातो आता आम्ही आमुच्या गावाला
राम राम घ्यावा आमुचा
जीव द्या हो जीवाला...

11. तूच ईश्वरा...

तूच ईश्वरा ही मांडून दुनिया
त्यात नांदतो जणू तूचि खेळीया

भासे भोग भोगी तू ते सगळे
परि तू चैतन्य मायेपासून वेगळे

आम्ही पुतळे ते मातीचे सगळे
परि दिले आम्हा तू आत्मभान स्वत्वाचे

तूझे स्वत्व आम्ही तूज अर्पावे
नीत नीत तू इथे आम्हा रक्षावे

पंचप्राणांनी आम्ही ओवाळू तुज ते
तव मंगल गीत पंचसखींनी गावे
(पंचसखी (शरीरातील पंचतत्वे =

आम्ही सर्व जणू एकतत्व इथे हे
दे आम्हा दान तव अभयतेचे

जर कोणी कष्टी इथे संकट येता,
तू व्हावे त्यांचा साक्षात पाठीराखा

हीच प्रार्थना ईश्वरा तुजला
कर दीर्घायु आम्हा प्रत्येकाला

12. पाहता मी आकाशा...

पहाता मी आकाशा तुजला रे तुझ्यात असे मी विरुन जावे
कवेत सृष्टी क्षणात घेता सर्वाहून मी अलिप्त व्हावे

वसेल हृदयी अवकाश होऊनी
सकल जनांचे दुःख हर्पूनी

चैतन्याच्या गावी मी क्षितीज होऊन जाईन
प्रभु हृदयाकाशी त्या मलाच गं मी पाहीन

13. घ्यावे नाम देवाचे...

घ्यावे नाम देवाचे ऐसे क्षणाक्षणाला
ऐसे दिले महा वरदान देवाने मानवाला

करुया ऐसे कर्म तेथे नामाचा गजर
पहा आपल्या समोर ईश्वर सखा तो सादर

आकाश तयाचे स्वरूप त्यामध्ये आपण
आपल्यामध्ये तो आहे जसा एक दर्पण

ठेऊया विशुद्ध मनोशरीर एक साधन-
नको अभक्ष्य भक्षण नको मदीरापान

सात्विक आहार अन शुद्ध जलपान
होईल कणखर शुद्ध सात्विक तनमन-

कुबुद्धी ती सर्व पालटू दे सर्वांची
सुबुद्धी सुमती मिळो आम्हाला सदगती

एका प्रिय जनहो मी ना कोणी वेगळा
तुमच्यासम मला ही आहे चैतन्याचा आसरा

शपथ तुम्हा घालतो या ईश्वरीय चैतन्याची
वाट केवळ चाला हो फक्त अध्यात्माची

14. प्रसंग युद्धाचा...

खरे तर आपण जीवनात अनेक संघर्ष अनुभवत असतो जे अध्यात्मिक दृष्टीने सपशेल आभासी असतात जोपर्यंत अज्ञान जात नाही तोपर्यंत हे .पण त्याला वास्तव मानून आपण जीवन जगत असतो . मग पुढे काय .हीच ती मदमाया होय .तथाकथित आभासी सत्यतेचे नियोजन अनिवार्य आहे? यावर संत कबीर जी यांनी जो उपाय सांगितला तो इथे दिला आहे.

प्रसंग युद्धाचा...

क्षणोक्षणी आम्हा प्रसंग युद्धाचा...
चुकवायचा सतत हा द्वंद्वाचा मारा...

अहं आभासी परि निरिक्षक मायेचा...
बंदी सदा हा वृत्ती इच्छा वासनांचा,

भ्रांतिने मानितो इथे आभासी सत्यता...
जे मानिले ते भोगूनही ना मिटे तयाची तृष्णा ,

भार ना सोसवे आता या मदमायेचा...
फेरा चुकवूया या आपुल्या जन्ममरणाचा,

योगभक्तीने लववूनी माया,
करुया धनुष्य त्या मायेचा,

एकाग्रतेची ओढूया प्रत्यंचा,
लक्ष्य करुया त्या शून्याकाश तत्त्वाला,

लागेल ठाव तिथे आपुल्या स्वस्वरूपाचा...
आता उरलो इथे उपकारापूरता...

15. सामर्थ्य दे...

सामर्थ्य दे देवा सामर्थ्य दे॥
तव गुण गाण्याचे सामर्थ्य दे॥धृ॥

विशुद्ध मन दे॥
सशक्त तन दे॥1॥

सदसद्विवेक दे॥
षड्रिपू विजय दे॥2॥

बुद्धी नजर जिथे जाते ॥
तिथे तुला पाहाण्याची ॥
मजला विज्ञान दृष्टी दे॥ 3॥

तुझी कृपा होऊ दे॥
सतसंग तो घडू दे ॥
तुझे नाम सदा... सदा मुखी दे॥4॥

तू श्रीगुरु तू आराध्य माझे ॥
आधारी तू..., तू मज संगे ॥
आदि, मध्य अन अंतःकाले॥5॥

16. साध्य तुला रे सर्व ईश्वरा...

साध्य तुला रे सर्व ईश्वरा
माझ्या विठुला पांडुरंगा
हाक ऐक या लेकरांची
आण तुझ्या वीटेची तुजला

तू आणिले आम्हा या विश्वामाजी
नच आम्हा जाण त्या तव मायेची
क्षणात हसवी ती क्षणात रडवी
दे बल आमुच्या काया मन बुध्दीला

आम्ही पुतळे ते मातीचे
हजार गतीने झिजायचे
या मातीतून तुज शोधू
ऐसे वरदान दे आम्हाला

जरी ना जमली भक्ती तुझी
परि तव छवी निरंतर हृदयांतरी
आज आम्ही भ्रमसंकटी देवा
न धरावा आम्हावरी रुसवा

कर कर कृपा तू आम्हावरती
दे आम्हा आत्मजाणीव रोकडी
आम्ही होऊ तुझे उतराई देवा
निवार निवार भ्रम संकट रे आता

साध्य तुला रे सर्व ईश्वरा
माझ्या विठुला पांडुरंगा
हाक ऐक या लेकरांची
आण तुझ्या वीटेची तुजला

17. मीच पोरका मला इथे हा...

आत्मा अमर आहे असे अध्यात्म आणि शास्त्र एकमुखाने सांगतात. आपण स्वतः आत्मस्वरूप असूनही त्याची ओळख आपल्याला पटत नाही. असंख्य भेद निर्माण झाल्याने आपली ओळख त्यामध्ये हरवून गेली आहे. अशा या आत्मतत्वाचे स्वगत इथे या रचनेमध्ये आले आहे. हेच मानवी जीवनाचे परम उद्दिष्ट आहे असे वेद स्पष्टतात.

मीच पोरका मला इथे हा
कुठे मला मदस्वरूप दिसेना ॥ धृ ॥

सर्वातर्यामी वसे परि मी
मीच मला तो अखम आंधळा

धुळलोट उसळले द्वंद्वाचे ते
अद्वयाचा तो भाव गवसेना

व्हावी ऐसी श्रीगुरु कृपा ती
इथे गळून पडावे मी माझे मला

बीज अहं ते द्वंद्वाचे ह्या
त्यातून हुंकार ब्रह्माचा निघावा

जलामध्ये जलभाव जसा हा मम आत्मभाव तो मज दिसावा

दृष्टादृष्ट ती व्हावी आता
स्वसंवेद्य मी, मला ब्रह्मस्वरूप भेटवा...

देवा....

मीच पोरका मला इथे हा
कुठे मला मदस्वरूप दिसेना ॥ धृ ॥

18. भावद्वंद्व

विश्वात आपल्याला द्वैत सगळीकडे आढळून येते. आपल्याला सर्वसामान्यपणे जे ज्ञान होते ते फरकाचे होते. विश्वाचे एकत्व आपल्यातच सामावलेले असल्याने एकत्वाचे वेगळे ज्ञान होणेच शक्य नाही. हे या विश्वाचे अत्यंत गूढ असे रहस्य आहे. परंतु या द्वैतातून निर्माण होणारे भावद्वंद्वच आपल्याला या द्वैतातून सोडवेल जेव्हा तिथे ईश्वराप्रती असलेला विरह साधनेदरम्यान कमाल मर्यादा गाठेल.

भावद्वंद्व...

तूच माधवा द्वैत निर्मुनी
शृंगला घडविली संघर्षांची

द्वैत निर्मिले स्थूल-सूक्ष्माचे
सांत अस्तित्वाशी अनंत “मी” चे

द्वैत असे ते “नसल्याचे” त्या “असल्याशी”,
जे काही “आहे” त्याच्या विरुद्ध तत्वाशी...

द्वैत म्हणुनी अद्वैत निपजले
हरी विना कुणी जाणले ते वेगळे

तू ठेवून आहेस रे साक्ष तुझी ही
माझ्यात तू वेगळा द्वैत-अद्वैताहुनी

द्वैतात माधवा तू सदा अद्वयी
भोग भोगुनी शोभे योगियांचा तू योगी

परि तू अन मी असे एक असूनही
भाव-द्वंद्व पेटले मम अंतर्मनातूनी

काय सांगू तुज हरी आर्त मनाची
तहानलेल्या माश्याची अवस्था जशी

भाव-द्वंद्वतातूनि त्या उठतील ज्वाला
हृदय वितळेल जिथे तुझा विरह माधवा

ઘડૂ દે સાધના ત્યા તાપાતૂન
“મી-પણ” હોઈલ સર્વ ભસ્મીભૂત

કુઠે અસેલ મગ તે દ્વૈત-અદ્વૈત
હોઝન રાહૂ તૂ-મી અદ્વય...
માધવા હોઝન રાહૂ તૂ-મી અદ્વય...

19. रामनामामृत हे प्याहो

श्री रामाचे नाव मुखामध्ये सातत्याने येत राहणे ही मनाची विशुद्ध अवस्था आहे. श्री गोंदवलेकर महाराजांनी व श्री रामदास स्वामींनी श्री रामनामाची अपरिमित महती कथन केली आहे. ही रचना “ पीव्हो पीव्हो अमृत पीव्हो...” या पंजाबी भजनावरून सुचली आहे. (थेट अनुवाद नाही.) आवडेल तुम्हाला...

प्याहो प्याहो रामनामामृत हे प्याहो
अमृत प्याहो चिरंजीव व्हा हो

भवतापांचा लवलेश न राहती
परमानंदी तुम्ही विलीन व्हा हो
प्याहो प्याहो रामनामामृत हे प्याहो
अमृत प्याहो चिरंजीव व्हा हो

सद्गुण सद्बुद्धी सद्गति मिळती
प्रभू चरणी तुम्ही लीन व्हा हो
प्याहो प्याहो रामनामामृत हे प्याहो
अमृत प्याहो चिरंजीव व्हा हो

षट्ठीपु ते स्वनियंत्रणात येती
श्रीरामाचा पराक्रम गा हो
प्याहो प्याहो रामनामामृत हे प्याहो
अमृत प्याहो चिरंजीव व्हा हो

आदर, त्याग प्रेमाने तनमन भरती
श्रीरामपंचायतन स्तुती ती गा हो
प्याहो प्याहो रामनामामृत हे प्याहो
अमृत प्याहो चिरंजीव व्हा हो

सात्त्विकता अन शुचिता ती प्रकटे
जानकीचे सदा स्मरण करा हो
प्याहो प्याहो रामनामामृत हे प्याहो
अमृत प्याहो चिरंजीव व्हा हो

भक्तिशक्तिचे वरदान ते मिळती

रामदासी ती उपासना करा हो
प्याहो प्याहो रामनामामृत हे प्याहो
अमृत प्याहो चिरंजीव व्हा हो

धैर्यशील राजशील ते लवकुश
त्यांच्यासह तुम्ही रामायण गा हो
प्याहो प्याहो रामनामामृत हे प्याहो
अमृत प्याहो चिरंजीव व्हा हो

श्रीराम स्मरता श्रीगुरु आशिष मिळती
भवभ्रंतीतूनी बाहेर पडा हो
प्याहो प्याहो रामनामामृत हे प्याहो
अमृत प्याहो चिरंजीव व्हा हो

20. सकल मायेची महामाया

ही देवीची स्तुती वा प्रार्थना आहे. देवी ही मूलतः निर्गुण स्वरूप आहे. परंतु तिचे हे निर्गुण स्वरूप चैतन्याच्या सानिध्यात सगुण स्वरूपात प्रकट होण्याच्या अमर्याद क्षमता राखून असते. हे विश्व त्या निर्गुण उर्जा क्षमतांचा व्यक्त असा अविष्कार आहे. क्वांटम शास्त्र हे अगदी सुस्पष्टपणे आपल्याला दाखवून देते. प्राणिमात्रांसह आपल्या सर्वांच्या सगुण स्वरूपाचे मूळ अधिष्ठान देवीचे निर्गुण स्वरूप आहे. तथापि जोपर्यंत आपल्या मनाचा विलय होत नाही तोपर्यंत त्या निर्गुण स्वरूपाचे प्रकटीकरण अशक्य आहे. यात गम्मत अशी आहे की मनच अमन झाले तर तेथे अनुभव घेणारा कोणीच नसणार आहे. त्यामुळे सिध्द श्री गुरुसुधदा त्या देवीला अगम्य शक्ती असे संबोधतात.

देवी तत्व हे अत्यंत दयाळू तत्व असून ती अष्टसात्विक स्वरूपात किंवा महाकालीरूपी रौद्र स्वरूपात ती भक्तांना दर्शन देते. अशी तिची ख्याती आहे. आता अत्याधुनिक विज्ञानसुधदा सिद्ध करते आहे की हे देवी तत्व साक्षात जगत्जननी आहे. ज्यावेळेस साधक त्याच्या उपासनेच्या मार्फत देवी तत्वाचे आवाहन करतो तेव्हा तिच्या निर्गुण स्वरूपापुर्वी त्याला शून्यत्वाचा अनुभव येतो असे आपल्या वेदांतात व अद्वैत शास्त्रात म्हटले आहे. ही रचना “सब राजन के राजा” या श्रीगुरु तेगबहाद्दूर यांच्यावर आधारीत पंजाबी भजनावरून सुचली आहे. परंतु त्या रचनेचे भाषांतर केलेले नाही.

सकल मायेची महामाया

सकल मायेची महामाया तू ग
तुझ्यासम तूचि दयाळू असे ग

प्रसविले तू महाकाल दिगंत
उदरी तुझ्या ब्रह्मांड अनंत
कलीकाल भयनाशिनी तू ग
दुष्टबुद्धी संहारीणी तू ग
सकल मायेची महामाया तू ग
तुझ्यासम तूचि दयाळू असे ग

दशमहाविद्या ती तू असे ग
नवदुर्गा ती तूचि असे ग
काली कराली कधी भयंकर
कधी सात्त्विक सरस्वती दिसे ग
सकल मायेची महामाया तू ग
तुझ्यासम तूचि दयाळू असे ग

मिटो चिंता दे आम्हा आरोग्य
होऊ दे ती सुकर्म सुयोग्य
शीघ्र सुबुद्धी विवेक दे ग
घडू दे हातून विश्वसेवा ग
सकल मायेची महामाया तू ग
तुझ्यासम तू कनवाळू असे ग

तव चरणाभिषेक होण्या आता
दे मज अश्रूंचे दान असे ग
दे मज शक्ती भक्ती अपार
तव गुण गाण्या कवित्व दे ग
सकल मायेची महामाया तू ग
तुझ्यासम तू कनवाळू असे ग

निर्गुण तू ती सदा असे ग
परि सगुण तू कार्यार्थ दिसे ग
अष्टसात्विक भाव प्रकटू दे ग
दाव शून्यत्वाचे सत्वर शिखर
सकल मायेची महामाया तू ग
तुझ्यासम तू कनवाळू असे ग

दे वरदान प्रकटू दे वैराग्य
होऊ दे हा अहंभाव-विलय
घेउनी हात माझा हाती ग
निर्गुणी गावा घेउनी जा ग
सकल मायेची महामाया तू ग
तुझ्यासम तू कनवाळू असे ग

21. मांडीयेला ग माये...

मांडीयेला गं माये तू डाव भाव रंगांचा
घेतला तू वेध स्व-आत्मभानाचा

माये गं माये आम्ही तुझी गं लेकरं
सांभाळीशी तू आम्हा असता तव मार्गावर

रंगलो दंगलो त्रिगुणांच्या रंगाने
तुज रंगवितो मम भक्तीभाव रंगाने

तुज ओळखिले मी तू रूप तुझे गं दाव
तव चरणी या मी वाहतो हृद-भाव

चैतन्याची तू खाणी तुला शून्याचे गं कोंदण
तृष्णा मम शमविण्या दे गं अमृताचे दान

मम आत्मभान ते होते परब्रह्म साक्षात
श्रीगुरु रूप तू घेउनिया मज दे हा दृष्टांत

अणुरेणु ग कायेचे कर शून्यातीशून्य
प्रकटव तिथे तू तव निर्गुणत्व अनन्य

जळामध्ये जळ मिसळता ते जैसे
कालव हा अहं ब्रह्मामध्ये तू तैसे

माये गं माये तव चरणी मला घातला
माझा न मी राहिलो आता हा कोण गं कुठला

22. हरी माझी माता...

हरी माझी माता ,

हरी माझी माता , हरी माझा पिता
हरी माझा बंधु , हरी माझा सखा

हरी माझे हृदयी , चित्त माझे त्याचे चरणी
दर्शन होता तुमचे , देही रोमांच उभे राहती

कर धरूनिया करी , त्याच्या घरा नेई हरी
विठठल नामाचा गजर , सगळीकडे तोच सादर

विठठल नाम संकिर्तनी ,
त्याचा ज्ञानप्रकाश दाटे मनी
विठठल , विठठल हा एकला विचार ,
आता करू कोणता मी आचार

हरीचा विसर पडला जगाला ,
तरी भार सर्वांचा का हा वाही
हरीला विसर नाही कुणाचा
साक्षी मी त्याचा झालो हा द्रष्टा

,

देवा तुज भक्तीरसाची लागिलीया तृष्णा
फोडीला माझ्या हृदयी पाझर भक्तीचा
हाक ती ऐकीली माझी तू माऊली
भक्तपणाची ती अहंभावना निमाली

कोणी केले कर्म , कधी संपले कर्म
आता कर्तेपणाचा भाव निमाला
होता समर्पण देवाच्या चरणी
कर्मभोगाची बाधा न हो कोणत्याही क्षणी

23. उन्ह तापले तापले

ऊन तापले तापले
ग्रीष्म सोसेना सोसेना
झाली अंगाची ही लाही
शोष कंठाला पडला

ऊन कशाचे तापले
जीवनाच्या हव्यासाचे
तापला हा इच्छा देह
पितो पाणी हे भ्रांतीचे

वृत्तीच्या घामाने अंग हे भिजले
षट्ठीपुंच्या तापे हे पाय हो भाजले
शोधिशी कुठे ही प्रेमाची सावली
भेट बापरखुमादेव विट्ठल ती माऊली

प्रेम-सावलीत प्यावा भक्तीरस हा निवांत
गुरुकृपे होईल तुझ्या भ्रांतीचा हा अंत
दाटतील तिथे आनंदघन परमज्ञानाचे
लोट वाहतील तिथे विवेकप्रलयाचे

जाता गुहेमध्ये वैराग्याच्या
त्या तुर्येला भेटी सच्चिदानंद
सहजे ओलांडी तू शून्याचा उंबर
होईल तुझा अवघा परमानंद

आकाश अलिप्त सर्वाहून सदा असे
परम शांती तिथे सदा ही निवासे

आकाश जरी सदा असे निर्गुण निराकार
त्याचे पोटी विलसे विश्व सगुण साकार

आकाशातून प्रसवे कित्येक त्या उर्जा क्षमता
कल्लोळ उठे हा तिथे जीवांच्या जाणीवांचा

परि आकाश सदा अलिप्त ते उदासीन असे
हीच एक इच्छाक्षमता आता मनी ती वसे-

आकाश अरूप जणू वाटे रूप ते माझे
परमात्म्याचा जणू तो आरसा स्वच्छ असे

आगम अविनाशी तू एक परम अरूप
आकाशात प्रतिबिंब तुझे मी झालो तदस्वरूप

25. सृजनत्वाचे व्रत

व्रत तू दिधले सृजनत्वाचे
सृजन करितो तव क्षमतांचे

पात्रासह तू दान घातले
अज्ञाने ते माझेच मानले

सृजनासह अहं हा निपजे
रसातळाला कित्येक ते गेले

जेव्हा जेव्हा अहं मज हरवे
तूझे मंद अवीट स्मित मी पाहे

रहस्य विचारण्या मन ते धावे
परि मज तेव्हा तू कुठे ना दिसे

अहंभाव भ्रम तो बलशाली असे
त्यापुढे ठाव माझा ना मुळी लागे

बैसता साधूसंतांचिया संगे
अहं एक भ्रम मज ते कळले

ऐसे करुन संतांच्या उपदेशे
सृजन सर्व तव चरणी ठेविले

रहस्य सहजी आता मज समजे
तू कर्ता असूनही अकर्मि असे

मूळ स्वरूप ते निर्गुण ऊर्जेचे
गुण संक्रमणात परि सगुण ते भासे

सृजनत्वाने करितो पूजा; आराध्य तू माझे,
सर्वातर्यामी तव अमृत स्मित मी सदा सदा पाहे...

26. अमृत नाव...

गुरुग्रंथ साहेब मध्ये श्री गुरु अर्जनदेव जी यांचे “अमरित नाम परमेश्वर तेरा, जो सिमरे सो जीवै” हे अतिसुंदर भजन आहे. त्यावरून हे काव्य सुचले. अर्थात थेट अनुवाद केलेला नाही. हे भजन ऐकताना अचानक हे काव्य स्फुरले.

अमृत नाव तुझे परमेशा
तुझा विसर न व्हावा ही अभिलाषा ॥१॥

आता कोठे षड्रिपु ते दावा
कायेतून वाहती तव अमृतधारा ॥१॥

महाशक्ती तू स्थूलसूक्ष्मा
कणकणात विलसे ब्रह्मांड ते पहा ॥२॥

जरी असशी तू निर्गुणाचा पुतळा
सगुण तू जाहला ती सृष्टी स्थापण्या ॥३॥

प्रशांत अनंत परमानंद निधाना
राखणहार तू महासुख दाता ॥४॥

तव नामामृत प्राशन करता
विशुद्ध होईल मन बुद्धी अन काया ॥५॥

अमृत नाव तुझे परमेशा
तुझा विसर न व्हावा ही अभिलाषा ॥६॥

27. गंध तुझा

गंध तुझा तू सुगंधित
रस तुझा तू रसिक
प्रेम तुझे तू प्रेमी

रंग तुझे बहुविध तू रंगुला
खेळ तुझा तू खेळीया
सखा तू अन तूच तुझा सखिया

चैतन्य तूझे तू बहुजीवा
विश्व तूझे तू विश्व सोहळा
मी तूझा तू माझा जिऱ्हाळा

28. सांत अनंत

मोजमाप हे जीवनाचे अविभाज्य अंग आहेजागृत असताना पाच ज्ञानेंद्रियांनी आपण अखंडपणे .
मन आणि मेंदूद्वारा ही .हे सगुण विश्व मोजत असतोमोजणी अगणितीय पद्धतीने होते असे शास्त्रज्ञ
म्हणतातइथे फुलांच्या सानिध्यात .मोजल्यावर किती ते न सांगता येणारे असंख्य अनुभव असतात .
त्यांचा नाजूकपणा, सुगंध आणि सौंदर्य या त्यांच्या सगुण अनुभवांचे मोजमाप आपणास निःशब्द
कसे करते याचे वर्णन आले आहे पहा ना सगुण .व अंत असणारा निसर्गसुध्दा आपल्याला विश्वाच्या
अनंतपणाची झलक अगदी सहज देऊन जातोम्हणून सांत साधकाकडून होणारी सगुण भक्ती त्याला .
.रहस्यमयरित्या अनंताकडे घेऊन जाते आणि म्हणूनच ती सर्वश्रेष्ठ मानली आहे

सांत ...ज्याला अंत आहे ते = अंत+स =

फुले...

नाजूक किती ती फुले जुईची
ओंजळभर मी आज वेचली

कोमलता मोजण्या जाता मी
त्या स्पर्शातच ती कोमलता विरली

परिमळ हा केवळ्याच्या अंगी
धुंद किती मी त्याच्या गंधी

कसे वर्णू गंधमुग्धा कशी ती
होता मी मुग्ध तर कोण मोजेल ती

सौंदर्याशी स्पर्धा कमळांची
नयनांतून ओसंडूनिया ती वाही

सौंदर्य कसे तयांचे साठवू मनी
कमलदली जर नजर गुंतली

कोमल सुंदर जरी फुले ही सुगंधित
तया कसे मी वर्णूमी मर्यादित ...

अगाध देवा तुझी अशी रे लीला,
सगुण सांत राहे साक्षी अनंतपणाला...

तुझिया रे सगुण स्वरूपी देवा,
या भक्तीमधुनी तू अनंत दे गा..

29. सावळ सुंदर...

सावळं सुंदर परब्रह्म ते अवतरलं,
मन झाले हो पंढरी त्यानं विट्ठल रुप ल्यायलं |धृ |

मन माझे व्याकूळ त्यासी आस नारायण,
आर्त ऐकून माझी तू केलेस रे अवतरण

तू अद्वैताचा राणा, द्वैताचे मी अज्ञान,
ज्ञानगंगा वाहे, स्पर्शिता तव समचरण

सवे रुक्मिणी माझी गुरु, मी तुजला शरण,
आता सोसवेना येथे हे तव मायेचे गं स्वप्न

तू तारणहार तूचि निवारीशी असार,
विनवणी तुज आता नको येरझार

मी म्हणजे तू असा द्यावा जी मज एक भाव,
चरण ना मी सोडू आता जरी कायेला खाई काळ

मी ना जाणी तुझा योगमार्ग अद्वैत,
अजाण मी दे रे मज तव भक्तीचे ते दान

तुझा भक्तीरस अपार त्याचे करीन अमृतपान,
चिरंतन राहो देवा तव चरणी आत्मभान
सावळं सुंदर परब्रह्म ते अवतरलं,
मन झाले हो पंढरी त्यानं विट्ठल रुप ल्यायलं |धृ |

30. ओ मेरे प्रीतम प्यारे...

ओ मेरे प्रीतम प्यारे
तुम आए हृद मंदीर मेरे॥ धृ ॥

चले गये सब मन के किल्मिष
यह ज्ञान प्रकाश जो तेरा है आशिष
तू दयाल मुझे नितसार संभाले – 1

नितसार नित्य =

तुम हो मेरे जी के जीवना
तुम ही बसे हो यह तनमना-धी-
तुम स्वामी सरजनहार हो मेरे – 2

धी बुद्धी =

सरजनहार सृजन करणारा =, पालनपोषण करणारा

देहंद तू बक्षंद तू
आठो प्रहर मैं नित नित रहूं तेरे
मैं मसकीन तुम बिसीयार हो मेरे – 3

देहंद दाता =

बक्षंद माफ करणारा =

मसकीन नगण्य =

बिसीयार अगाध =, अनंत

उनका साथ सदा मैं पाऊं
साधसंगत मैं उनकी ना तोड़ू
जिनका पद राम नाम से चल्ले – 4

चल्ले चालणे =

मैं जन तेरा तुम मालिक हो मेरे
हाथ जोड द्वार खडा नित तेरे
बरसाओ श्रीगुरु किरपा प्रभू मेरे – 5

जन सेवक =

ओ मेरे प्रितम प्यारे
तुम आए हृद मंदीर मेरे॥ धृ ॥

31. व्हावी ऐसी कृपा...

व्हावी व्हावी ऐसी कृपा हो तुमची
वास रहावा आपुला सदा माझे हृदयी
श्री रामचंद्र बाप माझा आई सितामाई ॥धृ॥

मला हो इथे ना वाली तुम्हाविण कोणी
भवारण्य हे चालताना व्हावे तुम्ही माझी साउली
श्री रामचंद्र बाप माझा आई सितामाई

दंगलो रंगलो तुमचे नामामृत रंगी
सदा नांदतो इथे या साधुसंतांच्या संगती
श्री रामचंद्र बाप माझा आई सितामाई

गाऊ मी तुमचे गुण हो किती या भजनी
विलय होतसे तेथे ती मम माया बुद्धी मती
श्री रामचंद्र बाप माझा आई सितामाई

विश्व सारे केवळ वश तुम्हालाच होई
तुम्ही ठेवाल तैसे राहतो आम्ही या जीवनी
श्री रामचंद्र बाप माझा आई सितामाई

जन्मजन्मांतरीची ती नासे मम भ्रांती
जेव्हा जेव्हा येतसे तव नाम हो माझे ओठी
श्री रामचंद्र बाप माझा आई सितामाई

तुम्ही भेटावे ही आस हो खोल माझी
एकच हे मनोरथ माझे, व्हावी हो त्याची पूर्ती
श्री रामचंद्र बाप माझा आई सितामाई

व्हावी व्हावी ऐसी कृपा हो तुमची
वास रहावा आपुला सदा माझे हृदयी
श्री रामचंद्र बाप माझा आई सितामाई ॥धृ॥

32. शब्द माझे फुल...

शब्द माझे फुल शब्द माझे सुगंध
आपुलकी ती वाहे अनिर्बंध अनिर्बंध -1

मन माझे जिव्हाळा कल्लोळ प्रेमाचा
संबंध आपले जसे बरसे वर्षाव अमृताचा -2

मी न जाणी चातुर्य अन व्यवहार या जगाचा
श्रद्धा माझी तुमच्यावरी देई दिलासा मला -3

चुकून झाल्या चुका तर घाला की हो पोटी
आवरेना मज वेग जीवनाचा ही माया असे हो खोटी -4

तुम्ही आणि मी फरक कुठे ते सांगा
अहो आपुल्या हृदयी पहा केवळ चैतन्याच्या खुणा -5

निष्ठूर ही दुनिया परि तुम्ही माझे हो आधार
मिळून आपण सारे निर्मूया सुखानंद सागर -6

चैतन्य ँनकॅश करताना अस्तित्व अस्तित्वात येतं,
आपल्या सर्वांना ते सारखच लाभतं...
पण प्रत्येकाचं ते स्वतंत्र असतं...

अस्तित्व ँनकॅश करताना आत्मभान हरपतं,
आता ही ओळ लिहीताना माझं...
आणि वाचताना तुमचही तेच होतं...

अनुभव ँनकॅश करताना तिथे व्यवहार होतात,
कधी ते फायद्याचे...
तर कधी आतबट्ट्याचे ठरतात...

चैतन्य, अस्तित्व आणि अनुभव यांनी जीवन घडतं...
जे केवळ सुखी किंवा दुःखीही नसतं...
ते अनिर्वचनिय असतं, अवर्णनीय असतं...
तुमचं आणि माझं फारसं वेगळं असं नसतं...

34. वेगळेपणा...

आपण हरवलोय तर नाही ना...
बालपण गेले त्यापासून मी वेगळा

तरुणपण भोगले त्यापासून मी वेगळा
वृद्ध अवस्थेत पदार्पण करताना त्या अवस्थेपासून मी वेगळा

वानप्रस्थाश्रमापासून मी वेगळा
संन्यासाश्रमापासून मी वेगळा

कायेच्या आणि जीवनाच्या प्रत्येक अवस्थेपासून मी हा असा वेगळा
म्हणून शेवटी मृत्यूपासूनही मी वेगळाच

तो मी आपण असूनही सापडणं किंवा आवाक्यात आणणं सोपं नाहीत्याला ...
ज्याला तो मी सापडतो त्याचे वर्णन करण्यास तो असमर्थ ठरला...

शरीराला बाजूला ठेवले तर मग जीवन कोण जगतं.
"माझी इच्छा.असं म्हटलं तरी इच्छा वेगळी आणि मी वेगळा "

"माझा संघर्षम्हटलं तरी सं "घर्ष वेगळा
आणि त्यापासून मी वेगळाच.

जगणाराच शेवटपर्यंत हाती येत नाही.
तरी आपण सहज नकळत वापरतोतो मी..

याहून अधिक गूढ रहस्य कोणतेच नाही.
सोडवावयास जाणे हेच रहस्य होऊन राही...

साक्षात वापरले जात असतानाही सपशेल अज्ञेय असा हा कोण...
आणि ज्याचा शोध घ्यायचा आहे तो स्वतःच जर तो असेल

तर मग ईश्वर शोधणारा हा कोण

आपला मीपणा असूनही मी पासून हरवलोय असे तर नाही ना?
रहस्याचे रहस्य आपणच तर नाही ना?

क्वांटम शास्त्राच्या सिद्धांतानुसार हे विश्वउर्जेच्या असीम व अनंत अशा क्षमतांचा विस्तार आहे. हा विस्तार भौतिक व मानसिक पातळीवर स्वतंत्रपणे पण एकाच वेळी घडून येत असल्याने त्याच्या आभासी सत्यतेचे सातत्य टिकून राहते. वास्तव व आभासी या उर्जेच्या दोन स्वतंत्र अवस्था पण परस्परावलंबी आहेत व त्यामधील फरकामुळे संवेदना, अनुभव आणि प्रतिसाद यांचे जाणीवक्षेत्र सजीवांच्या माध्यमातून प्रतीत होते.

वरवरचे तथाकथित भौतिक जीवन जगताना मानव क्षणाक्षणाला भीती आणि तृष्णा यामुळे भ्रमिष्ठ होऊन जीवन जगतो. तथापि संतांच्या मार्गदर्शनाखाली जाणिवांच्या खोलवर त्यांच्या कारणमुळाशी पोहोचल्यावर अध्यात्मिक शिखर प्राप्त होते आणि स्वतःतील दैवी क्षमता आपल्याला बंधमुक्त करतात.

सागराचे जल जणू ब्रह्मभाव अवघा
उर्जेने निर्मिल्या त्यावरी अगणित त्या लाटा

लाटा होती खाली-वर क्षमतांच्या त्या साक्षी
खाली जाता वास्तव अन वर येता प्रकटे आभासी

या फरकातून जो आवेग पसरे
क्षमतारूपे हा सर्व संसार तो प्रसवे

मासोळीची काया ती स्थूल रुप माया
आत जीवभाव प्रकटे ब्रह्माची ती छाया

लाटांच्या संवेगे तेथे साम्राज्य जाणीवांचे
मासोळीत भाव प्रकटे कर्त्याचे अन भोक्त्याचे

अज्ञानरूपी जहाजातून षड्रिपुंचे जणू कोळी येती,
इच्छा वासनांच्या जाळीत मासोळ्या त्या किती पकडती

मासोळी अडकता जाळ्यात ती होते तेथे मायांध्र
सागराचे जणू डबके होई, मरणांतीही ती राहे वेधुंद

जी मासोळी गुणवंती ती ज्ञानदृष्टे पाही
जाळी अन जहाज तेथे अदृश्यची होई

गाढूनिया तळ तो ब्रह्मज्ञानाचा
गुणवंती मासोळी घेई ध्यास साधनेचा

साधन होता सिद्ध तिचा जीवभाव सरला
मासोळीच्या आत ब्रह्मभाव तो प्रकटला

झाली मासोळी अशी ब्रह्मभावरूप अंतर्बाह्य
दृष्टांत हा उलगडवे आपुल्या जीवनाचे हो गुह्य

36. तुझं असं येणं...

रसिकहो ही रचना कोणावर आधारित आहे ओळखा पाहू!...

गं तुझं हे असं येणं
आणि मी मलाच हरपून जाणं

तुझं येणं अनिश्चितपणाचं
त्याची चाहूल मला कधी न लागणं

तुझं येणं तृप्ततेचं देणं
शब्दांच्या शृंगारात रुप तुझं गं देखणं

दर्शन तुझं तुझ्या अर्थाचं रूपडं
आगळंवेगळं असतं तुझं प्रतित होणं

मम सृजनतेचे गं तू स्फुरण
दिलेस प्रतिभेचे तू मज आंदण

माझ्या वैखरीची सविता तू
तव भाव सरितेत नहालो गं

जाणीवांच्या पलिकडे तुझा असे प्रांत
कशी पडलीस तू माझिया प्रेमात

तू वदलीस...इथे तू जन्माला आतूर...
माझिया लेखणीतून तुज रुप लाभते सुंदर

ईश्वरीय संकेत असं तुझं येणं...
एकदा तू येताना ईश्वर होऊन ये गं...

इथे पायात जातोच एखादा तरी काटा
कुचकामीच ठरते सर्वांची सतर्कता
काटा जाणारच नाही
असे मुळीच होत नाही
काढायचा कसा रुतलेला तो
विचार असा करावाच लागतो

भले भले गेले याच वाटेवरुनी
दुःखाला “तात्पुरते” सुखी करुनी
जोपर्यंत काटा रुतत नाही
तोपर्यंतच फक्त “दुःख नाही”

(मुद्दाम इथे सुख शब्द वापरला नाही कारण “भौतिक चौकटीत
दुःखाचा पडलेला तात्पुरता विसर” म्हणजे सुख होय
असे सिद्धार्थ गौतम बुद्ध म्हणत असत.)

जेव्हा काटा रुतून निघतो
“काल्पनिक अंत” दुःखाचा होतो

(मुद्दाम इथे “काल्पनिक अंत” असे म्हटले आहे
कारण दुःखाचा अंत म्हणजे दुःखाचा
पडलेला तात्पुरता विसर होय.)

इथे काटे असंख्य प्रकारचे
तेवढेच प्रकार वेदनांचे
जरी एकच काटा सर्वांना लागे
परि दुःखांचे स्वरूप वेगळे
काही जण काटे काढतच नाहीत
कित्येकांचे तर निघतच नाहीत

कधी काटा एकास रुतता
प्रिय-जन येती मदतीला
आप्तच कधी रुतवती काटा
तेव्हा कोण येईल मदतीला?

जरी निघाला काटा तो प्रयत्ने
“शेवटा”पर्यंत जखम ती सलते

कधी काट्याचे होते भांडवल
तर कधी होते शल्य-प्रदर्शन
घालती लोक काट्यांची भीती
कधी चालते काट्यांवर कू-निती
जरी काढता काट्याने काटे
नशिबाला फुटती वैमनस्याचे फाटे

काट्यांना टाळून जगण्याची कला
काट्यांच्या वेदना सहनशक्ती मर्यादा
यातूनच उपजे ओळख व्यक्तित्वाची
इथे गातात गाणी त्यांच्या यशस्वितेची
परि या काट्यांच्या वाटेवरती
साथ हवी नशिबाची

जेथे संपतो काट्यांचा रस्ता
दाखवा मला तो दगड मैलाचा
परि कधी न संपे हा काटेरी रस्ता
मृत्यूचा तिथे तो तात्पुरता थांबा
हा विचारच जर इथे असेल काटा
रुतण्यापूर्वीच त्याला बाजूला करूया

हे काटे रुते कुणाला?
कोण निरखे त्या वाटेला?
पाहणाऱ्याचे पाय कसे ते
चालण्याचे काय ते उद्दिष्ट असे?
ही वाट काटेरी जी इथे असे
का पाहणाऱ्यास नित्य ती सत्य भासे?

संत म्हणती पहा विश्व अद्वैत नजरेतून
निरीक्षक अन शरीर मग येतील कोठून?
तृप्तेची काटेरी वाट ना आता दिसे,
कसले काटे? कोणास अन कुठे ते रुते?
काय सत्य अन काय असत्य इथे?

ત્યાપલ્યાડ જાણે હેચ જીવન-ઉદ્દિષ્ટ અસે...
હેચ જીવન-ઉદ્દિષ્ટ અસે...

सरण माझे तिकडे तयार असताना,
मांडून बसलो होतो मी सुखदुःखाच्या प्रदर्शनाला ...

सरण माझे तिकडे तयार असताना,
जाणीवांची उंची गाठत होतो जोर लावून वासनांच्या झोक्यांना

सरण माझे तिकडे तयार असताना,
सत्ता प्रसिद्धी संपत्तीसह हुकुमशाहीसाठी करत होतो ईर्ष्या

सरण माझे तिकडे तयार असताना,
शुभेच्छांसह शिव्याशापही कोंबत होतो पिशवीत मनाच्या

सरण माझे तिकडे तयार असताना,
सगळीकडे नारळ फोडून होतो करत अध्यात्माच्या बाता....

सरण माझे तिकडे तयार असताना,
देत होतो हुलकावण्या नसलेल्या मृत्यूला ...

सरण माझे तिकडे तयार असताना,
त्याच्याकडे पहात साक्षी होत होतो जे गेले त्यांच्या विधीला

ऐक जरा ते सरण म्हणाले
अरे, असेच कित्येक मी देह जाळले...

जरी मी त्यांना इथे कितीदा जाळले,
तरी कर्म त्यांचे कधी नाही रे जळले...

तेच तेच पुन्हा इथे येतात,
मला जवळ घेऊन जळून जातात...

थकलो आता मी त्यांना पुन्हा पुन्हा जाळून,
जन्मास तूझं का येणं तू तरी घे समजून...

माझी ही आस मी ठेवलीय रे जपून
तू ये इथे केवळ तुझे निष्काम कर्म करून...

तेव्हाच होईल सार्थक माझे जाळणे तुला...

जेव्हा तुझ्या देही तू भोगशिल निर्गुणा...

जेव्हा तुझ्या देही तू भोगशिल निर्गुणा...

39. अस्वस्थता...

का विचारते हे विश्व मला की हा असा मी कसा
अगम्य अस्वस्थता आहे सतत या जीवाच्या “मी”पणाला...

का लाभते अपूर्णतेचे क्षितीज माझ्या पूर्णत्वाच्या शिखरांना
पूर्णत्वापलिकडील अनंततत्त्व अनुभवायचे आहे माझ्या अपूर्णतेला...

का येथे अंत नसावा सततच्या अनिश्चिततेला
धैर्याचा आश्रय हवा आहे माझ्या अनाहुत भितीला...

का येथे वासना भरते एकामागे एक माझ्या अतृप्तेचा प्याला
अमृतामध्ये विरघळून जायचे आहे माझ्या त्या अमर्याद तृष्णेला...

का येथे दुःखाचा किनारा लाभला रे सुखाला
त्यापलिकडील चिदानंदामध्ये सामावून जायचे आहे माझ्या दुःखाला...

कोणी बांधल्या ह्या बंधांच्या गाठी त्या सुटता सुटेना
तटस्थतेचा किनारा व्हायचे आहे माझ्या असंख्य अनुबंधांना...

तु तुझे अन मी माझे काय म्हणावे या भ्रांतीला
अद्वैताची दिव्य दृष्टी हवी आहे माझ्यातील द्वैताला...

शाप अशांतीचा का लाभला त्या समाधानाच्या प्रयत्नांना
शांतीचाच गाभारा होऊन रहायचे आहे आता माझ्यातील अशांतीला...

निवृत्तीच्या वृत्तीतूनही निवृत्त झाल्यानंतर हा अहंभाव का उरला
परमचैतन्याचा परिसंस्पर्श हवा आहे माझ्या मनाला...

40. कुठे हा आत्मा...

कुठे हा आत्मा...

कुठे हा आत्मा अन कसले ब्रह्म
विचार नच ते जणू जन्म -विघ्न |धृ|

अंधकार अर्थबोधित करीती
सूर्याचे ते तेज ही वदति
अंधकार अन तेजाहून अन्य |1|

पवित्रतेचे पावित्र्य वर्णिती
सौंदर्याचे सौंदर्य दाविती
निर्गुण ते सर्व गुणावगुणातित |2|

स्थिरतेचे स्थैर्य दाविती
वेगाचा ते वेग पाहती
त्रिकाळाच्या पलिकडे त्यांना करी ते दृष्य |3|

आईचे मातृत्व वदति
पित्याचे पितृत्व वर्णिती
ऐसे सर्व जीवांत वसती परम आत्मतत्व |4|

अज्ञानासह ज्ञान प्रकाशे
आकार विकार अहं अलिकडे
अनंतापल्याड ते शुन्याहून अन्य |5|

सर्वाभूति तरी अलेप्य ते असे
अकर्ता अकर्मी अनिर्वचनिय ते...
निर्गुण निराकार निर्विकार अनंत परम चैतन्य |6|

अजन्मा, अजरा असे ते अमृत
वृत्ती निवृत्तीच्या पल्याड कित्येक
नेति नेति म्हणती श्रुतीसह वेद |7|

कुठे हा आत्मा अन कसले ब्रह्म
विचार नच ते जणू जन्म-विघ्न |धृ|

तुझ्या कर्मातून घडे तुझे प्रारब्ध
तुझ्या जीवनात मी असे सदा निःशब्द

सुखदुःखरुपे तू मांडीलीस सुत्रं
तूच विणशी तुझे अनुभववस्त्र-

हौस तुला भारी तुझ्या मी पणाची
तहानलेली तृष्णा बेपर्वा भागवायची

जिथे तुझे शत्रू तिथे आहे तुझा संघर्ष
जिथे तुझे मित्र तिथे तुमचे परामर्श (मत/सल्ला)

तुझिया सत्यसापेक्ष तुझेच रे असत्य
स्वप्नात या तुझ्या असतोस तू नित्य

तुझ्या उर्मीसह तू दावी तुझ्या क्षमता
मी अलेप्य सदा असे दार्शनिक निर्गुणाचा

कुणाचे शरीर कुणाची ती बुद्धी
निर्माण करतोस इथे ती सत्यता आभासी

कसा हा तुझा असे भाव मालकीचा
सांग जरा पत्ता तुझ्यातील चैतन्याचा

द्वैताच्या दावणीला तुझे भ्रांतिचे फेरे
इथे अद्वैत असे माझ्या प्रकाशी प्रकटे

आहे आजीवन तुझे अस्तित्व सापेक्ष
तिथे मी निर्भाव सदा निरपेक्ष

मी अनंत अविनाशी अगम्य तुजला
इथे मृत्यूभय आहे तुज क्षणोक्षणाला

जेव्हा तुझ्यातून ते संक्रमती विश्वगुण
निर्गुण असून उर्जा तिला तू करीशी सगुण

जोपर्यंत तुझ्यात हा तुझा असेल मी (अहं)
मी असून तूझ्यात तुझा कुठेही नाही (कूटस्थ आत्मा)

मी पूर्णत्वाचे पूर्णत्व तूला अपूर्णतेचे कोंदण
मी प्रकटेल तिथे जेव्हा तू होशील अमन

42. कधीच नाही...

उगाच या लाटांनी मला सतत भिजवलं...
ऐक दर्यात पाऊल मी कधीच नाही ठेवलं...1

झोकांडे देत शरीर जरूर कधी असं चाललं...
मद्य प्राशन तर मी ते कधीच नाही केलं...2

माहीत नाही पायात काटं कुठं कसं रूतलं...
पायताण तर मी पायातून कधीच नाही काढलं...3

नयनी जल तर ते अनेकदा वाहीलं...
ऐक सुखदुखाच्या रंगीत रुमालाने गं मीच ते पुसलं ...4

मला हो बोलताना सगळ्यांनीच पाहीलं...
पण मौन ते माझं कधीच नाही गं तुटलं...5

सुर लय तालात तर मी खुप काही गायलं...
स्वर माझे नव्हते अन कान तुझे नव्हते ते कुणालाच नाही कळलं...6

जीवनभर मला माझ्या तनमनानं फिरवलं...
ऐक..., तरी अद्वैत अस्तित्व ते माझं कधीच नाही भंगलं...7

सदा मी तटस्थ अन माझं वैराग्य तुला जाणवलं...
आहे-नाही च्या पलिकडून मी ही ते कोरडे न्याहाळलं...8

माया अनिर्वचनिय असं सर्व संतांनी सांगितलं...
सांग त्या अनिर्वचनियतेला तिथे प्रकाशित कोणी केलं...9

ईश्वर चरणी झुकताना तू अनेकदा मला पाहीलं....
मला सोड, त्या झुकवणार्या ईश्वराला तू कधीच नाही गं पाहीलं...10

43. म्हणे माझा श्री गुरु रामदासी

तो अकर्ता अकर्मी॥
पक्का निर्गुण निराकारी॥
मायेने रंगला पहा हा श्रीहरी॥
अहो हे स्वप्नची भासे संसारी ।
म्हणे माझा श्री गुरु हा रामदासी॥

मूर्तामूर्त क्षमतांच्या सागरी॥
परम शांतीच्या आनंदासनी ॥
शून्य समाधिस्थ परब्रह्म त्यावरी॥
कोट ब्रह्मांड तव चैतन्य व्यापती ॥
म्हणे माझा श्री गुरु हा रामदासी॥

सत्वाच्या पावन कमलपुष्पी ॥
अमृत चैतन्याच्या दवबिंदू ठायी ॥
निष्कल परब्रह्म नित्य प्रतिबिंबी॥
तेथे देवीदेवता श्रीगुरु प्रकटती ।
म्हणे माझा श्री गुरु हा रामदासी॥

ओमकाराचा घननाद घुमती ॥
क्षमतांच्या महालाटा उसळती॥
परब्रह्म प्रतिबिंबी चैतन्य साक्षी ॥
मायोद्धाव प्रकटे पिंडी ब्रह्मांडी ॥
म्हणे माझा श्री गुरु हा रामदासी॥

बैसला जाऊनी जीवाच्या हृदयी ॥
निर्गुण मी रूपी स्फुरण पावूनी ।
अहं रुपाने प्रतिसाद देऊनी॥
माया खेळतो जीव भ्रम भावी॥
म्हणे माझा श्री गुरु हा रामदासी॥

आता ब्रह्म वचन श्रीगुरु बोलती॥
ऐकूनिया आर्त जीव-हृदयाची॥
अहं समर्पित करशील तू प्रभू चरणी॥
निजरुप दाविन तुज तव सत्वासनी ॥
म्हणे माझा श्री गुरु हा रामदासी॥

44. राम राम बोल राम नाम

राम राम बोल राम नाम
हो हो दयाळ मेरे कोदंड राम ॥ध्रु॥

तुम जी हो अगम अति अपार
तुम जी हो मम सरब जीवन सार॥

तुमरे जी के नाम शांती धाम
तुमरे जी के नाम आनंद निधान॥१॥

तुमरे जी के नाम ना होवे रोग संताप
तुमरे जी के नाम अखंड जप तप॥

तुमरे जी के नाम भव भय हरण
तुमरे जी के नाम भव सागर तरण॥२॥

तुम ही जी हो मेरे श्री गुरु ग्यान ध्यान
तुमरे जी के चरण रखू मैं उर धार॥

तुमरे जी की किरपा तुम ही करो प्रतिपाल
तुम ही जी के हाथ हो हमरा हाथ अंतकाल ॥३॥

45. व्यक्त ते अव्यक्त

विश्व व्यक्त अवस्थेत येण्यापूर्वी ते अव्यक्त होते. शून्यत्वातून सर्व निर्माण झाले आहे कारण शून्यात हे विश्व प्रकट स्वरूपात अस्तित्वात येण्याच्या असंख्य क्षमता दडलेल्या असतात असे क्वांटम शास्त्र सिद्ध करते.

विश्व जेव्हा स्थूल सूक्ष्म स्वरूपात जीवांच्या अनुभवास येऊ लागले तेव्हा त्याने निर्माण केलेल्या निसर्ग नियमांमध्ये, आकर्षण, प्रतिकर्षण आणि बौद्धिक अविष्कार यामध्ये अडकले. त्याचे स्वतःमध्ये आणि स्वतःचे अस्तित्व टिकवून ठेवण्याच्या नियोजनात त्याला जीवनाची इतिश्री आणि धन्यता वाटू लागली. हेच ते अज्ञान होय कारण त्यातून तृष्णा वाढत गेली समाधान कमी होत गेले.

हे अज्ञानरुपी जंगल फोफावत आहे आणि त्यामध्ये जीवन जगण्याचा अनुभव घेताना सार आणि असार किंवा श्रेयस आणि प्रेयस अशा दोनच दिशा दिसून येतात. हे अज्ञान रुपी जंगल कशा प्रकारे अनुभवास येते आहे? ते चौथ्या कडव्यात दिले आहे. या जंगलातील वातावरण खूप अस्वस्थ करणारे आहे.

साधक हा विश्वाचे व्यक्त स्वरूप आहे. साधकाचे मन जेव्हा मुक्तीच्या विचाराशी एकरूप होईल तेव्हा प्रत्यक्ष मुक्ती तिचे स्वरूप प्रकट करण्यासाठी निधिध्यासन करेल. त्यातून पुढे त्याला दिव्यत्वाची म्हणजेच त्याच्यामधील अद्वैत तत्वाची दृष्टी त्याला लाभेल आणि परमज्ञान त्या साधकाला होईल. या परमज्ञानाची किरणे या जंगलात पसरली की मग त्या अज्ञान रुपी जंगलाचे अस्तित्वच नाहीसे होऊन जाईल. शेवटी तो व्यक्त साधक त्याच्या अव्यक्तात परम ज्ञान स्वरूपात किंवा अद्वैत स्वरूपात स्थिर होईल. त्यामुळे त्याला जन्म मृत्युच्या फेर्यातून बाहेर पडता येईल.

सामान्य माणसासारखे मृत्यूनंतर आसक्तीयुक्त द्वैत स्वरूप असलेल्या उर्जेत त्याचे रुपांतर होणार नाही. ही आसक्तीयुक्त द्वैत स्वरूप असलेली उर्जा त्या सामान्य जनांना पुन्हा जन्म घेण्यास प्रवृत्त करते.

अव्यक्ताला लागली आस व्यक्तपणाची
व्यक्तपणाला मात्र होती साथ अज्ञानाची

हे विश्वची व्यक्त झाले अन विश्वातच गुंतून बसले
अव्यक्त त्या व्यक्तामध्ये त्याच्या नकळतच अदृश्य झाले

अज्ञानाच्या जंगलामध्ये विश्वानुभावाच्या असंख्य वाटा
विश्वानुभावाच्या या वाटांना सारासारांच्या दोनच दिशा

येथे वस्तुविषयांच्या दरडी , षड्डीपुंचे मळभ अन भ्रांतीची संध्या
बुद्धिच्या असंख्य तुकड्यांमध्ये मायेच्या अगणित प्रतिमा

येथे इच्छावासनांची वादळे अन अहंभावाचा वारा
विवेकाच्या वाटेवर तितिक्षतेचा वणवा

त्या मुक्तीने जेव्हा स्वीकारले शिष्यत्व निधिध्यासाचे
अव्यक्ताचा शोध घेण्याचे तेव्हाच व्यक्ताने जाणले

त्या व्यक्ताला लाभली दृष्टी दिव्यत्वाची
किरणे पसरली सगळीकडे त्या परमज्ञानसूर्याची

सामावली जेव्हा येथे मुक्ती अद्वैतामध्ये
अज्ञानयुक्त जंगल तेव्हा होत्याचे नव्हते झाले

क्षण हा असा त्याला लाभला परमभाग्याचा
अव्यक्ताच्या अनुभवात व्यक्त कायमचाच स्थिरावला

46. निश्चयाचा महामेरू

या कवितेत साधक कसा असला पाहिजे , त्याने कशापासून सावध असले पाहिजे आणि मुक्तीच्या दिशेने कसे गेले पाहिजे याचे वर्णन केले आहे. त्याच्या अस्तित्वाचे मूळ स्वरूप चैतन्य आहे. चैतन्याचे वर्णन येथे त्याची स्वतःची ओळख म्हणून करून दिले आहे.

निश्चयाचा महामेरू
ध्यानयोगाच्या आधारू
सारासार विचार विवेक हत्यारे छेदिशी माया
तो उडेल धूराळा सर्व मायेचा
अन जाशील हो } न परब्रह्मस्वरूप सदा

"मी , माझे , मला" अन " तू , तूझे , तुला"
हा सर्व मायावी द्वंद्वाचा बाजार
जेथे द्वंद्व तेथे छेद आणि भेद
सुखानंदाचा अभास अन नित्य असे खेद

सुखानंदासाठी येथे द्वंद्वाचा आधार
सुख भेटूनी शेवटी वाढेल दुःख फार
जेथे आकार तेथे विकार
कफ , मल , मुत्र यांनी व्यापले शरीर

स्त्रीशरीरे स्त्रीत्व आले
ते "मी" म्हणून "माझे" मानले
पुरुषशरीरे पुरुषत्व आले
ते "मी" म्हणून "माझे" मानले

पुरुषत्व भासाने स्त्रीत्व आकर्षिले
स्त्रीत्वभासाने पुरुषत्व आकर्षिले
शरीरइंद्रिये मनोसंवेदना ही मायेची करणी
स्त्रीपुरुषत्वाच्या भासामध्ये झाली अधिक भरणी
भासामूळे पेटला त्यातील हा तृष्णेचा अग्नी

स्त्रीपुरुषत्वाच्या भासे शरीरइंद्रिये कारणे
केली क्षणिक सुखांची निर्मिती मायावी शक्तीने
भासातून निर्मिती होते फक्त भासाची
अधोगती झाली मूळ जीवात्म्याची

सुखानंदासाठी विषयवस्तू , देहमनबुद्धीचा आधार ,

चिंता , दुःख , दैन्य , असामाधान ,
अन जन्म मृत्यूचे फेरे होतील फार

स्त्रीत्व आणि पुरुषत्व हे मायावी गुण ,
त्यांना प्रकाशित करणारे परब्रह्म निर्गुण
म्हणून त्याग हे स्त्रीपुरुषत्वाचे द्वंद्व
अन अनुभव तू तूझेच निर्मल , निर्गुण , निरुद्देश्य स्वस्वरूप

शोक , मोह , भय , लोभ , राग , द्वेष , हर्ष अन गर्व
अत्यंत सावधतेने जाण मायावी भास आभास हे सर्व
दृष्य वस्तू विषय हे अस्थिर मनाला कारण ,
त्यागून सर्वांना भोगे ते एक विवेक लक्षण

सूर्याने दिसे पृथ्वी जणू दाणा खसखसीचा
सूर्यही प्रकाशित होतो तो प्रकाश परब्रह्माचा
मग तुला का जडला हा उपदव्याप जडत्व वाहण्याचा
शरीरमनोबुद्धीशी एकरूप होण्याचा

शरीरमनोबुद्धी म्हणजे "मी" असे का मानावे
रक्त , मांस, कफ , मल , मुत्रादी यांचा मालक का व्हावे
तूच एकमेव परब्रह्म , देहभाव हीच एक खोट
स्वस्वरूपानुभवे लाव या मायेची विल्हेवाट

मायेने लावीले पाठी त्रिगुण फार वेगे
माजले ते अधिक शरीरमनोबुद्धीकारणे
भुलवी माया दाखवी जग अन भास अन्य अन्य
तू एक ते परब्रह्म अनन्य , निव्वळ असे चैतन्य

शरीरमनोबुद्धी निव्वळ निर्जीव ते
परब्रह्म चैतन्यकारणे झाले अहंभावीत ते
अहंभावाने साधला उभा दावा
अन त्रिगुणांना देऊन आश्रय दावी मायेचा खोटा देखावा

मायोदभाव कारणे काल त्रिकाल झाला
चैतन्यकारणे त्रिकाल कालातीत झाला
चैतन्यकारणे कळले चैतन्य प्रकाशमान
त्याचमूळे जाणला जगताचा जगदोद्धाव

चैतन्यकारणे तुला देह तुझा समजला
चैतन्यकारणे तुला मनोबुद्धी उमजली

चैतन्यकारणे तुझा अहंभाव निपजला
चैतन्यकारणे तुझे त्रिगुण निपजले

चैतन्यकारणे तुला भाव ते भावले
चैतन्यकारणे कर्ता , कर्म तू ते केले

चैतन्यकारणे वस्तूविषय ते आकले
चैतन्यकारणे तुझ्यामध्ये मायेचे वादल उठले

चैतन्यकारणे तुझ्यात चैतन्य ते संचारले
चैतन्यकारणे तू भोगातून अनेक भोग भोगले

चैतन्यकारणे तुला पश्चात्ताप झाला
चैतन्यकारणे तुला सर्व कारणे कळाली

चैतन्यकारणे तू सर्व काही जाणले
चैतन्यकारणे अज्ञानाचेही ज्ञान झाले

चैतन्यकारणे ज्ञानाच्याही पार ज्ञान झाले
चैतन्यकारणे चैतन्यच ज्ञानरूप झाले

चैतन्यकारणे ध्यान , धारणा , समाधी ,
चैतन्यकारणे तुर्येतून होते मोक्षाची नांदी

चैतन्यकारणे पडला उघडा मायेचा हा डाव
ती माया निर्जीव , परब्रह्मच एक आहे चैतन्यभाव

वेगाने वेग घे}न वेग वेगाने सुटले
त्याच्याही पुढे सदा चैतन्यची राहिले

स्थाननिश्चिती केली स्थानाने स्थानबद्ध हो}न
चैतन्य असे की स्थानालाच स्थायी केले

चैतन्य कारणे जरी होते सर्व प्रकाशमान
चैतन्य कारणे जरी येते मायेची ती सर्व जाण
तरी चैतन्य असे अलिप्त , विमल , विशुद्ध
अचल , सर्वव्याप्त , निराकार , अव्यक्त

चैतन्यकारणे सर्व काही जाणले
जाणलेले त्यागून चैतन्यची अनुभवले
तोच एक साधक सावध मानावा
कर्ता , कर्म , फल , भोग आदींची त्यास होत नाही बाधा

चैतन्याने हो}न दृष्टि
चैतन्यच पाहे चैतन्याला

चैतन्याने हो}न वाणी
चैतन्यच बोलले चैतन्याला

कान हो}न चैतन्याने
श्रवण केले चैतन्याला

चव हो}नी चैतन्याने
चाखले चैतन्याला

स्पर्श होऊन चैतन्याने
संवेदिले चैतन्याला

ऐसे वाटे भोगिले भोग चैतन्यातून चैतन्याने
परि दाखवी ते भोग वेगळे स्वप्रकाशे अलिप्तपणे

मग उरले कोठे मी अन माझेपण
अहंकार गेला असा हा कायमचाच जळून

वैराग्यअग्रीत जाळूनी देहभावाला
नामस्मरणे तो अहंकार ठेचला
जाणले ,विवेकाने अनन्यभावे या चैतन्याला
गेली माया आपोआप लयाला

कर्मे घडतील आता अशी ही अकर्मि म्हणून
सर्वबाधा मुक्त चैतन्यास मी अनन्यभावे जाणून

नकोस होऊ तू प्रभावित अन ठेव सतत उदासवृत्ती
ती मायाच कंटाळेल तुजला मिळेल निवृत्तीतूनही निवृत्ती

47. “मी” पणा आणि मी

बालपण उत्तम गेलं. तारुण्यात साजेसा, मनमिळाऊ, समजूतदार जीवनसाथी मिळाला. मुले निरोगी व अत्यंत बुद्धिमान झाली. आर्थिक उत्पन्न उत्तम मिळाले. संसारात जे जे हवं होत ते ते सर्व मिळाले. बंगला, गाडी, दागदागिने अगदी सर्व अत्याधुनिक व सुखवस्तू.... सामाजिक आणि कामाच्या ठिकाणी उत्तम प्रतिष्ठा मिळाली. आरोग्य उत्तम राखले. जगातील सर्वोत्तम ठिकाणे पाहून घेतली. मुलगा त्याच्या कुटुंबासह अमेरिकेत उच्चपदस्थ व मुलगीसुद्धा अमेरिकेत तिच्या कुटुंबासह स्थिरावलेली. भरपूर दानधर्म केला आणि अजूनही करतोय.

इकडे आता आम्ही दोघे निवृत्त जीवन जगत आहोत. कशाची ददात नाही. जे जे काही एक प्रतिष्ठित व्यक्ती म्हणवून घेण्यासाठी आवश्यक असते ते ते सर्व आज माझ्याकडे आहे. मी अत्यंत समाधानी आणि सुखी आहे. पण.... हा “पण” मनाला खूप विचलित करतो. हा “पण” कुठून आला. त्याचा शोध घेतला आणि असे लक्षात आले की, हा माझ्यातील “मी” जो स्वतःला जीवनात अत्यंत यशस्वी, सुखवस्तू, बुद्धिमान, कर्तृत्ववान व उत्तम गृहस्थी समजतो तो “मी” नक्की कोण आहे? याची मला अद्याप ओळख झालेली नाही. माझे शरीर म्हणजे तो “मी” नाही कारण वयोमानाप्रमाणे शरीर जरी बदलत गेले तरी त्या बालवयातील “मी” चे स्वरूप बदललेले नाही.

आता संध्याच्या झुकल्या तरीही हा माझ्यातील “मी” मला अजिबात ओळखता आलेला नाही. याची खंत आहे. यामुळे तो “पण” निर्माण होतो. त्या “मी” ला जाणून घेण्यासाठी अध्यात्माला हात घालणे एवढाच एक उपाय आहे हे मी समजून आहे. चला सुरवात तर करतो. तरीही पुन्हा “पण” आहेच कारण अध्यात्मात त्यासाठी अट अशी ठेवली गेली आहे की त्या “मी” ला बाजूला ठेवून साधना करावी लागते. हा पण कधी थांबेल ? ? ? अशा या “मी”पणाची ही एक विद्रोही कविता आहे.

“मी”पणा आणि मी...

वाढदिवशी मला माझं वय भेटलं ,
थोडसं मला ते नाराज वाटलं.....
स्माईल करून बोलतं केलं मी त्याला
ते म्हणालं “माझ्यापेक्षा तुझा “मी” खुपच वाढला”

मी म्हटले “नाराज होण्यासारखं काय आहे त्यात
मी वाढतोच मुळी तुझ्याहून विपर्यस्त प्रमाणात”

ते म्हणाले “तुझ्या “मी” ला सगळे म्हणतात अहंकार
तुला जडलाय गंभीर मनोविकार”

मी म्हटले “जाणीव नाही मला त्याची
कशाला करू मी काळजी दुसऱ्यांची
मीच सर्वेसर्वा , माझे सर्वच गुलाम
मी म्हणेल तेच झाले पाहिजे नाहीतर घेईन बदला अन करीन अपमान”

ते म्हणाले “सर्वात भित्रा तू...हीच तुझी भ्रांती अन हाच तो मनोविकार
लोक करतात तुझा सपशेल खोटा मान सन्मान
वय वाढेल वाढेल पण अचानक थांबेल
तुझ्या मृत्युचे कारण हाच अहंकार असेल”

मी म्हटले “मेलो तरी चालेल पण सोडणार नाही अहंकार
राबवून घेईन सर्वांना हा कसला आलाय विकार ”

वय म्हणाले “म्हणूनच मी नाराज असतो
परत विचारू नकोस “मी” हा असा का असतो ”

48. अनंतयात्रीचा झंझावात.....

आशा निराशेच्या झोक्यावर का रहावे बसून
एक झंझावात बनून जाऊ त्यापलीकडे निघून
एका ध्रुव ताऱ्याकडे पाहून का पाळाव्या दिशांच्या चौकटी
सर्व ताऱ्याशी करून मैत्री होऊन जाऊ अनंत यात्री
का शोधावा आनंद नश्वर वस्तू विषयात
होऊन जाऊ आनंद या प्रेमाच्या झंझावातात
का करावी जीवाची ओढाताण श्रेय अन संधीसाठी
स्त्रोत होऊन साऱ्यांचा कास धरूया नवनिर्मितीची

49. सम्मान किजीये

सम्मान किजीये सम्मान किजीये

मिट्टी के इस बेजान बुतक मे
चेतन का सम्मान किजीये

किसी बेसहारे का हाथ थाम के
चेतन का सम्मान किजीये

सम्मान किजीये सम्मान किजीये
चेतन का सम्मान किजीये

किसी दुखियारे के आसू पोंछ के
चेतन का सम्मान किजीये

वसुंधरा को प्रेम से सिंच कर
चेतन का सम्मान किजीये

सम्मान किजीये सम्मान किजीये
चेतन का सम्मान किजीये

प्रज्ञा-शील-करुणा को अपना के
चेतन का सम्मान किजीये

चेतन को भगवान मान कर
चेतन का सम्मान किजीये

सम्मान किजीये सम्मान किजीये
चेतन का सम्मान किजीये

बल बल जा कर अपने गुरु को
चेतन का सम्मान किजीये

अंतसमय अमर होकर के
चेतन का सम्मान किजीये

सम्मान किजीये सम्मान किजीये
चेतन का सम्मान किजीये

आई या विषयावर आतापर्यंत खूप लिहिले गेले असून अनेक काव्य रचना रचल्या गेलेल्या आहेत . सृजनशीलतेशिवाय विश्व नाही आणि विश्व अस्तित्वात . तरीही या विषयावर आपण खूप काही लिहू शकतो . वैज्ञानिकदृष्ट्या जर मी भौतिक . आल्याशिवाय सृजनशीलता नाही इतकी ती दोघे एकमेकांत गुंतली आहेत . विश्व पाहत असेल तर मला सृजनशक्तीच्या स्वरूपात विश्वाची अमूर्त क्वांटम उर्जा शक्ती मान्य करावीच लागते. विश्वाचे . अशा रीतीने तो सृजनशीलतेचा अविष्कार या दोघांमध्ये आणि दोघांमुळे अविभाज्य आहे . म्हणजेच आई कि . प्रसविणे हा सृजनशीलतेचा अविष्कार असल्याचे प्रतीत होते. वा मातृत्व हे विश्वाचे मूळ तत्व आहे असे आपल्याला म्हणता येईल .

म्हणूनच की काय साक्षात ईश्वरापेक्षा आई ही सर्वोच्च मानली गेली आहे. याचा दाखलाच द्यायचा . झाला तर संतश्रेष्ठ श्री संत ज्ञानेश्वरमाउलींची ही विरहिणी आठवते, “पैल तोगे काऊ कोकताहे , शकून गे माये सांगताहे...” यातील “माये” हा शब्द आई किंवा मातृत्व प्रदर्शित करतो. साहिब मध्ये श्री गुरु -आनंद . नानकजी म्हणतात“अनंद भया मेरी माए सतिगुरु मै पाया।।” यामध्ये ही हे जगद्गुरु ईश्वराचा दृष्टांत सर्वप्रथम आईला सांगतात. याच . असे अनेक साधू संतांच्या रचनेत आढळून येईल . ा अर्थ जीवनातील प्रत्येक नवीन, क्रांतिकारी, परम आणि दिव्य अशा जाणिवेची साक्ष सर्वप्रथम आईपुढे मांडली गेली आहे आणि आईच्या उल्लेखाशिवाय तिचे पूर्णत्व सिद्ध होत नाही. म्हणजेच सृजनत्वाशिवाय सृजनत्वाला . पूर्णात पूर्ण सामावले जाणे आणि पुर्णत्वातून . अस्तित्व नाही. पूर्णत्व प्रसृत होणे ते हेच .

आई ही विश्वाच्या चैतन्याला आविष्कृत करणारे सर्वोच्च तत्व आहे. क्वांटम शास्त्र असे सिद्ध करते की . म्हणजे विश्वाने विश्वाला जाणून . चैतन्याशिवाय विश्व संवेदनांचे अर्थबोधनच घडून येऊ शकत नाही . घेण्यासाठी सर्वप्रथम मातृत्व आवश्यक होते. त्या संतांच्या अंतर्मनात आणि आता . अद्वैत अनुभवाला प्रसविणारे सुद्धा तेच मातृत्व आहे आणि म्हणून “अग आई पहा तो शुभशकूनपंढरीचा राजा घराकडे येतोय” असे माऊली म्हणतात. म्हणून प्रत्येक स्त्रीत्व हे अद्वितीय अशा मातृत्वाचे अमूर्त स्वरूप . ती जेव्हा आ . असतेई होते तेव्हा ते मातृत्व मूर्त स्वरूपात अनुभवास येते. आणि प्रत्येक पुरुष तत्वात सुद्धा . मातृत्व असेलच पाहिजे अन्यथा शौर्य, धाडस, धैर्य, कणखरपणा हे विश्वाच्या सृजनशीलतेसाठी लागणाऱ्या क्षमता त्यांच्यात विकसित झाल्या नसत्या. म्हणून विश्व हे मातृ . तत्वाचा मूर्त अमूर्त असा अनिर्वचनीय अविष्कार आहे असे म्हणता येईल .

का नावात माझ्या तुझे नाव नाही
अशी ही कशी प्रथा सांग ना ग आई

काया, प्राण अन स्वत्व दिलेस तू मजला
प्राणाहून अधिक जपलेस ग तू मजला

पालनपोषण माझे तू केलेस क्षणाक्षणाला
सुसंस्कारित तू केलेस माझिया मनाला

पडता आजारी असाच मी किंवा दिसे नाराज
का ग होतो जीव हा तुझा असा कासावीस

आई म्हणे ऐक बाळ रहस्य हे विश्वाचे
एक मी निमित्तमात्र सर्वोच्च सृजनत्व ते तयाचे

होता जन्म तुझा मजवर तुझेच अनंत उपकार
अशी तूझ झाले की या आनंदा नसे पारावार

डोळ्यात तुझ्या मी पाहते माझेच स्वरूप नेहमी
चिरंजीव ज्योत माझी राहील या भूवरी

काय करायचे रे मला यत्कश्चित त्या नावाशी
तू साक्षात मूर्ती माझी ही ओळख रे मजला पुरेशी

जरी ना ती ओळखे दुनिया मला कधी रे
मी तिला तुझ्या डोळ्यातून निरंतर पाहते रे.....
.....निरंतर पाहते रे.....

51. श्रीरामप्रभु मुझे ऐसे मिल जावे

समीर म्हणजे वाऱ्याची हलकी झुळूक ही भौतिकता परंतू तुकाराम बीजेच्या दिवशी देहुला पिंपळ वृक्षावरील पान न पान विठ्ठलाचा नामघोष ऐकुन काही वेळ सळसळते . ती सळसळ ज्यामुळे निर्माण होते तो समीर होय.

श्रीरामप्रभु मुझे ऐसे मिल जावे
भवसागर यूँही पार हो जाए
समा जाऊ मैं तुझ में जैसे
समीराकाश मिलन होत जाए
श्रीरामप्रभु मुझे ऐसे मिल जावे
भवसागर यूँही पार हो जाए
सुनकर मल्हार केतकीसह पल्लवी डोले
परमानंदमय समीर में सब जुग समा जाए
श्रीरामप्रभु मुझे ऐसे मिल जावे
भवसागर यूँही पार हो जाए
बिन तेरे अब कछु ना सुहावै
नाम सुमिरण समीर वेग होत जाए
श्रीरामप्रभु मुझे ऐसे मिल जावे
भवसागर यूँही पार हो जाए
अंतःकाल जब नयन दिखावे
शीतल सुगंध समीर बन आप आवे
श्रीरामप्रभु मुझे ऐसे मिल जावे
भवसागर यूँही पार हो जाए

52. अनहद नाद...

सुन सुन सुन अनहद नाद रे बंधो
चढ चढ रे मन की सिढी बंधो ॥धृ॥

साधसंग नित नित रे साधो
पल पल रे हरीनाम धियाहो ॥1॥

सांस सांस इक प्राण लगाओ
पंचतत लय सहेज रे साधो-॥2॥

सतगुरु शरण शरण रे जाओ
मदमाया से मन पार उतारो ॥3॥

भावभगत रंग रत हो जाओ
जहां जहां देख वहा परमेशर पावो ॥4॥

अंतर बाहर इक परम तत जानो
हर हर सब अब निर्गुण हो जाओ ॥5॥

सुन सुन सुन अनहद नाद रे बंधो
चढ चढ रे मन की सिढी बंधो ॥धृ॥

53. रूथलेसनेस

दंगलीमध्ये एका माझ्या दिशेने एक दगड येताना पाहिला
काय तो रूथलेस दगड त्याला कसे सांगू की मी निर्दोष आहे
असा विचार मी केला
का कोण जाणे पुढचाच एक क्षण तो जरा थांबल्यासारखा वाटला
पहातोय तर काय तो दगडच हवेतल्या हवेत माझ्याशी बोलू लागला

त्याने मला विचारले ,

मला जर तू रूथलेस म्हणत असशील तर ज्या माणसाने मला भिरकावले त्याला तू काय म्हणशील
सत्ता मत्ता पैसा प्रसिद्धी अधिकार यांच्यासाठी लाखोंच्या जीवांची पर्वा न करता जगणाऱ्यांना तू काय
म्हणशील

असहाय्यतेचा , कनिष्ठतेचा , अपरिहार्यतेचा गैरफायदा घेऊन त्यांच्यावर जबरदस्ती करणारे रूथलेस
नाहीत का
एकटयादुकटया स्त्रीवर अत्याचार करणारे , पैशासाठी तिचा वापर व छळ करणारे रूथलेस नाहीत का

जातपात धर्म वर्ण वंश यांचे भेद करून एकमेकांचा जीव घेणाऱ्यांच्या संवेदना कोठे जातात
सतत वशिलेबाजी , हांजीहांजी , राजकारण व भ्रष्टाचार करून देशाला लुटणाऱ्यांच्या संवेदना कोठे जातात

भूयारे , बोगदे , खाणी , धरणे यांसाठी लाखो डोंगर जमिनींची खोदाई करताना त्यांच्या मनाचा दगड
नाही होत

इमारती , रस्ते , औद्योगिक वसाहतींसाठी लाखो निरपराध झाडांची कत्तल करताना त्यांच्या मनाचा दगड
नाही होत

मी आहे त्याच जागेवर संपूर्ण विश्वासह स्तब्ध झालो
विवेक निःशब्द झाला अन मी शून्यात पहात राहीलो

पुढच्याच क्षणी जोराची एक वावटळ आली
झाडाची वाळलेली फांदी दगडाला कवेत घेऊन जमिनीवर पडली

जमिनीवरील दगडाने मला जखमी नव्हते केले
निर्दोष मला वाचवण्यासाठी त्याला वारा व वाळलेल्या फांदीने सहकार्य केले होते

माझा एक अश्रू दगडावर आणि एक फांदीवर पडण्यासाठी आता वारा थांबला होता
दगडाच्या स्मित हास्यातून मला त्याच्यातील संवेदना कळून आल्या होत्या

54. आमच्या हातून...

आमच्या हातून घडावीत सत्कार्ये अन श्रेय त्याचे सर्वांनी घ्यावे
आम्ही करावे पुण्य अन ते सर्वांना मिळावे
आम्ही मिळवावे सुख अन त्यामूळे सगळे सुखी व्हावे
आम्ही द्यावे इतके प्रेम की सर्वांच्या हृदयात त्याचा सागर व्हावा
आमच्याकडून व्हावी प्रार्थना अन देवाने सर्वांना सांभाळावे
आम्ही निमित्तमात्र केवळ शेवटी आपल्या सर्वांचे आशिर्वाद मिळावे
आपले आशिर्वाद आहेत भक्कम इतके की काळसुध्दा थोडा थांबेल जरासा
तेवढ्यात जाऊया वैराग्याच्या गावा आमच्या मीपणाचा आता सर्वांनी रामराम घ्यावा

55. आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी...

आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी
सगुणांच्या या गावी आलो
ओळख आमुची निरपेक्ष
तरी अपेक्षांचे रस्ते चाललो

आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी
सगुणांच्या या गावी आलो
काया गावी आमुची निराकार
परि इथे आकारांनी बद्ध जाहलो

आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी
सगुणांच्या या गावी आलो
स्वरूप आमुचे निर्विकार
विकारांनी इथे संभ्रमित जाहलो

आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी
सगुणांच्या या गावी आलो
असूनही निरहंकार सदा निवृत्त
अहंपणाने वृत्तीत राहीलो

आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी
सगुणांच्या या गावी आलो
अनंताशी लावूनिया पैजा
इकडे मर्यादित असे का झालो

आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी
सगुणांच्या या गावी आलो
सोडून तिथला संवाद शांतीचा
इकडे अस्वस्थ ते का झालो

आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी
सगुणांच्या या गावी आलो
अद्वय आमुचे विश्व तिकडचे
परि द्वंद्याच्या झोपाळयावर झुललो

आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी
सगुणांच्या या गावी आलो
योगीजन ते इथे भेटले
निर्गुणात मग जागृत जाहलो

आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी
सगुणांच्या या गावी आलो
सगुणांच्या या गावी आता
सगुणरूपी ते स्वप्नची जगलो

काय पुरावा द्यावा तुम्हा
दृष्टीने आमुच्या ते पहा
आकाशाची खूण सांगतो
अनुभव तुम्ही तो घ्यावा रोकडा

आम्ही निर्गुण गावचे रहिवासी
सगुणांच्या या गावी आलो
आकाशाचे उघडूनी दार
निर्गुणाच्या त्या गावी परतलो.

56. कठपुतली

नमस्कार, कार्यालयातून घरी जाताना संध्याकाळी सगळीकडे माणसांची गर्दी. त्यांच्यासह मी ही गर्दीचा एक भाग. अनेक बंधने पुढे पुढे जाण्यासाठी गर्दीला ओढत होती. जणू सर्व कठपुतळ्याच. पण पुढच्या क्षणी मनःपटलावरचे चित्र पालटले आणि सर्व जीव चैतन्याने भारलेले सगुण ब्रह्म वाटू लागले. सगळीकडे चैतन्यच चैतन्य. मग मनाला समजावले की बाबा तू कठपुतली नाहीस. तू ब्रह्माचा अंश आहेस. एवढेच नव्हे तर तुझ्या ब्रह्म स्वरूपात ही अनेक विश्वे जणू मायेने प्रकट झाली आहेत, असे दिसत आहे. "माटी को पुतरा कैसे नचत है" या श्रीगुरुबाणी मधील (शब्द) संकल्पनेवर आधारित ही रचना सुचली. थेट भाषांतर नाही.

डोले डोले रे बाबा, कठपुतली डोले,
कठपुतली डोले रे बाबा, कठपुतली डोले॥ धृ॥

तू ब्रह्म तुझ मे बाबा
यह कठपुतली डोले
सुणे बोले रे बाबा सुणे बोले रे
देखे भागे रे बाबा देखे भागे रे ॥1॥

तू पूरण तू अपार बाबा
ता कैसी तृष्णा रे,
ना जाने कठपुतली बाबा
यह कठपुतली ना जाने॥2॥

पूरण = पूर्ण

तू चिर परम पुरुख बाबा
ता कैसा यह जीवन रे,
नाही कठपुतली तू बाबा,
तू ना कठपुतली रे॥3॥

चिर = चिरंजीव

तू परम परगास बाबा,
तू माया नाही रे,
जीव जगत माया रे बाबा
कठपुतली माया रे॥ 4॥

परम परगास = परम आत्मप्रकाश

श्रीगुरु पारब्रह्म सहाई,
तू गुरुमुख अब होवे,
कठपुतली सुपना होई रे बाबा,

तब तू जाई समाई तूझ मे ॥५॥

सुपना = स्वप्न

57. अनिर्वचनीय मद्स्वरूप

आहेपणाने जगण्यास आलो तर नाही सोबत आला.
नाही सोबत नाहीसा झालो तर नाहीच होऊन राहीलो

आहे हे नसते हे एकवेळ समजेल
पण नाही हे पण नसते
या अनुभवाच्या पलिकडे गुरुदेवच नेतील.

जाणिवेच्या कक्षेत जे जे येते
त्याला प्रकाशित करणारे तत्व निर्गुण मी.
जाणिवांमध्ये गुंतणारा अहंकार तो सगुण मी...

जे कुठेही नसून नाही म्हणून सर्वत्र असते
जे सर्वत्र असूनही आहे म्हणून कुठेच नसते
ते अनिर्वचनीय मद्स्वरूप असते

58. उद्दत्त उद्दिष्टे गाठताना ...

अपूर्णत्वाच्या अर्थावर त्या उमटवू पूर्णत्वाची मोहोर,
आर गेलेल्या प्रत्येक गोष्टीला पार करूया लाउनीया जोर.

प्राक्तनाच्या पल्याड जाऊन भविष्य त्याचे घडवू आपण,
कष्टांवरही मात करूया स्वार होऊन सहजतेवर .

सृजनशीलता, विवेक आणि विज्ञानाला प्रमाण करू,
सर्व भेद विसरुनी सर्व ते एक दिलाने काम करू.

प्रतिक्षेच्या काठावरती का राहावे उगा बसून,
पर्यायांचे नवप्रवाह ते कार्यसिद्धी देती मिळवून.

जो पाडेल खिंडार आपल्या उद्दत्त अशा उद्दिष्टांना,
सहकार्यांचे भान देऊ वा बद्ध करू कायमचे त्यांना.

निसर्गाच्या प्रकोपाला भीती घालू सुव्यवस्थेची,
सजगता व सतर्कतेने जाऊन भिडूया त्या शक्तीशी.

उत्साहाला सदा येते भरती आपल्या उत्सुकतेची,
अचूकतेचा वेग पाहता धांदल उडते त्या विजेची.

विस्तारता क्षमता आपल्या, विलया सर्व जाती मर्यादा,
उत्तुंगतेची शिखरे आपल्या यशासमोर झुकतील शतदा.

स्पर्धा करता कोणी येथे निकोपतेची कास धरू,
मिळवुनी हातात हात शेवटी स्पर्धेवरही मात करू.

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन,
अहंकाराचे पाणी करुनी घेऊ त्याचे आंचमन.

59. एक अनोखा दीपोत्सव

सर्व काही कळत असूनही दुर्लक्ष करण्याची वृत्ती प्रकाशित करतो
तर काहीही कळले नाही तरी सर्व कळल्याचा आणलेला खोटा आवही प्रकाशित करतो.

मुद्दाम दुष्कृत्य करण्याच्या वृत्तीसह
सत्कर्मातील कर्तेपण व भोक्तेपणाचा त्यागही प्रकाशित करतो.

विनय, चारित्र्य शीलता, नितीमत्तेसह
उद्दामपणा, भ्रष्ट आचार व अनितीही प्रकाशित करतो.

दारिद्र्य, दुःख, अज्ञान, अंधकारासह
समृद्धी, सुख, ज्ञान व प्रकाशालाही प्रकाशित करतो.

शांततेची शांती प्रकाशित करतो तर अशांततेची वेदनाही प्रकाशित करतो.

चांगले व वाईट यांच्या व्याख्या प्रकाशित करतो तर
त्या समजूनही त्याच्या उलट वागण्याचा मार्गही प्रकाशित करतो.

लाचारी, परावलंबीत्व यांच्याबरोबर स्वावलंबीत्वही प्रकाशित करतो.
देव, देश, अन धर्मासह दानव, द्रोह व अधर्मही प्रकाशित करतो.
सर्व क्षणभंगूर आहे हे कळत असूनही मायेतील गुंतणे प्रकाशित करतो.

सर्व येथेच ठेवून जायचे आहे हे कळत असूनही,
हव्यासासह संन्याशाच्या त्यागालाही प्रकाशित करतो.

एक दिपोत्सव आपल्या अंतर्मनात युगानुयुगे सुरू आहे.
त्याला जाणून घ्यायचे जीवनाचे उद्दीष्ट क्षणाक्षणाला प्रकाशित करण्याचा प्रकाशोत्सव म्हणजेच दिपोत्सव.

60. विपर्यस्त... वास्तव

कधी कधी माणूस परिस्थितीचा इतका विपर्यस्त अर्थ काढतो की वस्तुस्थिती त्याहून खूपच वेगळी असते असे नंतर आपल्या लक्षात येते. माणूस अनेकदा भितो, चिंता करतो, तीव्र इच्छा करतो, काहीतरी अर्धवट माहितीवर पक्का गैरसमज करून घेतो, नाही नाही त्या कल्पना करतो आणि विनाकारण मनाला दमव दमव दमवितो. साप एकीकडे आणि भुइधोपट दुसरीकडे असे काहीसे होते. मात्र पुन्हा आपण सजगतेने व सावधतेने परिस्थिती न्याहाळून पहिली असता ती खूपच सामान्य असल्याचे आणि तिचे व्यवस्थापन सहज करता येण्यासारखे असल्याचे दिसून येते. ही अशी माणसाच्या वागण्यातील विकृती येथे विडंबनात्मक काव्याच्या स्वरूपात मांडली आहे.

झाडावरचे पान पडले
जमिनीला भगदाड पडले
मुंगी त्यात शिरेना तेवढ्यात
चार हत्ती तिथून निघून गेले

तुपात पडली माशी
माशीने तूप पिऊन टाकले
थोड्या वेळाने पाहतो तर
झाकले भांडे तुपाने भरलेले होते

सूर्य आला माथ्यावर
समुद्र सगळा आटला
लाटा मोजता मोजता
अंधार हा दाटला

बीज पडली ढगातून
डोळे गेले दिपून
डोळे उघडून पाहताच
चांदणे पडले टिपूर

धवधव्याचे पाणी
खालून चालले वर
वरून पाहता खाली
पाणी वाहतेय उतारावर

वादळ आले घोंगावत

लोट उठले धुळीचे
पुढे मी पाळता मागे
निःस्तब्ध सगळे तसेच राहिले

आज उगवला कालचाच दिवस
उद्या कधीतरी आज उगवेल
वेळेत मी येता भानावर
कालच्या नंतर आज अन
उद्या मात्र उद्याच उगवेल

भ्रांत असे हे सगळे वाटे
जर मानले असता भिऊन,
ते वास्तव आहे कसे पहा
विवेकदृष्टीने धीर धरून.

61. कुठेच नसलेल्या गावामध्ये...

क्वांटम शास्त्राने हे सर्व जगाला सुस्पष्टपणे दाखवून दिले आहे की विश्वाच्या अगणित क्षमता मनाच्या, शरीराच्या आणि विषय वस्तूंच्या माध्यमातून प्रतीत होत आहेत. या सर्व क्षमता अवकाशात शून्य उर्जा पातळीवर अनिर्वचनीय अवस्थेमध्ये असतात. चैतन्याश्रित मनाच्या माध्यमातून निरीक्षणाद्वारे त्या क्षमतांना त्यांचा अर्थ प्राप्त होतात आणि त्या सजीवांच्या जाणीवकक्षेत येतात.

याचा अर्थ सर्व विश्व शून्यतत्त्वातून प्रसविले गेले आहे हे वेदांत शास्त्रानुसार व आधुनिक विज्ञानानुसार सुस्पष्ट झाले आहे. या पार्श्वभूमीवर ही रचना निर्माण झाली आहे.

गर्व, इच्छा, वासना व वृत्ती शून्यातून निपजले
कुठेच नसलेल्या गावाकडे निघाले ते अडते हट्टाने

कुठेच नसलेल्या गावामध्ये अडते आले मुक्कामी
भरविले त्यांनी बाजार षड्रिपूंच्या घेउनिया जमिनी

कुठेच नसलेल्या गावात असाच एक बाजार भरला
उठाव आला अचानक संवेदनांच्या घाऊक मालाला

अडते होते पाच त्यांनी लावल्या प्रतिसादांच्या बोली
जाणीवा गेल्या कवडीमोलाने तटस्थततेचे मोल देऊनही

कुठेच नसलेल्या गावात असाच एक बाजार भरला
उठाव आला अचानक बुद्धीरूपी घाऊक मालाला

मायावी त्या अडत्यांनी चंचलतेच्या लावल्या बोली,
बुध्दी गेली कवडीमोलाने सृजनतेचे मोल देऊनही

कुठेच नसलेल्या गावात असाच एक बाजार भरला
उठाव आला अचानक शक्तीरूपी घाऊक मालाला

उन्मादरूपी अडत्यांनी मोहमायेच्या लावल्या बोली
शक्ती गेली कवडीमोलाने सेवेचे ते मोल देऊनही

कुठेच नसलेल्या गावात असाच एक बाजार भरला

उठाव आला अचानक विवेकरूपी घाऊक मालाला

अज्ञानी त्या अडत्यांनी लावल्या गर्वाहंकाराच्या बोली
विवेक गेला कवडीमोलाने त्यागाचे ते मोल देऊनही

कुठेच नसलेल्या गावात कहर माजविला त्या अडत्यांनी
धडा शिकविण्या त्यांना तेथे योगी आले मुक्कामी

जाणीवांसह झाले तेथे बुद्धी-शक्तीचे विवेकाचरण
जमिनी झाल्या नाहीशा तेथे अडत्यांना त्या आले मरण

कुठेच नसलेल्या गावात आता शून्यत्वाचा संचार
अंतर्यामी ते योगी तेथे पाहती निर्गुण संसार

कुठेच नसलेले ते गाव गेले नसल्याच्याही पलीकडे
ब्रह्मरूप झाले योगी अन तेथे अनंत पुन्हा प्रकटले

62. गुलाम बन के उन पांचो का

गुलाम बन के उन पांचो का
हसी उडाई मैने ही मुझ पे

आधी उमर बीत गई भाई
यह तो हुई धोकाधाडी रे

जो कुछ मन कही सब आभासी हैं
एक माया ही उसकी जननी हैं

जो संवेदीत करे वह कुछ भी नहीं
जब तक ना हो मन की सुनवाई रे

अब मैं संभालू खुद को यारो
अपने अंदर ही ईश्वर को पाना हैं

63. सत्वपरीक्षा

अजुनही कृपा माझ्यावर झाली नाही तुझी
का अशी सत्वपरीक्षा घेतोस या भक्ताची ॥धृ॥

जरी भक्त मी तुझा, परि ना जमली भक्ती
तुज जाणून घेण्या दुबळी माझी मती

इच्छावासना लचके तोडती-
रजतम मज भ्रमिष्ट करीती-

षड्रिपु मज खुप दमविती
अहंकार रसातळाला नेती

आभासी सत्याचा देखावा मांडला जाणीवांनी
भ्रांतिच्या दरीत लोटले त्या सुखदुःखांनी

माझे हे सत्व नका हिरावू तुम्ही
त्यात होईल प्रतिबिंबित माझा सखा हरी

काया मन बुद्धी अशी वाया गेली
यमदूत ते असे घिरट्या घाली

परि तुझ्या दर्शनाची आस ना शमली
राहू दे त्राण तव दर्शनमात्रे या शरीरी

आता दे विसावा तव मंगल चरणी
चुकव चुकव माझी जन्म मरणाची फेरी

64. गूढ असे त्या विश्वाचे...

गूढ असे त्या विश्वाचे उकलून सांगे ती वेदऋचा

निर्गुणाचे गुण गाण्या शक्तीने केली ईषणा

सगुण झाली सज्ज ती तयाचे वर्णन ते करण्या

निर्माण केले तिने बुद्धी, प्रज्ञा अन विवेकाला

असंख्य क्षमता निर्माण करूनी प्रकटविले विश्वाला

परि नेती नेती म्हणे श्रुती अंती काही न लागले हाताला

जेव्हा जाऊन मिळाली परमात्मतत्वाला शब्दातीत ती झाली पुन्हा...

गूढ असे त्या विश्वाचे उकलून सांगे ती वेदऋचा

65. सौंदर्य रहस्य

Orchestrated Objective Reduction ही एक सर्वमान्य थिअरी डॉ रॉजर पेनरोज आणि स्टुअर्ट हॅमरऑफ यांनी मांडली जी क्वांटम शास्त्रावर आधारित आहे .आपल्या मेंदूमध्ये संवेदनांचे अर्थपूर्ण आकलन कसे होते ते त्यांनी यात सविस्तर सांगितले आहे . सौंदर्याचा अनुभव आपल्याला आनंदी का वाटतो त्याचेmechanics यामुळे आपल्याला कळू शकले.

सौंदर्य रहस्य...

सौंदर्य आणि नजाकत यांनी फुलबाग सजली

पुसले एका फुलास जे मना वेड लावी

सांग, मन माझे तिथे कसे रे मोही

परि मज ते बोलले काहीच नाही

ऐसे हे रहस्य विचारले

एका ललनेस तिच्या सौंदर्याचे

स्मित करुनी ती ही गेली

बोलली काहीच नाही

ज्यास लाभे सौंदर्य असे मनमोही

त्याचे रहस्य त्यास माहीत नाही

म्हणून निसर्गास विचारता कहाणी

उकल केली त्याने त्याच्या रहस्याची

रंग आणि आकार असे एकत्र येती

तेथे होई निश्चित त्या रुपाची प्रचिती

काठिण्य अन मृदुता तेथे ऐसे संमिश्रति

त्या आकारास तेव्हा अधिक उठाव मिळती

गूढ असे सृजनत्व धारण करे ती प्रकृती

परि ती अंध पाहण्या ही कलाकृती

तिजला ना ठावे याची काय प्रतिती

कसले हे सौंदर्य अन कसली कुरूपता ती

ऐसा हा गुण समुच्चय जो जीव पाही
वृंद उठे मनोउर्जा कणांचा त्याच रे क्षणी
मनोबल जे असे त्याच्या मनोक्षेत्री
संवेग करी निर्माण तिथे संवेदनांच्या लहरी

सौंदर्य अन कुरुपता
असे इथे नसेच रे काही
मनातून जो वृंदध्वनी उठे
त्याने हरपती जीवांची मति
मालकी मनोक्षेत्राची
जी असे ईश्वराची
रूप घेतले प्रकृतीने
ती गती उर्जाकणांची

जीवाने का मग ठेविले
हे सौंदर्य त्याचे भांडवली
कोण जीव दुजा हा
त्याचे प्रती सर्वस्व अर्पिती

ही तर अखिल विश्वउर्जा कणांची गती-
त्यातून येती सगुण साकाराची प्रचिती

ती आंदोलित मति,
ओळख असे ना तुझी
त्यामाजी ते चैतन्य अथर्व;
ते तू असशी, ते तू असशी...

66. जो कुछ...

जो कुछ नहीं था वही पाया मैंने
जो कुछ खोया वह कभी था ही नहीं
जो कुछ किया सा लगता हूँ मैंने
करने जैसा कुछ था ही नहीं
छोड़ने का बहाना क्यों करूँ
मुझमें मेरा अब कुछ भी नहीं
अब ना रहूँ मैं मेरा तो
यह तुम तेरा की तो बात ही नहीं
इसी बहाने तो मैं आया जीवन में
अब यह जानने की भी जरूरत नहीं

67. सावन आया रे सखी री..

सावन आया रे सखी री
नेहानंद नयन बरसे री |धृ|

बैठे हम चातक की न्यायी
जुग जुग से जो बिरह हम सांही
सावन आया रे सखी री...

कांत हृद में और दुनिया ढुंढी
मदमाया से हमरी मत थी मारी
सावन आया रे सखी री...

मनमरूस्थल गुरु बाणी जो पांई
प्रभू प्रेम के बादल छांए घनेरी
सावन आया रे सखी री...

करुणा की अमृत धारा जो बरसी
मनमृदगंध को प्राणपवन ले आंई
सावन आया रे सखी री...

मैं-मेरा अब मुझ में कछु नाही
तन मन सह सब जगत गई बिसरी
सावन आया रे सखी री...
नेहानंद नयन बरसे री...

68. कर्ता कर्ते को देखता है...

ब्रह्मसूत्रांमध्ये “ईशना” या शब्दाने ब्रह्माच्या “बहु व्हावे” या इच्छेबद्दल नमूद केले आहे. क्वांटम शास्त्रीयदृष्ट्या वैश्विक उर्जेने तिच्या क्षमतेचे तिच्यावर स्वयंप्रक्षेपण करून स्वतःतून अनंत क्षमता प्रसविल्या असल्याचे दिसून येते. येथे ईश्वराला सर्व कारणाचे कारण म्हणून मूळ कर्ता असे मानले आहे. ईश्वर हा अकर्मि कर्ता आहे. तो भौतिक व मानसिक अवस्थांना प्रकाशित करतो पण त्यामध्ये सहभागी होत नाही. त्याने इच्छा केली तथापि त्यापासून तो अनिर्वचनीयपणे तटस्थ आहे.

उर्जा चैतन्याला धारण करते. चैतन्य हे परम तत्व परब्रह्म आहे. उर्जेने चैतन्याला धारण केले आणि तिच्यामध्ये “मी स्वतंत्र आहे” असा मी पणाचा भाव निर्माण झाला. तिने संत ऋषी मुनी यांच्या माध्यमातून अलौकिक क्षमतांचा विस्तार केला आणि निर्भाव अवस्थेत परब्रह्म जाणले. तथापि त्या अलौकिक जाणिवांमध्ये ते विलीन झाले आणि त्याचा अनुभव सांगणारा तथाकथित कर्ता शिल्लकच राहिला नाही. ही रचनेद्वारा हे सर्व वेगळ्या पद्धतीने मांडले आहे.

इक्तिजा से आइना-सज्जी कर के
कर्ता कर्ते को देखता है

इक्तिजा = स्वेच्छा

आईना सजी = आईना बना कर उसको सजाना

कर्ते की प्रतिछांही आइने मे है
आइने को अब कुछ हुआ तो है

कर्ते का देखना बेमिसाल है
आइना खुद को मै समझता है

आईना अब एक अलग सी इक्तिजा है
कर्ते को यह पता तक तो नहीं है

आइना औसफ अकार है
कर्ता अलख निराकार है

औसफ = सगुण

अलख = निर्गुण

आइना कर्ते को ढुंढता है
लेकीन औसफ से वह अंधा है

कर्ता अजल ए उजाला है
आईना उसमे ही आंहे भरता है

अजल ए उजाला = परम तत्वाचा प्रकाश

इस उजाले से आइने की पहचान है
यह पहचान आइने का एक आभास है

अब पहचान आभास से परहे है
मैं और इत्तिजा आइने से अलग हुए है

अब आईना खुद आईना नहीं है
जो हुआ है रूहबरुह कर्ते से

अब आईना कर्ता है और
आईने को वह पता तक नहीं है

काल व्हरांड्यातील दिव्याची वायर काही कारणाने तुटली. दोन्ही टोके लोंबकळत होती दोन बाजूला. त्यांना जुळवून पुन्हा दिवा सुरु केला. दिवा लागल्यावर तो कशाच्या तरी पार्श्वभूमीवर प्रकाशमय होतो, हा जुनाच अनुभव पुन्हा नव्याने पाहत होतो. "पार्श्वभूमी" या शब्दाच्या घसरगुंडीवरून मी माझ्या अंतर्मनात जाऊन पडलो आणि लिहिता झालो.

मला नेहमी असे वाटते की माझे हे भौतिक अस्तित्व हे माझ्या निरास्तीत्वाच्या पार्श्वभूमीवर दिसून येत आहे. माझी एक चिरंतन अप्रकट अवस्था अशी असलीच पाहिजे की ती या माझ्या प्रकट अवस्थेची पार्श्वभूमी म्हणून माझ्या प्रत्ययास येते आहे. माझा प्रवास हा माझ्या अप्रकट अवस्थेकडे जाणारा आहे, हे मला या प्रकट अवस्थेत कळून चुकले आहे. मात्र यात एक मेख अशी आहे की त्या अप्रकट अवस्थेचे मोजमाप घेण्यासाठी आपल्याकडे काहीच नाहीये. Logically ते बरोबरच आहे, कारण इथे द्वंद्व आणि तिथे अद्वय. अद्वैताच्या प्रांतात कोण कुणाला पाहणार? नाही का!

जन्म, जीवन आणि मृत्यू या तीनही अवस्था या माझ्याच अप्रकट चिरंतन अवस्थेच्या मनरूपी पडद्यावर प्रक्षेपित होत आहेत. तेथे मनाने स्वतःच संयोजक, आयोजक, नेपथ्यकार, कथाकार, पटकथाकार, कलाकार व प्रेक्षक होऊन संपूर्ण जीवन अर्थपूर्ण करण्याचा खटाटोप सुरु ठेवला आहे. निरर्थक म्हणजे काय हे ही त्याने स्वतःनेच ठरविलेले आहे, हे सुद्धा आताशा माझ्या लक्षात येऊ लागले आहे. जेथे निरर्थकच काही नाहीये तेथे अर्थपूर्णतेचा खटाटोप कोण, का आणि कशासाठी करतोय?

एक जड देह आणि परम चैतन्य एकत्र येऊन एक जीवरूपी खेळ मांडू शकतात? आणि स्वतःच्या असंख्य जाणिवांचे तुषार निर्माण करू शकतात? ही अखिल विश्वाची जादू आहे. ही त्याचीच किमया आहे. हे विश्वरूप मनाचेच स्वसंमोहन आहे. हे सपशेल आभासी आहे. याला आता आधुनिक शास्त्रे पुष्टी देत आहेत.

भौतिक पातळीवर आपण आपले अनुभव व आपल्या जाणीवा सत्य मानून त्याचे सुव्यवस्थापन करतो हे अनिवार्यच आहे. अन्यथा या आधिच आभासी सत्य असलेल्या जीवदशेमध्ये जीवास खूप (तथाकथित) दुःखमय जीवन जगावे लागले असते. तसे पहिले तर भौतिक आणि आभासी असे काही येथे आहे का? हे आपण आधी rationalize केले पाहिजे असे मला नेहमीच वाटत आले आहे. म्हणून अज्ञानरूपी खडकाला पडलेल्या फटीतून क्वांटमशास्त्रासारख्या सारख्या अपरिचित प्रांतात माझे पहाणे झाले.

“हे असले तत्वज्ञान पुरे, वाढदिवस साजरा करा आधी, ती दोघे सबमिशनला बसलीयेत, जावा श्रीखंड घेऊन या चितळेंकडून”, असे माझ्या नकळत मागे येऊन उभी राहिलेली आमची आभासी सत्यतेत आकंठ बुडालेली सौ. म्हणाली. तेव्हा विचारांची ही तार तुटली, पण या सुध्दा तारेची दोन टोके अप्रकट आणि प्रकट अवस्थेच्या दोन्ही बाजूला पुन्हा त्या दिव्याच्या तारेसारखी तशीच बेवारस लोंबकळत राहिली आहेत. जोडू आता पुन्हा कधीतरी...मलाच जोडणी करावी लागेल, नाहीतर ज्ञानाचा प्रकाश पडणार नाही. किंबहुना श्री ज्ञानेश्वर माऊलींच्या "काट्याच्या अणीवर ... " सारखी ती तारच आभासी असेल तर? बापरे.... आता चला वाढदिवस साजरा करायला....असो, दरवर्षी जीवनाकडे अत्यंत नवीन अशा क्रांतिकारी दृष्टीने पहाता येणे म्हणजे वाढदिवस साजरा करणे होय असे मला वाटते. ही क्रांती आंतरीक असावी व अध्यात्मिक उन्नतीकडे घेऊन जाणारी असावी इतकेच मला इथे सांगायचे आहे.

कमी नही थी जहां मे मेरे यहां आने से पहले....
वैसा ही रहेगा जहां, ना होगी कमी बाद मेरे जाने से ...
एक मालिक ही तो बसा हैं हरएक जीव में,
जिसने ना बनाया कभी तुम और ना कभी मैं....
मायाजाल हैं ये सब कुछ, ये कहना भी यहां माया का खेल हैं....
ना कभी आये थे और ना ही कभी जायेंगे यही तो हमारी पेहचान हैं
मौज मे रहो यारो के यह समझ कर जिना ही जिंदगी का मकसद हैं....

70. ज्ञानाचा दिवा...

दिवा घडविला ज्ञानाचा
अन तेल घातले त्यागाचे
समर्पणाची वात लावून
ज्योत लावली ध्यानाग्निने

प्रकाश पडला विवेकाचा
अज्ञानाचा अंधकार निमाला
वैराग्याचे देउनिया मोल
दिप चिरंतन तो झाला

त्या ज्योतीच्या तेजाने
अहंकार तो सर्व जळाला
लावूनिया त्याचे भस्म अंगाला
सजला निर्गुण योग्याचा पुतळा

प्रशांतिच्या संवादातून
चैतन्याची ओळख पटली
शून्याचा ओलांडून उंबरा
ब्रह्मरूप ती झाली विभूती.

71. भेट तिची....

तिची ओळख तशी जुनीच, पण आताशा नजरा चुकवायची,
सर्व धाडस एकवटून फोन केला तिला खूप दिवसांनी...

ये म्हटले वाडेश्वरला...भेटू तिथे मोकळे करायला मन,
पण उत्तराऐवजी निःशब्दच गेले काही क्षण,

मी चपापलो आणि म्हटले चुकले का काही,
अतिशय क्षीण स्वरात तिने "येईन" म्हणून दिली ग्वाही.

मी नेहमीप्रमाणे वेळेआधी दहा मिनिटे बाहेर उभा,
पण कळलेच नाही वाट पाहण्यात अर्धा तास कसा गेला.

गर्दीत मान खाली घालून भरभर येताना ती दिसली मला,
थोडी कावरी बावरी होती, काय झाले असावे तिला?

कपडे खूप साधे, सात्विक मुद्रा..., पण वाटली कणखर तितकीच,
मी पण इकडे सावध व धिटाई आणली काकणभर जास्तीच.

तिचे हसून न हसल्यासारखे अन नजर देऊन न दिल्यासारखे,
मी मात्र होतो शांत अन तिचे स्वागत केले नेहमीसारखे.

पापणी लवू न देता मी नजर होतो तिच्यावर खिळवून,
आवंढा गिळला तिने तिचा रुमाल डोळ्याला लावून झटकन.

पश्चाताप करू नकोस झाले गेले ते जा सर्व विसरून,
खूप खेळविलेस तू मला मी बोललो हे तिला निश्चून.

ती ही झाली पुन्हा कणखर अन फेकले फासे टाकला प्रभाव,
यावेळेस मी सावध.. शांत काहीच नाही तिचा लागला टिकाव.

ती हरली होती या खेळात अन मी जिंकलो होतो,
पण हे जर कळले तिला तर मी पुन्हा तिच्यात अडकणार होतो.

एकेकाळी तिने होते दाविले मला आसमान,
वेड्यासारखा तिच्यामागे धावत होतो मी पिसाट गुमान.

मी जसा बदलेल त्याहून ती अधिक बदलत होती,
भ्रमिष्ट करून मला ती अक्षरशः नागवित होती.

उत्तान तिची लाईफ-स्टाईल होती झिंग आणणारी,
नेहमीच असे मी बेभान आणि असे वेगाची नशा ती भारी.

पण नेहमीच माझी फसगत अन नेहमीच मी तहानलेला,
उर फुटायची वेळ आली तरी मी काहीच हाती न लागलेला.

ठरविले एकदा येऊन भानावर, पडदा करू फाश तिचा,
गुपित सारे तिचे मी शोधून तिचाच आरसा दाखविला तिला.

डाव ओळखण्याची त्या मायेची कला मी होती जोपासलेली,
साक्षात ती आज माझ्यासमोर सात्विक अन शांत बसलेली.

मी विजयी झाल्याचे तिनेच केले मान्य,
वचन दिले तिने मजला नेईन तिथे जिथे नसेल कोणी अन्य.

वदली मला ती या विश्वाचे होऊन मी रे दिवा-स्वप्न,
देऊन जाणीवा जीवांना त्या सर्वांना केले मी माया-मग्न.

जो ओळखिल मूळ स्वरूप ते माझे,
मी नेईन रे त्याला त्या स्वप्नाच्या पलीकडे.

माझी सीमा असेल आकाशाची,
जेथे नांदी असेल केवळ सात्विकतेची.

त्यापलीकडे मी निर्गुण, निरहंकार अन निराकारी,
तुला तेथे सोडून फिरेल रे मी माघारी.

मी तरीही राहिलो तटस्थ अन उदास तिच्या वचनांवरती,
अंतर्दृष्टी लाभली मला अन ती असून पुढ्यात झाली दिसेनाशी.

72. सखीरी मै तो...

सखीरी मैं तो शाम की भई री
उनके सनेह रंग ऐसी मै रंगी री ॥धृ॥

देखे जो मैंने उनके कमलनयन री
नजर अब मेरी उनकी भई री ॥१॥

जह जह देखू तह तह कान्हा पांऊ री
झांकू अंतर तो उत देखू मुरारीजी ॥२॥

धुन मुरली की सुन सुन रे सखी री
सुदबुध सब यह मैंने खोई री ॥३॥

बिन हरीनाम अब कछु ना सुहावे री
हृद कमल मेरे एकु गोविंदु विराजे री ॥४॥

मै भिगी ऐसी जो अमृतधारा बरसे री
गोपालभाव मे आनंद धुंद भई री ॥५॥

सखीरी मैं तो शाम की भई री
उनके सनेह रंग ऐसी मै रंगी री ॥धृ॥

73. मनमोहना...

मनमोहना विनवितो तुज मी, माझा भार हा तू का रे वाही ॥धृ॥

मायांध हा दिशाहीन मी, जगतो हे ऐसे जीवन आभासी
हात धरुनिया माझा तू हाती, हरी तू झाला या आंधळ्याची काठी

ना कळे मला काय हे जगणे, अजाण मी हा असा अज्ञानी
तूच कसा रे राखतो कान्हा, लाज ही माझी वारंवार या जगी

ना बैसलो कधी तव भजनी, ना केली कधी तुझी भावभक्ती
माझे कर्म कुटील मी हीन जाती, तरी हे गोपाला कैसे तू मज तारि

तव अगाध लीला घनशामा, गुरुकृपे रे आता मी जाणिली
ही माया स्वयं प्रसवली, तव मुरलीच्या रे सुस्वरी

मम आत्म्याचे त्या प्रतिबिंबि, स्वये तू तुजला असा पाहशी
माधवा घे मजला तव हृदयी, ऐकीव अनहद नाद सत्त्वरी

74. तू योगियांचा योगी....

“तू नानकी दा वीर, तन मन दा फकीर...” हे पंजाबी भाषेमध्ये अतिशय प्रेरणादायी गीत आहे. या गीतावर आधारीत खालील रचना तयार झाली असून त्या मूळ पंजाबी रचनेचा हा थेट अनुवाद नाही.

तू योगियांचा योगी आम्ही तन मनाचे फकीर
तू स्वामी त्रैलोक्याचा आम्ही वीरांचे ते वीर ॥१॥

क्षमतांचे शस्त्र देऊनी तू केले आम्हा सुसज्ज
बुद्धी-मती ती स्थिर ठेवण्या दिलास आम्हा धीर
तू योगियांचा योगी आम्ही तन मनाचे फकीर
तू स्वामी त्रैलोक्याचा आम्ही वीरांचे ते वीर ॥1॥

करितो आम्ही पार ते भवारण्य घनघोर
दिलेस आम्हा मन कणखर अन वज्राचे ते शरीर
तू योगियांचा योगी आम्ही तन मनाचे फकीर
तू स्वामी त्रैलोक्याचा आम्ही वीरांचे ते वीर ॥2॥

होण्या षड्रिपू-दमन ते मनाचिया युद्धक्षेत्रे
केलेस तू आम्हा ज्ञानवंत, शीलवंत अन शूर
तू योगियांचा योगी आम्ही तन मनाचे फकीर
तू स्वामी त्रैलोक्याचा आम्ही वीरांचे ते वीर ॥3॥

देऊनिया आम्हा येथे तू वैराग्याचे वरदान
साधन ते करुनी साध्य झालो आम्ही सुधीर
तू योगियांचा योगी आम्ही तन मनाचे फकीर
तू स्वामी त्रैलोक्याचा आम्ही वीरांचे ते वीर ॥4॥

ऐशा या इंद्रियांच्या वळविल्या वृत्ती आत सर्व
जिंकला अहंकार ज्याने तो ओळखावा धर्मवीर
तू योगियांचा योगी आम्ही तन मनाचे फकीर
तू स्वामी त्रैलोक्याचा आम्ही वीरांचे ते वीर ॥5॥

भ्रांतीची करुनी सांगता तिला भेदिले ते पार

तृष्णेच्या मृगजळातून प्राशितो अमृतमयी ते नीर
तू योगियांचा योगी आम्ही तन मनाचे फकीर
तू स्वामी त्रैलोक्याचा आम्ही वीरांचे ते वीर ॥6॥

इच्छा वासना आकांक्षा आमुच्या पायाची ती धूळ
उदात्ततेला आमुच्या आहे अनंत दिव्य लकीर
तू योगियांचा योगी आम्ही तन मनाचे फकीर
तू स्वामी त्रैलोक्याचा आम्ही वीरांचे ते वीर ॥7॥

पंचप्राण गुंफुनिया केला पंचतत्वांचा हा दोर
निर्गुण तत्वाचे ते आम्ही चढून जाऊ शिखर
तू योगियांचा योगी आम्ही तन मनाचे फकीर
तू स्वामी त्रैलोक्याचा आम्ही वीरांचे ते वीर ॥8॥

निर्भयतेने गातो आमुचे असे हे विजय गीत
आता चरणी वाहतो आम्ही आमुचे विनम्र शीर
तू योगियांचा योगी आम्ही तन मनाचे फकीर
तू स्वामी त्रैलोक्याचा आम्ही वीरांचे ते वीर ॥9॥

75. ज्ञानियाची आस

लागली ज्ञानियाची आस
तोडतो इथे मायेचे हे फास

धरुनिया पक्की विवेकाची कास
तरुनिया आलो इथे जन्मे अनेक

ज्ञानदेवा तुमचा जन्मोजन्मीचा विरह
चित्ती का उठति हे अज्ञानाचे कलह

पडो माझे पाऊल तुझिया पाऊले
झडो ती माया तुझिया ज्ञानदर्शने

गातो तुझी महती तो रेडा बोलविसी
मज द्यावी सद्बुद्धी परमार्थ साधण्या

ज्ञानदेवा लाभले गा ते गुरु नाथ निवृत्ती
अमृता ते पैजा जिंकी आमुची ज्ञानेश्वरी गुरुमाऊली

आता देवा भेटवि ज्ञानदेवा हृदयी
करुनिया ज्ञानयज्ञ सुफल सफल

येऊ दे योग तुझिया ज्ञानतत्वे
विश्व माझ्यातील व्हावे एकदेशी

ज्ञानाच्या पलिकडे ज्ञानदेव कृपे जाऊ
शून्याचे ओलांडून ते माप निर्गुणाचे गुण गाऊ

देशी दिव्य दृष्टी होण्या भ्रांतीची ती वाफ
दिस आमुचा शेवटचा ऐसा व्हावा अवघा ज्ञानस्वरूप

लोहाशी व्हावा परिसस्पर्श अन व्हावे त्याचे सोने....
तैसे अचेतन मनोकणांना परब्रह्म ते स्पर्शिले.

हुंकार निघाला मी पणाचा जो निव्वळ उसना असे....
मालकीचा आव आणूनी हे जीवन तो जगतो असे.

नसे अणूची एकाही मालकी तेथे शरीर माझे कसे...
विश्व उर्जेतून मन ते घडले ते मन ही माझे नसे.

निर्माण होती आपोआप तेथे वासना इच्छा अन इरादे....
वृत्ती प्रवृत्ती अन उर्मींचे हे मनोक्षेत्र हो कोणाचे?

मालकी त्यांची मानून आता भ्रांत मी का व्हावे....
मी माझे मला म्हणूनी असे हट्टी कधी नसावे.

चैतन्याच्या प्रकाशात ते कार्य मनाचे चाले...
आविर्भाव मनाचा जसा की तोच कर्ता स्वतः असे.

शक्ती बुद्धीच्या क्षमता हे तर विश्वाचे देणे...
संवेदना अन प्रतिसादाचे हे यंत्र आपोआप हो चाले.

मी कोण कुठला माझ्याकडे त्यांचे स्वामित्व हो कुठले...
हे स्वप्न आहे केवळ समजून घेण्या विश्व इथे प्रकटले.

आत्मभान प्रकटे तेथे जेथे विवेक होईल जागा...
आत्मभान ठेवण्या जागे मी मायेत ना लिप्त व्हावा.

वृत्ती प्रवृत्तीच्या यज्ञवेदी प्रकटावा अग्नी साधनसिध्दीचा...
अहंभावासह इच्छा वासनांच्या त्यात आहुती पडाव्या.

अद्वैताचे तेज प्रकटावे मनामध्ये सर्वांच्या...
आत्मभान मिसळू सर्वांचे ब्रह्मानंदात एका...

77. मी कोण कुठला...

शब्द तयाचे त्यांच्या अर्थाचे ऐश्वर्य तयाचे...

कल्पना त्याच्या अन स्वप्नाचे साम्राज्य तयाचे...

प्रज्ञा त्याची अन प्रतिभेची धारा तयाची....

क्षमतांचे आसमान त्याचे मी क्षितिज असे मर्यादांचे...

मी कोण कुठला, मम काव्याची ती हौस कोण पुरवे...

प्रतिभेच्या या हिंदोळ्यावर कोण मजला झुलवे...

शब्दांचा मी याचक मजला शब्दब्रह्म ते कसे स्पर्शिले ...

विश्वमनातील भावविश्व मम हृदयी ते कसे प्रकटले

समर्पणाशी जाता आता ते अश्रूही नसतील माझे.....

मी इतका शून्यार्त असा आता की मम विनम्रता ही माझी नसे....

अस्तित्वाचे उगळूनिया चंदन आता चरणकमल लेपितो देवाचे...

दाट अंधाऱ्या खोलीमध्ये स्थान माहित असलेली एखादी वस्तू शोधण्यास जाताना आपण आपल्या स्मृतीचा वापर करून तिचे यापूर्वी पाहिलेले स्थान मनाच्या पटलावर दृश्यमान करण्याचा प्रयत्न करतो आणि चाचपडत तिथे पोहचून चाचपून ती वस्तू बाहेर घेऊन येतो. परंतु तिचे स्थान माहित नसल्यास आपल्याला प्रकाशाची गरज भासते. यात विशेष असे आहे की स्मृतीचा वापर करून तिचे यापूर्वी पाहिलेले स्थान मनाच्या पटलावर दृश्यमान करतानासुद्धा आपल्याला प्रकाशाची गरज भासते परंतु तो प्रकाश भौतिकशास्त्राच्या चौकटीत सिद्ध होणारा नसतो. भौतिक शास्त्राच्या चौकटीत तो अंतर्मनातील प्रकाश सिद्ध होत नसला तरी त्याचा अनुभव कोणीही नाकारू शकत नाही. या प्रकाशाला परमात्म तत्वाचा दिव्य प्रकाश असे वेदांतात म्हटले गेलेले आहे. आपण पाहत असलेली स्वप्ने आपण याच दिव्य प्रकाशात आपण पाहतो. अन्यथा मेंदूत कुठेही वेगळी प्रकाशयोजना नाही. हा दिव्य प्रकाश केवळ तेजःपुंज सूर्यालाच प्रकाशित करत नाही तर अंधारालासुद्धा प्रकाशित करतो. वेगळ्या शब्दात सांगायचे म्हणजे हा दिव्य प्रकाश सूर्याच्या तेजाला आणि अंधाराला समानतेने अर्थबोधित करतो आणि त्यानंतरच त्याचा अनुभव मन व मेंदू यांच्या प्रणालीमध्ये अवतरीत होतो. चांगदेवपासष्टीमध्ये संतश्रेष्ठ श्री ज्ञानेश्वर माउलींनी “अनुभव, अनुभावक आणि अनुभाव्य ही त्रिपुटी याच दिव्य प्रकाशाने प्रकाशमान झाल्याशिवाय विश्वाचे ज्ञान होऊ शकत नाही” असे नमूद केले आहे. क्वांटम शास्त्रावर आधारीत Orchestrated Objective Reduction हा जगद्गान्य सिद्धांत डॉ. रॉजर पेनरोज आणि डॉ. हॅमरऑफ यांनी मांडला. त्यामध्ये त्यांनी मेंदू आणि चैतन्य यांच्या संयुक्त प्रणालीमध्ये अर्थबोधन कसे घडून येते याचे विश्लेषण केले आहे. क्वांटम शास्त्रातील मोजमाप प्रक्रिया ही एक मध्यवर्ती आधारभूत संकल्पना आहे. त्यानुसार जर मेंदू आणि चैतन्य यांच्या संयुक्त प्रणालीमध्ये मनाच्या प्रत्येक अवस्थेचे अंतर्गत मोजमाप घडून येत असेल तर आपल्याला या दिव्य परमात्म तत्वाचा प्रकाश मानावाच लागेल. तथापि मोजमापाशिवाय विज्ञान कोणताही अनुभव शास्त्रीय मानित नाही तसेच परमात्म तत्वाच्या दिव्य प्रकाशाची सिद्धता फक्त आपल्या प्रत्येकाच्या स्वानुभूतिशीच निगडीत असल्याने त्याचे स्वतंत्रपणे मोजमाप करणे अशक्य आहे. असे असल्याने अजून विज्ञानाने त्याला मान्यता दिलेली नाही. पण चांगदेवपासष्टीमधील ओव्या आपल्याला विज्ञानाच्या पुढे सहजच घेऊन जातात नाही का.

प्रकाश मी...

सूर्याचे तेज घेवुनी दवबिंदुमध्ये मी आलो,
पर्णफुलांच्या सौंदर्याचा वाहक मी हा झालो.

धवल करुनिया हिमशिखरे ती रौद्र सौंदर्य त्यांचे झालो,
निळासावळा होऊनी मी गंगेसह ओघवता झालो.

कडाडता ती विद्युल्लता क्षणात एका क्षितीज व्यापले,
मी माझ्यातच विलीन होऊन पाहणार्यांचे डोळे दिपविले.

जलधारांच्या मधून जाता इंद्रधनू सुंदर मी झालो,
असंख्य रंगछटा उधळूनिया निसर्ग चित्रकार जाहलो.

भिजलेल्या रानवाटांवर धीर गंभीर मी झालो,
कोणाची ही पाउले त्यांचा दिशादर्शक मी झालो.

डोळ्याची होउनीया चमक आरसपानी मी झालो,
भाव होऊनी त्या जीवाचे हृदयात तुमच्या मी आलो.

होऊनी मी प्रकाश येथे अंधाराला वाट दावतो
परी अर्थाच्या या प्रकाशण्याला चैतन्याचा प्रकाश झालो.

79. शून्य अहंभावाच्या उंबरठ्यावर

पाहुनिया साधकाची साधनशुचिता
येतील स्वागता तेथे विवेक आणि विनम्रता

उघडले जाईल दार निरहंकार अन निर्गुणाचे
पाहील एकतत्त्व चैतन्य तो विश्वात सर्व जीवित्वांचे

तप्त होता अद्वैत ज्ञानसूर्य मनाच्या मरुभूमीवर
सिंचतो आता वैराग्य तो त्या मी पणाच्या मृगजळावर

तर्काच्या तळहातावर घेऊन विवेकरूपी दिव्य रत्न
उजळीतो साधनमार्ग तो मुक्तीच्या त्या शिखरापर्यंत

लेवूनिया वस्त्रे ध्यानात मनाच्या सहज अवस्थेची
उर्मीवर करुनिया मात तो लावितो पताका विजयाची

80. तो मृत्यू जगतो...

जो मीपणा ने जगतो तो मृत्यू जगतो
जो तुलना सतत करतो तो मृत्यू जगतो
जो भोक्ता होऊन राहतो तो मृत्यू जगतो
जो कर्ता होऊन राहतो तो मृत्यू जगतो
जो इर्षा करुन जगतो तो मृत्यू जगतो
जो द्वेषाने इतरा वागवतो तो मृत्यू जगतो
जो सुखदुःखे बाधित होतो तो मृत्यू जगतो
जो भेदाभेदाने इतरा वागवतो तो मृत्यू जगतो
जो प्रेयस ते नेहमी वांछितो तो मृत्यू जगतो
जो अतृप्त भाव असतो तो मृत्यू जगतो
जो भासात आभास ते पहातो तो मृत्यू जगतो
जो द्वैतातून द्वैत माजवितो तो मृत्यू जगतो
जो असंयमित वागतो तो मृत्यू जगतो
जो षड्रीपुंशी हारतो तो मृत्यू जगतो

ए.एस.एन.डी.टी. महाविद्यालयातील निवृत्त प्राचार्य डॉ. श्री तापकीर सर यांनी दिलेले हे आशीर्वाद.

तू अध्यात्माचा कवी तू शब्दांचा सर्वेश
साधना साधताना तू यशस्वी हो राजेश

त्यावर मला स्फुरलेल्या ओळी,

अहो आपण केवळ निमित्त मात्र
एका ईश्वरी शक्तीचे हे गूढ असे सूत्र...
हा त्या विश्वाचा प्रसाद प्राप्त होतसे काव्यरूपाने
आपणा सर्वाना वाटतो तो अतीव आनंदाने

81. वचन होते दिलेस तू....

नमस्कार, शरीररूपी उर्जातत्व आणि आत्मरूपी चैतन्य तत्व यांच्यातील हा संवाद आहे. या दोन तत्वांचा संगम म्हणजे आपण आणि आपले विश्व होय. आपल्यासमोरचे विश्व सातत्याने बदलत असते. एका क्षणी ते आपल्या इच्छापूर्तीच्या रूपाने साकारते तर एका क्षणी ते आपले पूर्वकर्माचे परिणाम म्हणून प्रारब्धवश आपल्यासमोर उभे ठाकते. खरे तर हे जीवन कधी अद्याप सुरुही झालेले नाही आणि कधी संपुष्टातही येणार नाहीये, कारण महाउर्जेचे हे एक केवळ स्वप्रवत अवस्थांतरच आहे. आता अत्याधुनिक अशा क्वांटम शास्त्राच्या सहाय्याने हे सहज सिद्ध करता येते. फक्त आपण त्याच महाउर्जेचे घटक म्हणून ते स्वतंत्रपणे अनुभवत असतो इतकेच. ही स्वतंत्रता आभासी सत्यतेचा एक भाग आहे. या आभासी सत्यतेच्या जन्म-जीवन-मृत्यू या प्रमुख तीन अवस्था आहेत. त्या अवस्थांतरांना समजून त्यांच्या पलीकडे जाऊन त्यांचा साक्षी होता आले तर...? तर आपण त्यातून उद्धविणाऱ्या सुखदुःखाने सीमित होऊन राहणार नाही. हेच रहस्य आपले सर्व महान ग्रंथ आणि संतसाहित्य आपल्याला युगानुयुगे सांगत आहेत. मराठी भाषेचे वैभव इतके अपार आहे की मला तिच्याच कृपेने हे सर्व वेगळ्या पद्धतीने इथे मांडता आले आहे....

उर्जेने एक जीव म्हणून चैतन्याच्या आश्रयाने शरीररूप धारण केलेले होते. आता तिची शरीराला धारण करून जगण्याची क्षमता संपुष्टात आलेली असल्याने ती मृत झाली आहे. पण स्वतः चैतन्यस्वरूप असूनही जीवात्म्याला स्वस्वरूपाचा विसर पडला आहे. शरीर मृत झाले म्हणून दुःखी झालेला जीवात्मा तिथे त्या मृत शरीराच्या अंत्यविधीला शोक करत आहे. त्याला उद्देशून ती महाउर्जा म्हणते....

वचन होते दिलेस तू....

वचन होते दिलेस तू मजला,
नाही करणार रुदन तू माझ्या अंत्यविधीला ॥धृ॥

तुझ्यातून मी अन माझ्यातून तू प्रकटलास
समजावुनी घेण्या मर्म जीवनाचे
मी कधी तू तर तू कधी मी झालास
तळहाती आपण ठेवुनी आपुल्या रहस्याला
वचन होते दिलेस तू मजला...
नाही करणार रुदन तू माझ्या अंत्यविधीला ॥धृ॥

आलो आपण येथे माध्यमातून जीवाच्या
दिल्या मी त्याला संवेदना अन उर्मी प्रतिसादांच्या
त्यातून केले निर्माण त्याने त्याच्या अस्तित्वाला
तूच होता इथे या सर्व घटना साक्षीला
वचन होते दिलेस तू मजला...

नाही करणार रूदन तू माझ्या अंत्यविधीला ॥धृ॥

प्रतिबिंबित तू झालास माझ्यात मी होऊन
झालास तू कर्ता-भोक्ता, मी साकार सगुण
माझ्यातून निर्माण केले मी आकर्षणाला
प्रकटविले द्वंद्व त्यास जुंपिले जीवाला
वचन होते दिलेस तू मजला...
नाही करणार रूदन तू माझ्या अंत्यविधीला ॥धृ॥

नाही इथे कुठेही पुरुषत्व आणि स्त्रित्व
माझ्याच भ्रांत रूपाने मला केले मी आकृष्ट
हास्याचे ते उडाले फवारे जेव्हा दाविले तुला
की मीच होऊन कामेच्छा संभोगीले मीच मजला
वचन होते दिलेस तू मजला...
नाही करणार रूदन तू माझ्या अंत्यविधीला ॥धृ॥

उलगडविताना आपण हे जीवनाचे गौप्य
कधी मी झाले इच्छा तर कधी झाले मी प्रारब्ध
निव्वळ वस्तूंची उठाठेव, उर्जासंक्रमण अन स्थित्यंतर
जीवांनी दिला विपर्यस्त अर्थ उद्धूवित जाणवांना
वचन होते दिलेस तू मजला...
नाही करणार रूदन तू माझ्या अंत्यविधीला ॥धृ॥

अरे माझीच ही माया अन माझीच रे मोहिनी
तुझ्या सवेच फक्त ती आली रे माझ्याच स्वप्नी
षट्ठीपुंना पाजुनी इच्छावासनांची उर्जा
मीच या भ्रांतीचा रे उठविला रंगधुराळा
वचन होते दिलेस तू मजला...
नाही करणार रूदन तू माझ्या अंत्यविधीला ॥धृ॥

तुला होते ठाऊक की मी मर्त्य तू अमर्त्य
मी इथे अनिर्वचनीय अन तू परम सत्य
तू अनादीअनंत आणि मी विकारी सान्त
म्हणून तू जाग रे दिल्या वचनाला,
नाही करणार तू इथे खांदा कोणाचाही ओला
नाही करणार रूदन तू माझ्या अंत्यविधीला ॥धृ॥

मला असे तुझी ओढ तू परमानंद संन्यस्त
होता श्रीगुरुकृपा, माझ्यातून मी होईल रे तटस्थ
अंगी माझ्या यावी ती योगियांची योग्यता
मी तद्रूप होऊन करेन भ्रांतीची सु-सांगता
वचन होते दिलेस तू मजला...
नाही करणार रूदन तू माझ्या अंत्यविधीला ॥धृ॥

जाणीवरूपी क्षेत्राचा राजा असे हा “मी”
संवेदना अन विचार नेहमी त्यास आक्रमी

वादळे अनेक इच्छांची, वृत्तींची अन वासनांची
हरवून बसलो जाणीव रे माझ्याच “मी” पणाची

बंदी त्या जाणिवांचा हे का न कळे मजला
आपोआप उठती लाटा संवेदना अन प्रतिसादांच्या

जाणीवांच्या कल्पित पंखांनी घेतली भरारी आकाशी
कधी सुखावर तरंगे मी तर कधी खेचले दुःखाने खाली

देह अवघा झाला माध्यम त्या जाणिवांचे
मनाने त्या जाणीवांवर झमले बांधले अर्थानर्थांचे

जाणीवांनी मांडला खेळ हा जाणिवांचा
साक्षी मी त्याला असा हा जन्मोजन्मांतरीचा

माझ्याच जाणीवांनी खेळ भ्रमाचा मांडला
केवळ एका विवेकाने वाचविले त्यातून मजला

जाणिवांची जाणीव कोण हा भोगतो
मी असे चैतन्यरूप कोण येथे हा जगतो

विवेकाने दाविले अद्वैत-तत्त्व सर्वसाक्षी
अनुभविले येथेच “अहं ब्रह्मास्मि” अन “तत्त्वमसि”

वाटते आता परके राज्य ते जाणिवांचे
ज्यांनी निर्मिले विश्व त्या आभासी सत्याचे

गरज त्या जाणिवांची उरली मला न आता
ओळख पटली माझ्यातील निर्गुणतत्त्वाची मजला

आता जाणीवांनी त्यांचा खेळ हा आटोपला
स्वस्वरूपानुभव हा झाला याची देही याची डोळा

83. प्राणेश्वरा जगदीश्वरा

प्राणेश्वरा जगदीश्वरा, आर्त मला न्या पैलतीरा ||धृव पद||

समष्टी तुम्ही महाप्राण असे
व्यष्टी तुम्ही पंचप्राण वसे
तुमच्यामुळे ही वाहे जीवनधारा
प्राणेश्वरा जगदीश्वरा, आर्त मला न्या पैलतीरा

हठयोगी तव आठ आयाम असे
तव आयाम हे योगाधार असे
व्हावी नियंत्रित मम विचारधारा
प्राणेश्वरा जगदीश्वरा, आर्त मला न्या पैलतीरा

स्वरूप तुमचे असे साक्षात निर्गुण
निर्विकार, निरहंकार, निराकार, अनंत
तव स्वरूपी विलय करा त्या अहंकारा
प्राणेश्वरा जगदीश्वरा, आर्त मला न्या पैलतीरा

महाअधिपती तुम्ही सर्व जाणिवांचे
तुमच्याविना इथे घाट मृत्यूचे
विज्ञान, विवेक अन प्रज्ञाधारा
प्राणेश्वरा जगदीश्वरा, आर्त मला न्या पैलतीरा

महाभूतरूपी तुम्ही सगुण ते भासे
परि निर्गुण ते असे प्रत्यक्षरूपाने
हे ईश्वरीय सात्विकतेच्या साक्षीस्वरूपा
प्राणेश्वरा जगदीश्वरा, आर्त मला न्या पैलतीरा

शुद्ध करुनिया सर्व मम नाड्या
षट्चक्रांना त्या पार करुनिया
शिवशक्ती ती ऊर्ध्वगामी करा
प्राणेश्वरा जगदीश्वरा, आर्त मला न्या पैलतीरा

ताटी उघडूनिया आकाशाची
वाट मज दावा जी निर्गुणाची

ब्रह्मस्वरूप होण्या... आता करा हो त्वरा
प्राणेश्वरा जगदीश्वरा, आर्त मला न्या पैलतीरा

84. गुढत्वाचे गूढ...

इथे आत्ता आपण कोणीतरी आहोत आणि ब्रह्मांडाचा विचार करता कुणीच नाही या दोन टोकाच्या विचारातून जरा मोकळीक मिळावी म्हणून केलेला हा छोटासा प्रयत्न.

येथे काव्याची रचना करणारा “मी” नसून कोणीतरी आहे ही या काव्याची खासियत आहे. भौतिक वास्तव हे मनरूपी आभासी सत्यतेच्या माध्यमातून अर्थरूप जाणीवेच्या कक्षेत येते म्हणून वास्तव हे आभासी सत्य आहे. मी, माझे आणि मला हे या शरीररूपी यंत्रामध्ये आपोआप निर्माण झाले असून ते सपशेल आभासी आहेत. जाणिवांची मालकी स्वतःकडे घेऊन ते आभासी जीवन जगतात. आपल्याला तसे जाणवत नाही कारण तो आभासच आपल्यासाठी प्रखर वास्तव आहे इतकी प्रचंड क्षमता त्या आभासी सत्यतेत आहे असे क्वांटम शास्त्रज्ञांना प्रखरपणे दिसून आलेले आहे.

साधक अहंकाराला भेदतात आणि शून्यत्व अनुभवतात. पुढे निर्गुणाचा प्रांत सुरू होतो. पण या तुर्यावस्थेत साधकाची स्वतःबद्दलची धारणा अनंतपट झाल्याने तेथे शून्यत्व भोगणारा कोणीही नसतो. मग प्रश्न असा पडतो की या सगुणरूपी स्वप्नवत संसाराचे प्रकटीकरण कसे झाले. क्वांटम शास्त्र सांगते की शून्यत्वात सगुण साकार संसार क्षमतारूपाने अप्रकट असतो तो चैतन्याश्रीत मनाच्या निरीक्षणातून प्रकट होतो. पण मग वेदांतात सांगितल्याप्रमाणे आपण निर्गुण ब्रह्माचे अंश असू तर त्या निर्गुणत्वाच्या अधिष्ठानावर हे स्वप्नवत सगुणत्व “मी” पणाने कसे साकार झाले. आणि तसे झाले असले तरी ते निर्गुणत्व सगुण संसाराचे स्वप्न कसे पाहील. असे हे गूढत्व या विश्वात गूढपणे लपून राहिले आहे.

गुढत्वाचे गूढ...

आभास वास्तवाचे जे कधी अस्तित्वातच नव्हते
अनेक जन्म त्यामागे आगतिक हे कोण धावे

हा स्व कोण कुठला जो जाणीवा घेऊन येतो
एका बेसावध क्षणी तो कुणाला संभ्रमित करून जातो

स्व ने घ्यावी या रक्त-हाडामासाची मालकी
अशी वासना अन इच्छा सांगा विश्वात कशी उद्भूवि

कोणाचा जन्म, कोणाचे जीवन, कोण हा मरतो
मी, माझे अन मला हा इथे आभासची जगतो अन आभासची मरतो

सांगा सांगा या जाणीवांची मालकी हो कोणाची
कोणी स्विकारली गुलामी इथे या आभासी सत्यतेची

सत्त्व रज तम गुणावगुणांचा नुसताच हा कल्लोळ
अविष्कार तयांचे निव्वळ निष्फळ निष्फळ

करुनिया अहंकारा शून्य शून्याला त्या कुणी भेदले
एक तत्त्व निर्गुण पलिकडे, सगुण स्वप्न हे कुणी पाहिले

निर्गुणाला कसे दिसेल सांगा स्वप्न ते सगुणांचे
नेती नेती असे हे सर्व गूढत्वातून गूढची निपजे

85. बुद्ध्याविष्कार

घे मुठभर माती अन आंब्याचा त्यातून काढावा स्वाद,
अशी नाही रचना निसर्गाची सार्वभौमत्व त्याचे निर्विवाद.

घे मुठभर माती अन गुलाबाचा त्यातून काढावा सुगंध,
जमणार नाही तुला मानवा नको होऊस अंदाधुंद.

घे कितीही पाणी, हवा अन असंख्य पदार्थ,
रक्त निर्माण होते केवळ शरीरात ते अन्नरसाचा अर्क.

कोण कुठले अवकाश असे जे असे निव्वळ पोकळीस्त,
कुणाची ही संकल्पना जे पसरले सुक्ष्मपासून अनंतापर्यंत.

कोण कुठले बळ ते गुरुत्वाचे त्याला ना आदी ना अंत,
अवकाशात लटकती अजस्र ग्रहतारे परी आहे ते दिगंत.

अनंत बुद्धीमत्ता या विश्वाची विलसत आहे युगांतरी,
जेथे हा बुद्ध्याविष्कार तेथे नतमस्तक होऊ आतातरी.

86. मारुवता शोधतो मी.....

मारुवता शोधतो मी मारुवता शोधतो मी

मला न का ठावे मारुवता ती आईच्या वात्सल्यात
मला न का ठावे मारुवता ती बाबांच्या त्या स्पर्शात

मला न का ठावे मारुवता ती गुरुवचनात
मला न का ठावे मारुवता ती बंधुमित्रांच्या स्वागतात

मला न का ठावे मारुवता ती माझ्याच प्रार्थनेत
मला न का ठावे मारुवता ती संतवचनात

परी न मजला ठावे का मारुवता शोधतो ती
मारुवता शोधतो मी मारुवता शोधतो मी

सांगा कधी वादळाच्या ठायी मजला गवसेल का ती
सांगा सूर्याच्या दाहात मजला कधी सापडेल का ती

प्रपातात त्या पहाडावरच्या कशी मजला दिसेल ती
दगडमातीच्या भूमीमध्ये कोठे मजला मिळेल ती

पोकळ अदृश्य अवकाशात त्या कुठेच रे नसणार ती
कधी देईल मला ते विश्व कणाकणातून साक्ष तिची

परी न मजला ठावे का मारुवता शोधतो ती
मारुवता शोधतो मी मारुवता शोधतो मी

साधू भेटला एक मजला त्याला पुसले असता मी
तो सांगता झाला साध वेध तू माझिया दिव्य वचनी

जाता वादळ तेथून आता मारुवता ती अशी प्रकटे
बघ घाबरलेल्या पाडसाला ती गाय जिव्हाळी कसे

सूर्याच्या दाहामध्ये तहानलेला बघ तो जीव

अनोळखीच्या हृदयातून आले बघ मार्दवतारूपी नीर

प्रपातातून जल खाली येता जन्म जाहला सरितेचा
अरे मार्दवता सिंचून ती अवघी, जीवन देते अगणित जीवा

भूमीमधून मार्दव ते उगवे पहा फुलांचा सदाबहार
अवकाशाचे माध्यम तेथे होतो मार्दवतेचा स्वरविहार

मार्दवता ती लपून राहे कारणात पंचतत्वांच्या
परिणामांच्या दृश्य रूपाने जाणून घे रे सत्त्वरी तिजला

87. कलियुगाचे नाव..

कलियुगाचे नाव दुसरे अहंकार
जो होतसे बाधित त्याचे मन भ्रमाकार

हा अहंभाव इतुका पातळ
जैसे समोर असोनि दिसे ना मुसळ

साधुसंतांनाही याने केले हैराण कित्येक
मरणांतिही ना सोडे तो बाकी जीवांस प्रत्येक

जो जाणी कैसे उपजे हा अहंभाव
त्याचे बखोटी बैसतो ऐसा की त्याला नसे ठाव

जरी केले धर्माचरण अर्थासह वेदपठण
परि दृष्टीत द्वैतभाव तिथे अढळ अहं स्थान

तिथे पाहीजे जातिचा
अवतार परब्रह्माचा

ऐसा भेटता सद्गुरु अद्वैताकार
त्या शिष्यास ना कधी बाधती अहंकार

अहंभावावर मिळविता विजय
होई कलियुगाचा साधकाप्रती लय

परि साधकास हवी कळकळ इतुकी
जिवंतपणी त्याने जाळावी द्वैत बुद्धीमती

अहंभाव असे एक महाशक्ती

संत म्हणती करा अनन्यभावे ईशभक्ती

ऐसा भक्तीयोग साधता सर्वोच्च
कोण तिथे मग उरे होण्या अहंभावमुक्त

कशाच्या तरी पार्श्वभूमीवर आपल्याला मनामधील विविध भाव जाणवत असतात. ती पार्श्वभूमी किती अलौकिक आहे ते सांगणारी ही रचना.

मी अनादी म्हणून विखंडता
 मी पूर्ण आहे म्हणून अपूर्णता
 मी अनंत आहे म्हणून मर्यादा
 मी सदानंद आहे म्हणून सुखदुःखे
 मी प्रशांत आहे म्हणून तृष्णेचे भय
 मी निवृत्त आहे म्हणून वृत्तीप्रवृत्तींचा खेळ
 मी निर्गुण आहे म्हणून गुणांचा कल्लोळ
 मी निराकार म्हणून आकारबद्ध जाणीवा
 मी निर्विकार म्हणून विकारदर्शन
 मी निरहंकार म्हणून अहंभावाचे साम्राज्य
 मी अद्वय म्हणून द्वंद्वाचे थैमान
 मी अनिर्वचनिय म्हणून मी आहे अन मी नाही

जाणीवेच्या कक्षेत येणाऱ्या प्रत्येक गोष्टीला प्रकाशित करणारा निर्गुण मी
 जाणिवांमध्ये गुंतून जाणिवांचे मोजमाप करणारा तो अहंभावित सगुण मी

मी निर्माण झाला तो मी अस्तित्वात नाही हे समजून घेण्यासाठी
 अपूर्णत्व निर्माण झाले आपल्यातले पूर्णत्व समजून घेण्यासाठी
 अहं निर्माण झाले आपल्यातले निरहंकारत्व समजून घेण्यासाठी
 आकार निर्माण झाले आपल्यातले निरहंकारत्व समजून घेण्यासाठी
 गुण निर्माण झाले आपल्यातले निर्गुणत्व समजून घेण्यासाठी
 मुक्ती निर्माण झाली आपल्यातले बंध समजून घेण्यासाठी
 आहे निर्माण झाला शून्याच्या पलिकडे जाण्यासाठी
 अनंत निर्माण झाले आपल्यातल्या मर्यादा समजण्यासाठी

89. मैं ना मालिक कहलावू रे

सर्वव्याप्त जो आकाश वह लिप्त न होय किसीसे
सदा रहे निर्गुण और जाँई अनंत ही के परे
मैं तो हूँ अवगुण की खाँई जहाँ जाऊँ परिणाम जो पांवू
ना मैं समाऊँ मेरा मुझमे तो खुदको मालिक क्युं कहलावू

निराकार वो वायू सर्वत्र सदा बहता ही रहे
प्राण देई सब जीव को जो है अमूल्य ही से परे
सूक्ष्मता मैं कैसे जानू जो प्राण हाथ ना आवे
मैं क्युं कहलावू मालिक खुदको जिसका प्राण पराई होवे

दाह को लेके साथ ही अपने ब्रह्मांड मे रहता हैं
प्रकाशसहीत उष्मा जिससे निर्माण प्रकृती का होता हैं
भूख प्यास सब उसकी माया अगन कुंड मे दिखता हैं
जिसको सके ना हाथ लगाऊँ वो होगा मेरा कैसा रे

शीतलता निर्माण जहा से वह जल कहलावे
सदा वहन से धरती पर ये अगणित फसल उगावे
तृप्ती का रूप हैं ये हर प्राणी की प्यास बुझाए
नहीं हैं कोई उसका मालिक जहाँ जीव ही खुद प्यासा रहे

धरती सबका आधार जो अपनी माता ही कहलावे
साथ अन्न का भांडार और उसमे रत्न कई छुपे है
सहनशीलता जिसका तत्व निर्माण हुई सृष्टी उसी से
मैं कैसे उसका मालिक जो खुद मेरा आधार हुई हैं

इस पंचतत्व की यह बनी हैं काया
कार्य करे इंद्रियोंसे यह माया
पंचकोष से प्रकटे जीवन उस मे
इस जीवन का मालिक मैं कैसे कहलावू रे

ऐसे अगणित जीव जो संवेदीत रहे सदा
मन माया का रूप हैं उसने सबका मैं बनाया
एहसास से प्रतिसाद तक जाके अगणित क्षमता हैं उसमे
जानना जिसका काम हैं उसका मालिक कहलावू मैं कैसे

मैं ना किसी का मालिक अब और हुं ना किसी का बंदा
तेरा ही तू जाने भगवन कैसी प्रकट हुई ये माया
अब जाके देखू इस माया को मैं तेरी ही नजर से
कणकण मे तु हैं निर्गुण अब मैं मेरा ना होई रे

90. रंग नको टाकुस...

श्रीकृष्ण गोपींच्या अंगावर रंग टाकतो आणि रंगपंचमी खेळतो. या गोपी म्हणजे मायेचेच स्वरूप आहे असे मानले तर माया आता श्रीकृष्णाला काय म्हणते ते येथे काव्याच्या स्वरूपात मांडले आहे.

रंग नको टाकुस...

रंग नको टाकुस बेभान झाले मी मनमोहना
थांब रे थांब आता मीच मला विसरले कन्हैया

नेसले होते मी शुभ्र वस्त्र निर्गुण निरंकाराचे
तुझ्यात होते समर्पित ते गात गाणे परमानंदाचे
तू मांडीयला खेळ रंगांचा रे तुझ्या मनोरंजना
रंग नको टाकुस बेभान झाले मी मनमोहना
थांब रे थांब आता मीच मला विसरले कन्हैया

तू पंचतत्वे मिसळली विश्वशक्तीरूपी जळात
साकार केलेस त्रिगुण तू त्या अनेक रंगछटांत
मुरलीच्या स्वरांनी त्या तू धुंद केलेस मजला
रंग नको टाकुस बेभान झाले मी मनमोहना
थांब रे थांब आता मीच मला विसरले कन्हैया

बेधुंद त्या अवस्थेत रे मीच मला ते प्रसाविते
निर्मुनि जीव असंख्य त्यांच्यातुनी भावरंग खेळते
मी ही टाकिला रंग तुझ्यावर त्या सृजनशीलतेचा
रंग नको टाकुस बेभान झाले मी मनमोहना
थांब रे थांब आता मीच मला विसरले कन्हैया

तू परम चपळ कधी होतसे दृश्य कधी अदृश्य
मी भ्रांत झाले रे त्या असंख्य द्वैतांच्या रंगात
विरहिणी तुझी मी झाले रे माझ्या गोविंद गोपाला
रंग नको टाकुस बेभान झाले मी मनमोहना
थांब रे थांब आता मीच मला विसरले कन्हैया

तव रंग हे सगुणांचे मी घालवू कसे रे
मज लाज वाटे फार येऊ पुढे कशी रे

तू गुरुर्योगी म्हणून यावा हे द्वैतरंग घालविण्या
रंग नको टाकुस बेभान झाले मी मनमोहना
थांब रे थांब आता मीच मला विसरले कन्हैया

मी आले तव शरण दमले रे या रंगात रंगून
तुझे स्मित पाहते मी शून्याच्या पडद्यामागून
दे वरदान साधनशक्तीचे हे भवडाग धुवून टाकावया
रंग नको टाकुस बेभान झाले मी मनमोहना
थांब रे थांब आता मीच मला विसरले कन्हैया

तुझी लीला अपरंपार रे माझ्या हृदयनाथा
तूच धुतले मम मायारंग पावले स्वस्वरूपाला
घे मम हात हाती ओलांडावया शून्याचा उंबरा
रंग नको टाकुस बेभान झाले मी मनमोहना
थांब रे थांब आता मीच मला विसरले कन्हैया

91. कसा साधावा परमार्थ...

सगुण ते आम्ही बाधलो द्वैताने
द्वंद्वाशिवाय येथे संसार सांगा कोठे
काया मन बुद्धीला ना कळे अद्वैत
भ्रमिष्ट ते झाले सर्व त्यांच्याच हो विश्वात

ऐसा आम्हा शाप असे देवा या द्वैताचा
ना चुके त्यामुळे हा फेरा जन्ममरणाचा
मायेचे भवारण्य निबिड ते फार असे
गुरुविना इथे परमार्थ वाट ना मज दिसे

किती केले येथे ग्रंथांचे वाचन
किती साधले येथे श्वासांचे अनुसंधान
किती ती सर्वत्र फिरलो तीर्थे अनेक
परि न जमला जीवनी परमार्थ तो एक

राहुनी जीवे संसारी साधावा तो परमार्थ
सांगती साधूसंत परि कैसे करावे ते सार्थ
चंचल ती चालती भ्रांत बुद्धीची पाउले
संसार तो वाटेमध्ये जशी केळीची साले

कैसे जाणावे आम्ही हे तत्व तुझे अद्वैत
जे असे केवळ द्वैताच्या गूढ गर्भात
अस्थिर ती बुद्धी, कैसे व्हावे अभ्रांत
गुणदोष कसे जातील गुणदोषांना भेदून

साक्षात मुलतत्व ते देवा असे तुझे निर्गुण
त्यावरी तू घातले अष्टसात्विक आवरण
ऐसे जयाचे असे अद्भुत अवतार स्वरूप
त्या श्रीगुरुतत्त्वकृपे येथे मिळावा हो उःशाप

द्या हो आता वरदान घट्ट त्या नामाचे
जाऊ तरून संसार प्राशुनिया तव नामामृत ते
द्या हो आता वरदान अश्रूंच्या वर्षावाचे
जातील धुवून दोष ते व्याकूळलेल्या मनाचे

आता व्हावा संसार जैसी तुझीच रे सेवा
अबाधित व्हावे द्वैत, जाणले जावे अद्वैता
व्हावी ऐसी कृपा मजवरी श्रीगुरुदेवा
त्रिगुणाचिया खुणे तू दाखवी निर्गुणा

अमृतानुभवी आता देवा अर्थामृत ते पिऊ
निर्गुणाच्या साक्षी गुणातीत ते होऊन राहू
तुझिया कृपे गुरुदेवा मरण न ते आता यावे
आत्मभान ते माझे आत्मानंदी अनंत व्हावे

92. स्वप्न आणि त्याची शक्ती

मूळ विश्व हे परम तत्वातून प्रसविले गेले आहे. आपण सगुण साकार आहोत तर परम तत्व निर्गुण निराकार आहे. निर्गुणातून सगुणत्व साकार होणे कदापीही शक्य नाही. पण आपल्या जाणीवेमध्ये तेच वास्तव म्हणून इतक्या प्रखरतेने येते की सगुणत्व आपण नाकारू शकत नाही. म्हणून वेदांत या अवघ्या सृष्टीला स्वप्नाची उपमा देतात. जेथे जेथे बुद्धीतत्व जाईल त्यापुढे उर्जाचैतन्य तत्व त्याआधी पोहोचलेले असते हे आत्यंतिक रहस्यमय आहे. अन्यथा आपल्याला या विश्वाचे आकलनच झाले नसते. उर्जा शक्ती ही निर्गुण आहे. उर्जेचा वापर करताना तिचा उपयोग कुठे केला जातो हे तिला कळत नाही. जसे बीज घरात येऊन प्रकाश देते का रस्त्यावर प्रकाश देते हे त्या विजेला समजत नाही. तिच्या केवळ असण्यामुळे सगुणत्वाचा आभास निर्माण होतो. परम तत्वाचा प्रकाश हा निर्गुण आहे पण त्याच्या असण्याने सगुण जाणीवेच्या कक्षेत येते.

जैसे मनःपटली उमटे दृश्य
तैसे निर्गुणामाजी वसे शून्य

प्रकटे ओमकार ध्वनी तिथे एक
शून्यातून उपजे तत्व ते सगुण

ते निर्गुण अपरिमित अनंत अपार
सगुणातुनी पसरे त्याचे चैतन्य आरपार

निर्गुणामध्ये त्या सगुण ते ऐसे दाटे
जणू निर्गुणची पाही स्वप्न तिथे जे प्रकटे

निर्गुण चैतन्य ऐसे भोगिले सगुणाने
जैसे कर्तृत्वाचे शिखर गाठले अज्ञानाने

पहा पहा तो स्वप्नात जाणिवांचा कल्लोळ
नसता चैतन्य तेथे सगुणत्व होई निष्फळ

सगुणातूनी पातल्या त्या क्षमता असंख्य
स्वीकारले त्याने वैश्विक नियमांचे दास्य

असूनही स्वप्न हे ऐसे, असे ते बलवान
वास्तवाच्या भासापुढे सगुण तुकवी मान

या स्वप्नी ते सगुणत्व शक्ती अनंत पाही
ओलांडे ते निर्गुण चैतन्य त्या अनंतालाही

ऐसे हे निर्गुण चैतन्य अपरंपार अगम्य
सत्यालाही प्रकटवी ते होऊन परम सत्य

मुस्कुराती हुई जिंदगीसे पुछा क्या दिया तू ने उनको
 काय दिलेस तू त्यांना मी विचारले जीवनधारेला
 वह बोली एक निहायत उमदा तोहफा मिला है उनको
 म्हणाली ती एक अत्यंत मौल्यवान भेट प्राप्त झाली त्यांना

खुलता है आपके लिये सहारे कायनात के यह अफ़जाइश-ए-नसल
 पार्श्वभूमीवर विश्वाच्या बघ खुलतो निसर्ग हा
 पहाडोंके कन्धोन्से बहते है कितने ये सफेद अब्शर
 खांद्यावरून पहाडांच्या वाहती अनेक शुभ्र सरिता

खुशबुभरे फुलोंसे बहती हवा को मिली एक नई हस्ती
 सुगंधाने फुलांच्या मिळाले वायूला अस्तित्व
 बहते हुये नहेरोंने ठंडे, बुझा दी प्यास उनके दो तर्फोंकी
 वाहत्या निर्झरजलाने त्याचे काठ झाले तृप्त

मुनाकीस किया आसमान को काहील-ए-झील के पानी ने
 शांत जलाने सरोवराच्या दाविले आकाशास स्वस्वरूप
 दिया नजारा कुदरत ने आपको वादियों में तक्सीम होके
 निसर्गाने दिला नजराणा तुला तो सर्वत्र आला फुलून

दिया वजूद आपको आप के मुकद्दस बुजुर्गोंने
 दिले स्वत्व तुजला तुझ्या पूज्य पूर्वजांनी
 भर दी जिंदगी आपकी शाउरसे खुदा की खुदाईने
 देवाने भरले आयुष्य तुझे चैतन्यरूप जाणीवांनी

बहार आने दे ये जिंदगी उनके लिये उस कादीर-ए-हृद तक
 आयुष्य हे बहरणार आहे तुझ्यासाठी ते चिरंतन
 ए दोस्त हो जाये आपकी जिंदगी सदा रोशन रोशन
 प्रकाशमय आयुष्याने उजळू दे तुझे हे जीवन

स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व ते प्रसविले ॥धृ॥

कसे राहतील एकत्र अनंत अन सान्त
सुक्ष्मातुनी येथे स्थूल विश्व कसे प्रसविले
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

शून्य अवकाशात हे पुंज अदृश्य क्षमतांचे
त्यातुनी स्थूलसूक्ष्म विश्व ते कसे पातले
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

प्रसविले ग तू माये स्वत्व तू कसे प्रसविले
निर्मुनिया जाणीवक्षेत्रे स्वतः जीवे कोंडियले
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

जाणीवांतून त्या तू जाणीवांना प्रसविले
ऐसी तव लीला गूढ अगाध ती असे
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

अद्वैताची साम्राज्ञी तू द्वैत कसे प्रकटविले
श्रुती श्रमली इथे तू अनिर्वचनीय सदा असे
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

असंख्य भोगांनी तू स्वत्व ऐसे भोगे वाटे
परि सदा त्रुप्तिच्या पल्याड तू अनादी अनंत असे
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

अमर्याद तृष्णेतुनी तव निरोप मजला मिळे
आभासी हे सत्य तव निव्वळ ती माया असे
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

अदृश्य मन माझे अनुभाव्य ते कसे अनुभवे
अशक्य इथे त्या दोघांचे ते एकत्र कधी येणे
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

दृश्य शरीरामध्ये अदृश्य ग मन ते कसे
जाणीवा त्यातील तिथल्या भ्रान्तविश्व असे त्यांचे
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

जाणीवा न त्या कोणत्या ग माझ्या असे
भ्रान्त करण्या मम मालकीचा तो भाव दिसे
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

अकर्ता अकर्मी आत्मतत्त्व ते विलसे
ब्रह्मतेजी तू हे स्वप्न तुझे पाहतसे
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

अशी तू ना भोक्ती ना तू कधी कर्ती असे
स्वप्नांची ती रास तव जीवनानुभव इथले
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

अष्टसात्विक गुरुमूर्ती भेटता मज तव कृपे
माझ्यामध्ये तू तुजला तेव्हा प्रसवशील गे माये
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

स्वस्वरुपानुभवी पुन्हा मी जाईन त्या सुयोगे
निर्गुण ते तत्व मी होऊन राहील स्वच्छंदे
स्वप्न कसे पाहिले ग तू माये
निर्गुणातुनी तू सगुणत्व प्रसविले ॥धृ॥

सर्व काही कळत असूनही दुर्लक्ष करण्याची वृत्ती प्रकाशित करतो
तर काहीही कळले नाही तरी सर्व कळल्याचा आणलेला खोटा आवही प्रकाशित करतो.

मुद्दाम दुष्कृत्य करण्याच्या वृत्तीसह
सत्कर्मातील कर्तेपण व भोक्तेपणाचा त्यागही प्रकाशित करतो.

विनय, चारित्र्य शीलता, नितीमत्तेसह
उद्दामपणा, भ्रष्ट आचार व अनितीही प्रकाशित करतो.

दारिद्र्य, दुःख, अज्ञान, अंधकारासह
समृद्धी, सुख, ज्ञान व प्रकाशालाही प्रकाशित करतो.

शांततेची शांती प्रकाशित करतो तर अशांततेची वेदनाही प्रकाशित करतो.

चांगले व वाईट यांच्या व्याख्या प्रकाशित करतो तर
त्या समजूनही त्याच्या उलट वागण्याचा मार्गही प्रकाशित करतो.

लाचारी, परावलंबीत्व यांच्याबरोबर स्वावलंबीत्वही प्रकाशित करतो.
देव, देश, अन धर्मासह दानव, द्रोह व अधर्मही प्रकाशित करतो.
सर्व क्षणभंगूर आहे हे कळत असूनही मायेतील गुंतणे प्रकाशित करतो.

सर्व येथेच ठेवून जायचे आहे हे कळत असूनही,
हव्यासासह संन्याशाच्या त्यागालाही प्रकाशित करतो.

एक दिपोत्सव आपल्या अंतर्मनात युगानुयुगे सुरू आहे.
त्याला जाणून घ्यायचे जीवनाचे उद्दीष्ट क्षणाक्षणाला प्रकाशित करण्याचा प्रकाशोत्सव म्हणजेच दिपोत्सव.

97. अनिर्वचनीयतेच्या पलीकडे

येथे निर्माण झाली अगणित कारणे कारणांशिवाय,
त्यातून दिसले परिणाम कोणत्याही परिणामांशिवाय,

येथे अद्वैतातून प्रसाविते आहे द्वैत ते सर्वत्र,
येथे वास्तव आहे अ-वास्तव आणि भासही केवळ आभासमात्र,

येथे जाणीवेतून संक्रमित झाला जाणिवांचा जाणता,
कोण हा “मी” जो जीवन जगतो आहे हे सर्व अजाणता,

येथे जणू जीवन जगते जाणीव स्वतःहून,
विसावा तिचा नेणीवेत असे, नसे काही वेगळे तेथे त्या मृत्यूहून,

जे काही नाही व जे काही आहे ते कधीच नव्हते येथे,
गूढत्व आणि अनिर्वचनीयतेलासुद्धा शब्दांची वानवा तेथे,

हे सर्व जे वाटते ते एका क्षणी आहे वास्तव आणि एका क्षणी आभासी,
कोटून मी आणू ते नवशब्दभांडार वर्णावया त्या विश्वलीलेसी,

अखेर येथे विज्ञानही थकले अध्यात्म होऊन,
“कोणती सत्यता परम” या प्रश्नाने ते गेले भांबावून,

परम उर्जारुपी श्रीगुरुंची करुणा अपार, तेथेच होतसे हा दृष्टांत,
एक परम सत्य चैतन्य तेथे विलसे जेव्हा होतसे द्वंद्वाचा अंत

98. हे कवीमना...

लपून आहे रे स्त्रोत कवितेचा तूझ्या उत्स्फूर्ततेमध्ये...
रांगोळी तू घालीशी सुंदर त्या शब्दांच्या ठिपक्यांमध्ये...

दे झोकून रे स्वतःला प्रतिभेच्या त्या प्रांगणात..
गवसेल तुला आनंद तेथे खोलवर त्या अंतर्मनात....

जाणकार आहेत इथे शोधण्या कवी तो तुझ्यामध्ये..
तू नच ठेव भीडभाड त्या समाजाची मनामध्ये...

सूर्याच्या तापातून त्या शीतलतेला जन्मू दे...
सागराच्या सीमेला त्या असीम होऊन जाऊ दे...

वादळाची अस्ताव्यस्तता मिसळू दे ती शांततेत..
धरणीकंप तो शोषून घे तुझ्याच रे मनोकंपात...

आकाशाची अवघी पोकळी तव स्वरांनी भरू दे...
विश्वालाही त्याचे स्वस्वरूप नव्याने ते कळू दे...

आईलाही कळू दे ममता मुलायम तव शब्दांतून..
बाबांच्या छत्राला मिळू दे आधार तुझ्या त्या काव्यातून...

भावाबहिणीच्या प्रेमाला दे सोनकिनार तव प्रतिभेची..
प्रियकराने द्यावी रे साथ घेऊन शपथ तुझ्या काव्यांची...

देवालाही अर्पित मी माला तव शब्दसुमनांची..
मार्दव शब्द तुझे ते देतील साक्ष माझ्या भक्तीची

घे हे व्रत तू भेदण्या रहस्य त्या रे अवघ्या विश्वाचे..
विश्वानेच दिधले काव्यशस्त्र तुज त्याच्या दिव्य प्रतिभेचे...

पाण्याविना माठ त्यास माठ म्हणू नये
प्राणाविना शरीर त्यास जीव म्हणू नये

माठ अन शरीरे दोघे मृत्तिकेसमान
पाणी आणि प्राण ते जीवनाधार

आग ओकति सूर्य जीव तृष्णार्त हा झाला...
जल शितळ मिळे माठामूळे त्या जीवाला ...

विट्टल ना भेटी तिथे तृष्णा विरहाची
अनुसंधान श्वासांचे नित्य देव येती भेटी

जर ओळखले त्यांचे आगळे हे महत्व
जैसी माठाची महती तैसे शरीर अमोलिक

मृत्तिकेसमान असती जरी ती दोघे ..
तृष्णा शमविण्या... ते विश्व ऐसे प्रकटे

100. मृत्यूदान

नीर नयनातून वाहे....
वृद्ध मनात आर्त जागे ॥ धृ ॥

केस सर्व ते धवल जाहले
बोलणे ते अतीव क्षीणले

गळून गेली ही सर्व गात्रे
शरीर संपूर्ण कृश ते झाले

निद्रा नसे ती डोळ्यांमध्ये
नजर अस्थिर सदा भिरभिर

षड्रिपुंना ती स्मृती जागवे
आवेग येती इच्छा वासनांचे

भूतकाळ सदा हसवे रडवे
भ्रांतिने जणू ते वेड लागले

आसक्तीने मन थरकापे
कंठ कोरडा भय तृष्णेने

आक्रंदन ते पश्चात्तापे
असहाय नित नित ते वाटे

आसेष्टांनी सोडीले एकले
विश्वानेही मजला त्यजिले

जोडीदार अति अंधुक तो दिसे

त्याचेही शरीर ते थकले

आता एकच आशा ती राहे

माझी अवस्था प्रभू तू जाणे

दाता व्हावे तुझे सत्वर येणे

क्षमा मागतो मृत्यूदान ते द्यावे

101. Universe And Me

From a sperm to a handful of ash at death...
Shouldn't I take this opportunity as being extremely fortunate?

Isn't it my right to be always happy and healthy?
So I am always indebted to the God and everybody...

What did I bring here and what will I carry?
That I should understand very carefully...

Who am I that always spell the "what's next" urge...
Isn't it an abstract expression of our universe?

Who will be cremated?... I or Me..
I will not but the body as Me..

Isn't it our journey of being spiritual?
That shall be experienced by the Self of every Individual...

Let's extract us from the dialectical reality
and cross the sky high verge...

To Awaken the Self in the Eternity,
is the aim of our universe.

102. The mystery of this self realization ...

When I use "I" for my self-introduction,
Entire universe sees in it my God's reflection.

When I interact with every person,
With an ornament of respect; I adorn that relation.

I wonder how sweet my speech is,
Everyone says it's like a melodious breeze.

I always see the miracles happening,
Where a gentle touch of mine creates a feel of caring.

Wherever my sight goes; I see the glimpses of divineness,
And my "Self" is evolving from the universal holiness.

Wherever I go; everybody is feeling safety,
Not only me but they see my shadow with full of sympathy.

God unveiled in me the mystery of this self realization,
When I saw my tears sparkling with full of HIS reflection...

104. I am the space...

I am the space, I am the space
Wherein the world changes at its own pace

I am the space...I am the space
Prevails in and out of the universe that's my God's grace

I am the space...I am the space
Let them move with good n bad, I am aloof as HIS blest ace.

I am the space...I am the space
A complete source of universal consciousness

I am the space...I am the space
I accommodate all as my God's mace.

I am the space...I am the space
I am not any being that born and dies

105. अद्वैत स्वरूप दर्शन

अदृश्य मन आणि दृश्य शरीर या दोन पराकोटीच्या विरोधी घटकांमधून जे दुभंगलेपण निर्माण झालेय त्यातून ही मीपणा ची विसंवादी भ्रांती प्रसृत झाली आहे. म्हणून मी कोणीतरी विशेष व वैशिष्ट्यपूर्ण आहे हा भाव जोपासणे दुःखदायक आहे. जे जे विशेष व वैशिष्ट्यपूर्ण म्हणून जगत आहे ते ते निश्चित मृत होणार. जे येथे असणार आहे ते नसणार आहे. त्या विशेषत्वाने जगणाऱ्या जीवाला मृत्यूचे भय असणार. तो सतत तहानलेला असणार अशीच या विश्वाची रचना आहे. हे इथे माझ्याकडून जे लिहिले जात आहे तेसुद्धा माझ्यामध्ये विशेषत्व निर्माण करते आहे. हेच या विश्वरचनेचे गूढ रहस्य आहे. पण फरक इतकाच की हा विचार धारण करणारी व्यक्ती या संवादी भ्रांतीच्या नियोजनातून स्वस्वरूपानुभवाच्या दिशेने जात राहिल.

आपण कोणतेही वस्तुनिष्ठ भौतिक कार्य केल्यानंतर आपले मन वैयक्तिक पातळीवर वैयक्तिक स्वार्थासाठी कल्पनाविलास सुरु करते. सुख, दुःख, लालसा, काळजी, अहंकार, तसेच षड्रिपू यांच्या प्रभावाखाली जाऊन स्वलित होते. हा क्षण मी कोणीतरी विशेष व वैशिष्ट्यपूर्ण आहे हा भाव निर्माण होण्यामागचे प्रमुख कारण आहे. कार्यकारणभावाची शृंखला सुरु रहाण्यासाठी परिणामांची बीजे रुजली जातात आणि त्यांचे कारणात रूपांतरण होत रहाते. कार्य घडून आल्यानंतर त्याचे परिणाम भौतिक व क्वांटम दोन्ही पातळीवर घडून येतात. त्यातील क्वांटम पातळीवरील किंवा मनाच्या पातळीवरील परिणाम पुढील कार्याची बीजे होतात.

मनामधील या स्वार्थी विचारांच्या मागे पाठपुरावा करत जात रहाणे, कल्पना विलास करणे व विचार प्रत्यक्ष आमलात आणण्यासाठी बौद्धिक व शाररीक प्रयत्न करणे. त्याचे श्रेय घेण्यासाठी विविध प्रयत्न करणे. कोण करतो हा पाठपुरावा ? मनाने निर्मिलेला आभासी मी हा मनामधील विचारांचा पाठपुरावा करतो. विचार थोपविता येत नाहीत पण त्या विचार प्रवाहाच्या काठावर तटस्थ राहता मात्र निश्चित येते.

दैनंदिन सांसारिक कर्तव्य बजावताना मी कोणीतरी विशेष व वैशिष्ट्यपूर्ण आहे हा भाव सांभाळावा लागतो त्याला पर्याय म्हणजे त्या भावाचा त्याग करून वापर करायचा. हा भाव संपूर्णपणे नाहीसा करण्यासाठी प्रयत्न करणे म्हणजे उपवास करणे म्हणजे दैनंदिन सांसारिक कर्तव्य करून झाल्यावर मी माझे व मला तू, तुझे व तुला, आमचे आम्ही व आम्हाला यासारख्या शब्दांनी स्वत्व प्रकट करणारी वाक्ये मनात न आणणे व प्रत्यक्ष त्यांचा उच्चार न करणे. स्वरयंत्र बंद तर हवेच पण मनापासून मौनात रहाणे.

मौन यशस्वी होण्यासाठी शरीर व मन कणखर हवे. त्यासाठी प्रयत्न करणे म्हणजे योग साधना करणे. साधना संपन्न होण्यासाठी ईश्वरीय शक्तीला सतत समर्पित व्हावे लागते यासाठी दैनंदिन उपासना करणे.

अद्वैत स्वरूप दर्शन...

चैतन्य-उर्जाशक्ती तू अनादीअनंत स्वरूपा,
अनाकलनीय अनिर्वचनीय कसे वर्णू तुझिया रूपा,

पंचमहाभूतात्मक महाशक्ती विश्वाची ती प्रकटे,
अणुरेणूंच्या गर्भात तेथे असंख्य क्षमता दाटे,

क्षमतांच्या गर्भी गर्भ असे अनंत बुद्धीमत्तेचा,
अनंत बुद्धीमत्तेतून विकास झाला क्षमता शक्तीचा,

क्षमतांची मांदियाळी तेथे असंख्य गुणवैशिष्ट्ये,
उर्जाशक्ती चलन होता जन्मिली असंख्य ब्रह्मांडे,

असंख्य उर्जासमुच्चय प्रसवी या क्षमता निसर्गात,
असंख्य जीवधारणा झाल्या माया विलसे चैतन्यात,

येथे असंख्य जीवांच्या असंख्य झाल्या राशी,
पंचदशा साधिली उर्जेने ती राहे त्यांच्या पंचकोशी,

असंख्य जीवांची झाली निर्माण असंख्य मनोक्षेत्र,
चैतन्याधिष्ठानकारणे प्रत्येकाचा मी हा असे स्वतंत्र,

मनोक्षेत्रे प्रकटली तेथे जाणीवक्षेत्रे जीवांची,
अहंभाव निर्मिला त्यांनी भलावण केली स्वतःची,

त्या उर्जेलाही नसे ठावे की कोण झाले इथे स्वतंत्र,
मीपणातून उद्गमित झाले द्वंद्वांचे पारतंत्र्य,

वस्तू विषय निरखता जीवाने, हे द्वंद्व माजले सर्वत्र,
द्वंद्वाच्या खेळात हे चैतन्य असे केवळ निमित्तमात्र,

शुद्ध-पवित्र असे सदा हि उर्जाशक्ती विश्वाची,
अहंभावाने द्वंद्व उभारता वाटे प्रदुषित ती झाली,

इच्छा, वासना, वृत्ती आदी सर्व द्वन्द्वातुनी पातले,
अहंभावावर स्वार होऊनि जिवभावाने माजले,

जन्मजीवनमृत्यू मानिले केवळ स्वत्वभावाने,
सुखदुःख भय चिंतेसह ग्रासिले आभासी तृष्णेने,

स्वत्वभाव उत्स्फूर्त असा बाधतो जाणता-अजाणता,
सुटका केवळ त्याची ज्याने मानिली तटस्थता,

जाता अहंभाव शरण विश्वाला त्या अनन्यभावे,
तेथे मूळ महाउर्जाशक्ती ही विवेकरूपे प्रकटे,

विवेकरूपे कळूनी आले ही माया सर्व शक्तीची,
उपजली तिच्यातुनी जेथे मालकी नसे ती कोणाची,

कोण कुठला तो देह अन कोण कोठला तो अहंभाव,
कोणाची ती इच्छा-वासना अन कोणाचा तो वृत्तीभाव,

कोणाचा तो जन्म आणि कोणाचा तो मृत्यू,
कोणाची ति तृष्णा आणि भय ते कुठले मानू,

अद्वैतरूप ध्यान धरिता आता स्वात्मभाव निमाला,
कोण मग जाईल शरण तेथे त्या महाउर्जाशक्तीला,

मीपणासह शक्तीला त्या जीव सर्वस्व अर्पिता,
प्रकटे अंतर्यामी उत्स्फूर्ततेने चैतन्यासह ती महाउर्जा,

चैतन्य असे ते शिवतत्व अन महाउर्जाशक्ती असे देवी,
शिवतत्व मानुनी गुरु धारण करुया ती महाउर्जाशक्ती,

चैतन्यात लय अहंभावाचा, जीवउर्जा मिळे महाउर्जेला,
तत्क्षणी खेळ हा चैतन्य-महाउर्जाशक्तीचा,
अदृश्य होतसे असा जसा नव्हता कधीच उपजिला.

जे जे भेटे भूत
तेते मानिजे भगवंत
ऐसे सांगूनि गेले ते तुकोबा संत

देखिता पुरुष तत्व ते नारायण पाहती
देखिता स्त्री तत्व ते दिसे भगवती
सर्वांभूती ते परब्रह्म वसती

परि समाज नियम पाळतो वास्तवी
आमुचे मूळ स्वरूप ते झाकूनी
आलो आम्ही अध्यात्म देशीचे रहिवासी

इथे रमलो तुमच्या मुक्कामी
आहोत तुमच्या कृपेचे अभिलाषी
घेतो दर्शन तुमच्यातून ते ईश्वरी

आम्ही तुमचे सेवेकरी
तयार करतो शब्दांची शिदोरी

त्यात चटणी भक्तीची
आणि श्रेयसाची भाकरी

तुम्हा पाणी देतो अद्वैताचे
भरवितो तांबूल संत उपदेशांचे

चला चला हो आमुच्या सवे
ते उतरु घाट अध्यात्माचे

मग दिसेल आमुचा गाव
शून्य असे हो त्याचे नाव

सात्विकतेचे ते रस्ते अन
इमले साक्षात निर्गुण भाव

तेथे भेटविन त्या योग्यांशी
भेदती ते चक्र लक्ष चौर्यांशी

दावतील स्वस्वरूप तुम्हा तुमचे
मिटतिल सर्व भेद तुमचे आमुचे

सुमंगल सुमुहूर्त सौभाग्याचा सुयोगे तो हा आला
चला गाऊ या गं सुस्वरे सप्तपदी ती गाऊ या

प्रथम पदी त्या नववधूने अशी लांगिली ती श्रद्धा,
निष्ठा ठेवली श्रीगुरुपदी त्या भक्ती तिची ही अनन्या
चला गाऊ या गं सुस्वरे सप्तपदी ती गाऊ या

द्वितीय पदी नववधू जीवात्मा ओलांडीती त्या वैराग्या,
योग साधला तिने त्या सर्व इंद्रियांना दमुनिया
चला गाऊ या गं सुस्वरे सप्तपदी ती गाऊ या

तृतीय पदी त्या नववधूने श्वास नामी गुंतविला,
पावित्र्याचा ओघ तो तिच्या तनमनातूनी वाहीला
चला गाऊ या गं सुस्वरे सप्तपदी ती गाऊ या

चतुर्थ पदे त्या नववधूने वळीला दोर दश इंद्रियांचा,
अडकविले शून्यात तयाला समाधिस्थ होउनीया
चला गाऊ या गं सुस्वरे सप्तपदी ती गाऊ या

पाचव्या पदी त्या नववधूने ध्यायिले नाभिमंडला,
परमानंदे उरली ती आता षट्चक्रे भेदूनिया
चला गाऊ या गं सुस्वरे सप्तपदी ती गाऊ या

सहावे पद ते ओलांडण्या पाऊल पुढे ते टाकले,
शून्यत्व ते प्रकटे तिथे साक्षी असे श्री गुरुराया
चला गाऊ या गं सुस्वरे सप्तपदी ती गाऊ या

सप्तपद ओलांडूनि तिने पति परमतत्व ते स्पर्शिले,
अनादिअनंत निर्गुण रूपे ती राहीली होउनीया
चला गाऊ या गं सुस्वरे सप्तपदी ती गाऊ या

आता उमटे स्वर अनाहत शहनाई ती वाजली
स्वेच्छे नांदती जीवात्मउर्जा सवे परमपुरुषाच्या
सुमंगल सुमुहूर्त सौभाग्याचा सुयोगे तो हा आला
चला गाऊ या गं सुस्वरे सप्तपदी ती गाऊ या

नमस्कार,

संत कबीर दासांसह शीख धर्माच्या गुरूंनी व संतांनी जीवात्म्याला वधू आणि परब्रह्माला पतिची उपमा दिली आहे. गुरुबानीमधील “हर प्रभ मेरे बाबुला, हर देवहो दान मे दाजो...” या सुंदर भजनावर आधारित ही रचना आहे. थेट भाषांतर नाही. यात वधूचे बाबा साक्षात श्रीगुरु आहेत हे ओघाने आलेच...

साज शृंगार...

बाबा मी चालले आज सासरला
साज शृंगार हो द्या तुम्ही मजला ॥ धृ ॥

शुभाषिशरुपी कुंकुम तिलक हो लावा
द्या कर्ण फुले जणू मूलमंत्र हरीचा
मंगलसुत्र हार जणू ईशस्तुति सुमनांचा ॥ 1 ॥

ज्योत भक्तीची ती नथणी साजे
काजळ नयनी जणू कवच अभय ते
कंगण चुडा जणू सात्विकतेचा ॥ 2 ॥

द्या महावस्त्र ते वैराग्याचे
लावीन अत्तर तव संस्कारांचे
कमरपट्टा बांधीन षड्रिपु विजयाचा ॥ 3 ॥

श्रीगुरु प्रदक्षिणेचे पैजण अन
घालीन जोडवी विवेकाची
काढीन मेंदी ईशस्तवनांची
माळीन गजरा ईशप्रेमाचा ॥ 4 ॥

निरोप घेते माहेर मायेचा
आनंदाश्रुंनी भिजेल तुमचा खांदा
ध्यास मज लागला माझिया परब्रह्म पतिचा ॥ 5 ॥

बाबा मी चालले आज सासरला
साज शृंगार हो द्या तुम्ही मजला ॥ धृ ॥

ही रचना एक स्वगत आहे. साधनेच्या मार्गावरील एका मुमुक्षुने स्वतःशी केलेला हा संवाद आहे.

रुखसत लेता हूं आज इस जिस्म और दिल से
बस हो गई अब मेहमान नवाजी उनकी

अब अपनी मंजील की ओर चल मेरे मूरीद (साधक)
पहचान हमारी रुहबरुह है जहां की

देख तू मेरे पीर की शोहोरत (ख्याती)
सबके दिल पे राज है, सब कायनात (निर्मिती) है उसकी

उनका खयाल आना यह इनायत (कृपा) है उनकी
इन्तेहायी आरजू रख, रेहमत पानी है खुदा की

महफुज (सुरक्षित) रख बुराईसे तेरे यह नयना दुई
निगाह करना है उनको, पाक हो जिंदगी तेरी

फर्ज कर लो फिक्र दस्त बरदार होने (आत्मसमर्पण) की,
रुहबरुह हो जायेंगे उनसे, मिट जायेगी पेहचान खुद की

या रचनेची संकल्पना श्री गुरु शेख फरीद जी यांच्या "देख बंदे के भाग" या रचनेवरून सुचली. या गुरुंची ही मूळ रचना इतकी आर्त आहे की अंगावर शहारे येतात. <https://youtu.be/YDjdxBfqwww> या लिंकवर अर्थासह मन घट्ट करून ऐकता येईल. हा इथे त्या रचनेचा थेट अनुवाद नाही परंतु त्यांची संकल्पना वेगळ्या पद्धतीने मांडली आहे. इथे कावळ्याला षड्रिपूंची उपमा दिली आहे. आयुष्यभर ते आपली तनमनाची शक्ती वाया घालविण्यास कारणीभूत होतात. शेवटी षड्रिपूंना बळी पडून वृद्धापकाळात मनाची आणि शरीराची शक्ती क्षीण झाली की मानवाला ईश्वरप्राप्ती दुर्लभ होऊ लागते. येथे अशाच एका साधकाला कळून चुकले आहे की आता जे काही उर्वरित जीवन हाती आहे त्या जीवनात हे षड्रिपू त्रासदायक ठरू नयेत आणि ईश्वरप्राप्ती करून घ्यावी. इथे प्रत्यक्ष शरीरावर हा कावळा हल्ला करत नसून तो मनरूपी सूक्ष्म शरीरावर हल्ला करतो आहे असे वर्णन केले आहे.

का रे का रे कागा...

का रे का रे कागा तू टोके मनोशरीर
मी इथे जाहलो अस्थि पंजर पंजर

तुझी बाक काम क्रोध
तुझे पंख मद मोह
तुझे धड लोभ मत्सर
का रे का रे कागा तू टोके मनोशरीर
मी इथे जाहलो अस्थि पंजर पंजर

मनोशरीर एक आधार
ते ईश्वरप्राप्तीचे रे माध्यम
जा रे जा रे कागा तू आता सत्वर
का रे का रे कागा तू टोके मनोशरीर
मी इथे जाहलो अस्थि पंजर पंजर

ठेव ते शिल्लक काही मम शरीर
मनोशरीरे साधून योगीयांचा योग
तयात रे आता मी भोगीन ईश्वर
का रे का रे कागा तू टोके मनोशरीर
मी इथे जाहलो अस्थि पंजर पंजर

111. आझाद जिंदगी

सब कुछ सिखते आये हैं लेकिन न मरने कि कला नही सिखते हम कभी जीवन में...
इसलिये हर बार जिंदगी से हारते हुए आये हैं हम आखिर में...

हर बार यहा मरना पडता हैं जिंदगी को...
तो अब इस तरह जिना हैं की फिर बार बार मरना न पडे जिंदगी को...

अब इस तरह जिना हैं की मरने का अवसर तक ना मिले जिंदगी को...
वह तो चलती ही रहे ऐसे कि जैसे न मरने की कला का प्रदर्शन हो ...

सफलता मिले हम सबको की वह एक दिन मरना ही भूल जाए ऐसे...
के मृत्यू से तो क्या खुद से भी आजाद हो गयी हो जैसे...

112. विवेके जाणीले मी

विवेके जाणीले मी अहं ब्रह्मास्मि
लपेटून देह वैराग्याच्या वस्त्रातूनी
बैसलो आज मनाच्या स्मशानी
जाळीली इंद्रिये ज्ञानाग्नि चेतवूनी
लावियले भस्म भूषण ते सर्वांगी
महामाया आता शून्यत्व तिचे दावी
पलिकडे साक्षात उभी निर्गुण भगवती
मध्ये श्रीगुरु मी शरण त्यांचे चरणी
न्या हो न्या तुम्ही मजला पैलतीरी....

113. तू एक ओमकार...

या विश्वात केवळ दोनच महान तत्वे आहेत , एक चैतन्य आणि एक उर्जा. उर्जेने विविध गुणांच्या सानिध्यात असंख्य स्वरूपे धारण करून विश्व साकार केले आणि त्यामध्ये असलेल्या चैतन्याच्या सहाय्याने आपण काय निर्माण केले ते त्या उर्जेने सजीवांच्या मार्फत समजून घेतले. साधक जेव्हा साधना किंवा उपासना करतो तेव्हा त्याचा अहंभाव किंवा मी पणा त्याच्या निहमी आड येत असतो. हा अहंभाव नाहीसा व्हावा यासाठी तो साधक त्याचे सर्व स्वरूप ईश्वराच्या मालकीचे आहे असे येथे सांगत आहे. ईश्वराप्रती आत्यंतिक समर्पित भाव निर्माण होण्यासाठी तो त्याचे स्वत्वसुद्धा त्या ईश्वराचेच आहे असे नमूद करतो. आणि आता केवळ निमित्तमात्रे साधनेच्या मार्गातून पुढे जात अंतिमतः त्या पुर्णत्वामध्ये पूर्ण म्हणून विलीन होतो.

तू एक ओमकार...

तू एक ओमकार तूची असे तुझी ग्वाही
दुसरा तुझ्याहून मी इथे वेगळा असा नाही

तुझेच हे हात तुजला नमन मी करतो
तुझिया सद्बुद्धीने जीवन तुला अर्पितो

तुझाच हा मी तूचि निर्मिला या देही
तुझिया देह क्षेत्रे निर्गुण मी तुला पाही

तुझेच हे दान धारा अश्रूंच्या लागल्या
चरणी झाला अभिषेक सर्व वृत्ती त्यात वाहील्या

तुझिया स्वस्वरूपे हे स्वस्वरूप मिळाले
आता पूर्णत्वाने येथे केवळ पूर्णत्वची उरले

यह क्यों है जी बिरह बिरह बिरह
ना दिसे मेरा पिता जो है मेरे रहबरुह

बिस्म बिस्म बिस्म जी मै अब भया
मै सोउ बिरथा जो वह जगाने आया

जाना जाना जाना उस को जी अब मैने
जो देखा उसकी दिखाई, की है उसही ने

जिया जिया जिया अब मैं वो हर पल
बणत बनाई उस ने जिसकी इस कल

राखा राखा राखा इस माया मे उसने
देखो मेरे निशाण कही जमिन पे ना अब दिखदे

आओ आओ आओ मेरे साथ आप जी
यही एक रास्ता है भाई नाम जपो जी

रुहबरुह = आत्मरुप

बिस्म = विस्मयचकित

बिरथा = वृथा

बणत = कार्यकारणभाव

कल = कलीयुग

115. तव विन्मुखतेपरि विष चांगले...

गुरु संत कबीर दास जी यांचे “लाग गले सुन बिनती मेरी, करवत भला न करवट तेरी...” हे भजन ऐकल्यानंतर त्यावर आधारीत खालील रचना स्फुरली. त्यांच्या रचनेचे हे थेट भाषांतर नाही. पण त्या भजनाचा संपूर्ण प्रभाव या रचनेमध्ये एक तटस्थ म्हणून मला दिसून आला आहे. मूळ भजन आत्यंतिक प्रभावी, श्रवणीय व समर्पित भावयुक्त असे आहे. गुरु संत कबीर दास जी म्हटले की त्यांची रचना ऐका, अशी वेगळी विनंती करायचीसुद्धा आवश्यकता नाही. त्यांचे शब्दामृत पिण्यासाठी सगळेच उत्सुक असतात. तुमच्यासाठी या भजनाची ही Audio Link ---

https://drive.google.com/file/d/0Bx9BBymNnxQYUjBqZGJFSkxsNm8/view?usp=drive_sdk

तव विन्मुखतेपरि विष चांगले...

तव विन्मुखतेपरि विष चांगले
तुजविण माझा हा प्राण तळमळे ॥ धृ ॥

आत्मभाव तुज चरणी मी वाहे
तव विन्मुखता तरी मज का मारे -१

जन्मोजन्मी तव चरणी मी नित राहे,
काया त्या जाती परि तुज ना अंतरले -२

संत म्हणती तू निर्गुण असे रे
मी ज्ञानांध तुज पाहू कसा रे -३

वास करे तू मम कायेमध्ये
सांग कसे पाहू तुज कोण उपाये -४

विनंती तुज, छाय्या सोडू नको रे
मी अनाथ हा तुजवीण असा रे -५

सोडू ना प्रित किती ते देहांत झाले
तरी मज सन्मुख तू का न यावे -६

लेकरू आता तू दूर ना लोटी

माउली कधी ती निष्ठूर नसे रे -७

द्वैताची माया ही स्वप्न सत्य असे हे
अद्वैताचे मम वरदान तू दे रे -८

मम हृदयाची घालू आर्त तुजला रे
सन्मुख येऊनी मज प्रचिती दे रे
सन्मुख येऊनी मज प्रचिती दे रे -९

तव विन्मुखतेपरि विष चांगले
तुजविण माझा हा प्राण तळमळे ॥ धृ ॥

116. सुंदर हा सारंगपाणि...

सुंदर हा सारंगपाणि हृद मंदिरी वसे,
तो एक मी, ही खूण हो आता पटे ॥धृ॥

काया तू विश्वउर्जा असे ही साक्षात,
महायोगाचे मज तू अधिष्ठान द्यावे -१

अहंभाव निरीक्षक तू अंतर्बाह्य विश्वाचा,
केवळ अद्वैत तत्व इथे तू पहावे -२

मना तू असे ग्राहक जाणिवांचा,
स्वस्वरूपी तू अमन होऊनि राहावे -३

बुद्धीतत्वा तव गति ती अपार असे,
विवेक होऊन मम अंतःकरण व्यापावे -४

ज्ञानेन्द्रियांनो शुचित्व ते तुम्ही साधावे,
पंचसंवेदना-सखींनी त्यांचे मंगल गीत गावे -५

कर्मेन्द्रियांनो तुम्ही एकदेशीय ते व्हावे,
निष्काम ते कर्म सदा हातूनि घडावे -६

श्वासांनो तुम्हा परमात्मविरह कथितो,
व्हा माध्यम करू द्या पार शून्या ते -७

पंचप्राणा तुम्हा असे मम विनंती आर्जव,
सगुणांच्या या देशी ते निर्गुण प्रकटावे -८

अवकाशा मम अस्तित्वाची तुज आण,
निरास्तीत्वाचे मज दान तू द्यावे -९

महाकाल तुम्हा आत्मभान मी अर्पितो,

हे महामायाविणी तव भ्रांतीचा हा घनपडदा,
विनवणी करितो सत्वर गं तो निवारे -११

विनम्रतेने करितो ही विनंती सर्वांना,
व्हा माध्यम जीव-परमात्म मिलनाचे -१२

आता न येई मी पुन्हा गर्भवासी,
ऐसे मी आता श्रीकृष्णरूप व्हावे
ऐसे मी आता श्रीकृष्णरूप व्हावे -१३

सुंदर हा सारंगपाणि हृद मंदिरी वसे,
तो एक मी, ही खूण हो आता पटे ॥धृ॥

117. सखीरी मैं तो शाम की भई री...

सखीरी मैं तो शाम की भई री
उनके सनेह रंग ऐसी मैं रंगी री ॥धृ॥

देखे जो मैंने उनके नयन री
नजर अब मेरी उनकी भई री ॥१॥

जह जह देखू तह तह कान्हा पांऊ री
झांकू अंतर तो उत देखू मुरारीजी ॥२॥

धुन मुरली की सुन सुन रे सखी री
सुदबुध सब यह मैंने खोई री ॥३॥

बिन हरीनाम अब कछु ना सुहावे री
हृद-कमल मेरे एकु गोविंदु विराजे री ॥४॥

मैं भिगी ऐसी जो अमृतधारा बरसे री
गोपालभाव मे आनंद धुंद भई री ॥५॥

सखीरी मैं तो शाम की भई री
उनके सनेह रंग ऐसी मैं रंगी री ॥धृ॥

आपला मी म्हणजे आपले शरीर नाही. काया त्या मी चे व्यक्त होण्याचे अधिष्ठान आहे. त्या कायेचे आपण खुप ऋणी आहोत कारण ती इतकी सर्वोच्च कल्पवृक्ष आहे की साक्षात ईश्वराला भेटवून देण्याची त्या कायेची क्षमता आहे. म्हणून तिला स्वत्वरूपी शिर अर्पण...

मन बुध्दी विवेक आधारा॥
तू काया कल्पवृक्ष स्वरूपा॥

मम काया अपरंपार विश्व उर्जा॥
स्वरूपी तू पावली पंचमहाभूतांच्या॥

ऐसे तूझे बीज ते सूक्ष्म तन्मात्रा॥
विज्ञानाच्याही त्या असती पलिकडल्या॥

विश्व उर्जेच्या अत्युच्च अविष्कारा॥
धारण करीशी साक्षात ईश चैतन्या॥

निर्माण करूनी पंच संवेदना॥
विश्वानुभव मजला तू सादर केला॥

तुझिया आधारे मनबुद्धिविलास॥
उन्नतीचा कळस कलांचा विकास॥

सुख दुःख व्यंग वेदना संवेदना॥
मजसाठी तू केलास गं संग तयांचा॥

सर्व सर्व तू मनोबुद्ध्यहङ्कारा॥
केलेस अर्पण निष्काम भावा॥

पोशिले वाढविले
मज सशक्त केले॥
ईश विज्ञान दर्शन॥
तूचि मज दाविले॥

तुज आधारे साधिले

नाम संकीर्तन भक्ती॥
साधकासी तव आधारे
साधते गं मुक्ती॥

सर्व सर्व मज देऊनि
तू हवन अग्निकांडी॥
जाशील गं काया
पुन्हा तव अद्वय स्वरूपी॥

तू कल्पवृक्ष तुझे
दातृत्व परम निरपेक्षी॥
स्वत्वरूपी शिर वाहतो
तुझिया चैतन्य साक्षी॥

एवढीच माझी विनंती गं
काया तुजपाशी॥
भेटव श्रीरामचंद्र मजला
तव निर्गुण हृदयकोशी॥

119. परब्रह्म मायबाप

परब्रह्म मायबाप पूर्णातिपूर्ण
सदा प्रशांत परमानंदाचे निधान

शून्य अनंत नित्य अति अल्याड
निर्गुण निराकार चैतन्य पल्याड

सगुणाचे मूळ, काळाचा उद्गम
निष्कल आत्मरूप निर्मल विमल

उद्धवली माया परि ब्रह्म निरंकार
अद्वय ते सकल परि द्वैताविष्कार

क्षमतांचे पुंज ते उर्जा शून्य स्वरूप
सूक्ष्म पंचतत्त्व तिथे मायेचा उद्धव

मायेचे अवकाश तृष्णेचे स्वरूप
धरा ममत्व, उर्मी इच्छेचे तोय

षड्रिपू अगन, वाहे चंचल वात
परब्रह्म अधिष्ठान माया प्रपात

मायेचा आभास अति अति वास्तव
सूक्ष्म कणकणांचा केवळ समुच्चय

परब्रह्म पुरुष तिथे प्रकृती मायोद्धव
सत्त्वाचे ठायी त्यांचा विवेक सुपुत्र

विवेके देखिता पूर्ण माया विघटन
दिव्य दृष्टी जेव्हा हृद ईश प्रकटन

निर्भय निःशंक निर्वैर हा विवेक
सदा उदास योग वैराग्य निरंतर

त्यागिता मी पण होई मायेचा क्षय
सकल जीवन ऐसे होतसे निरामय

नाम संकीर्तनी गुंतविली मायेस
स्वतः अभोगी परि भोगतो आत्मरूप

नित्य समर्पणी श्रीगुरु कृपा अपार
ऐसे वर्णिले विवेके विज्ञान ब्रह्मरूप

120. कर्ता नका बोलू...

“मी कोणीतरी विशेष (कर्ता/भोक्ता) आहे” हा आविर्भाव जीवाला घनीभूत करून जडत्व देतो. त्याच्या आतील षड्रिपू त्या घनीभूत सावजाला क्षणार्धात पकडतात. असे कर्ता/भोक्ता या भ्रमाला सहा भ्रम पकडतात. पण आपले आत्मभान हा भ्रम नाही. कारण ते परम तत्व अनिर्वचनीय आहे. म्हणून आत्मभानी “मी” जागृत असेल, त्याला सन्मुख असेल तर त्याला षड्रिपू पाहू शकत नाहीत. षड्रिपूंचे आक्रमण टाळण्यासाठी हाच एक खुप चांगला चकवा आहे. □

कर्ता नका बोलू स्वतःसा॥
नका बोलू हो भोक्ता॥
षड्रिपू इथे टपलेले॥
घेण्यास आपुला ताबा॥ 1॥

आत्मभान अदृश्य ॥
ते सदा षड्रिपूंना॥
गर्वाभिमान पहाता ॥
टाकती अज्ञान बुरखा॥2॥

कर्त्या भोक्त्या जीवाला॥
बांधूनी काळा बुरखा॥
खेचती ते तयाला॥
भ्रमांध कूप पाताळा॥3॥

जाणून घ्यावे जीवनी ॥
की कसा न मी कर्ता॥
समजूनी त्यागावी समज ॥
की आहे मी भोक्ता ॥4॥

सजग सतर्क राहूनी सदा॥
मोजावे एकेक श्वासाला ॥
तिथे “मी” अदृश्य, ध्यानी ॥
स्वात्मभान शून्य आकाशा॥5॥

आचरण करिता ऐसे आता ॥
वायू ना लागे तप्त मायेचा ॥

गुंजन ऐका हो दशदिशांना ॥
जय श्रीरामा जय श्रीरामा॥६॥

शिर ठेवूनी श्रीगुरु चरणा॥
आर्त उठावी हृदयांतरा॥
धावा धावा श्रीरघुराया॥
अद्वैत ते ममात्म दाखवा॥७॥

121. In this so called Human Society

In this so called human society,
My status is said to be the most ordinary.
Oh god, where i am avoided by many,
Your abode in my heart makes me feel heavenly.

In this so called...
Competitive society,
My life is struggling
Without any luxury,
Oh god, i am thankful to your mercy,
I see myself in your chariot
The moment each and every.

No one listens to me
in this so called human society,
As they don't understand my words of witty.
Oh my god, your presence is so motherly,
As I see, only you are willing to hear me eagerly.

In this so called human society,
Many souls delude and establish the duality,
Oh god, as you see the world through me,
Now i see, only you exist everywhere perspicuously.

122. आईचे एक गाव असतं

आईचे एक गाव असतं
पण गावात तिच नाव नसतं

आईचे आई हे एकच व्रत असतं
ते निभावताना तिच भान हरपतं

भान तिचं हरपत इतकं
की विसरते तीच तिचे सर्व विश्व

परिस्थितीचे सर्व घाव
तिजपाशी निष्प्रभ

तरी नाही मिळणार
कुणी माऊलीहून मवाळ

आई समान इथे
कोणीच नाही दुसरं

तिच्या चरणी नित्य
माझ्या श्वासांचे समर्पण

तिची उतराई...
सर्व प्रयत्न निष्फळ

अनसुयेचे ऋणी
अद्याप श्रीगुरुदेव दत्त

123. ऐसे पहाता ते विश्व

क्वांटम शास्त्र आपल्याला असे सांगते की जोपर्यंत आपण एखाद्या वस्तू विषयाला डोळे किंवा मनःचक्षुंद्वारा पहात नाही तो पर्यंत त्याचे अस्तित्व अर्थहीन असते. ज्या क्षणी जीवा कडून पाहीले जाते त्या क्षणी मनरुपी क्षेत्रात त्या वस्तू विषयाला चैतन्या मूळे सार्थ सगुण पण आभासी स्वरूप प्राप्त होते. अद्वैत चैतन्य जिथे पोहोचते तिथे द्वैत निर्माण होते. हीच सती माया. अशा रितीने आपले जीवन हे या आभासी आणि वास्तव या दोन सत्यतांचे व्यवस्थापन होय. हा सर्व mechanism क्वांटम शास्त्र सहज सुस्पष्ट करते. माझ्या मराठी पुस्तकात ते सविस्तर आले आहे. स्वामी निश्चलदास यांच्या विचार सागर रहस्य ग्रंथात सुमारे 200 वर्षांपूर्वी त्यांनीही हेच सांगितले आहे. चांगदेव पासष्टी हेच सांगते. वेदांतही हेच हजारो वर्षांपासून सांगतात. पण मग आपल्या शिक्षण व्यवस्थेत हा वैज्ञानिक भाग का समाविष्ट केला नाही याचे आश्चर्य वाटते. या वास्तव आणि आभासी सत्यतांच्या सीमेवर जे चैतन्य तोच ईश्वर. म्हणून संत जनाबाई श्रीविठ्ठलास "मायेचे कार्टे" असे थोड्याश्या रागाने पण आतील परम भक्तीभावाने संबोधते... अत्यंत विनम्रतेने...

हरएक वस्तू विषयाची
दोन स्थाने असती भिन्न
एक समोर वास्तव भौतिक
दुजे मनोचैतन्यी गुणाभास

विश्वात जे वस्तू विषय
ते ते निव्वळ अर्थहीन
होता चैतन्यातून निरिक्षण
जीवा भासे ते सार्थ सगुण

ऐसे सर्व वस्तुमय भौतिक
ते ते असती अर्थहीन
पाहता क्षणी त्यांना तिथे
मनोक्षेत्री गुण विषयाभास

ऐसे पाहता ते विश्व नित्य
तो पंच तत्त्वांचा समुच्चय
ज्याने बांधीले अर्थार्थी तयांस
चैतन्यात त्या ईश्वर नेमका पहावा

हीच वेदवाणी
हीच संतवाणी
हेच ते विज्ञान
आता विनम्रे सांगती

124. नीर नयनो बहे..

नीर नीर नयनो सदसदा बहे॥
मै चातक हे रसना मुझे ॥
गोविंद गोविंद रस पिलाईए॥धृ॥

रसना = जिह्वा

निकट प्रभू सदा तुम हो हमारे ॥
पर इह घने अग्यान अंधकारे ॥
जाने हम प्रभू तुमको कैसे ॥1॥

कोट अघा आप निसतारे॥
हाथ लिए कर तुम अपने ॥
हमे प्रभू आप भव पार उतारे ॥2॥

अघा = पाप कर्म

कोई नही इह हम है जाने ॥
आंस मिलन की लेके है खडे ॥
हाथ जोड प्रभू हम तुम्हरे दुआरे ॥3॥

तुम किरपाल इक किरपा होवे ॥
श्रीगुरु चरणी हम नीव नीव लागे ॥
जहां वैकुंठ हरि हरि हरि मिले ॥4॥

125. मदमायेचे भव मद्य प्राशुनी

मदमायेचे भव मद्य प्राशूनी
नजर धुंद बेभान विषयांशी
निष्फळ धडपड जीव अज्ञानी

सत्ता महत्ता प्रसिद्धी संपत्ती
तनमन दारा पुत्रपौत्र संबंधी
गर्वाहंकार पोशिला त्यावरी

मानापमान पत प्रतिष्ठेसाठी
उन्माद करुनी अति दुराग्रही
अन्याय करीती निष्ठूर होऊनी

बहु वृत्ती वासना इच्छारूपी
केसांना खेचूनी क्षणोक्षणी
यमदूत जीवा नेती यमसदनी

दे ईश्वरा या जीवा सद्बुद्धी
मदमायेचा प्रभाव जाऊनी
समर्पित होऊ दे मृत्यूपूर्वी

126. जाऊ जेव्हा

जाऊ जेव्हा आपण आपल्या गावा॥
नेऊ सवे परमानंदाचा ठेवा॥1॥

सुफल सौभाग्य व्हावा जन्म आपला ॥
श्रीगुरु चरणी विवेके ठेऊया माथा ॥2॥

शरण शरण तुजला आलो पांडुरंगा ॥
तुझिया कृपे आम्हा तव ध्यास लागला ॥3॥

अणुरेणू कायेचे व्हावे सम आकाशा ॥
भोगण्या तव शून्यरूप याची तनमना ॥4॥

नाद मंजुळ अनहद सर्वांगे नादावा ॥
पाहू हृदयी इथे नीत वैकुंठ सोहळा॥5॥

अति आदरे घेऊ निरोप कायेचा॥
कल्पवृक्ष ती शतशत वंदन तिजला॥6॥

जीवनी या द्वैत संग तुटूनी जावा॥
आत्मभावे एक रंग श्रीरंग रंगावा॥7॥

127. हरी संग

आकाशाहून माझे अनंत अंग सर्वांग ॥
सगुण भोगतो परि न केला त्याचा संग॥

पंचसखी मजवर टाके मायावी बहुरंग॥
खेळ खेळतो माझ्यातून सवे माझा श्रीरंग॥

मी आत्मरूप सदा माझ्यातच मी दंग॥
कधीही ना झाला मज ह्या मायेचा संग॥

परि कोण कैसे हे पहातसे इथून ॥
कर्त्या भोक्त्याचे ऐसे आभासी स्वप्न॥

श्री गुरु चरणी अति विनम्रे शरण शरण ॥
तुक्याची गाथा व्हावी माझा ज्ञानयोग संपूर्ण॥

कृपा व्हावी यावे की ते भान मी अभंग॥
मृत्युंजय होऊनी मिळो सदा हरि-संग॥

128. ਨੀਤ ਨੀਤ ਸ਼ਰਣ...

ਨੀਤ ਨੀਤ ਸ਼ਰਣ ਪ੍ਰਭ ਤੇਰੇ ਚਰਣੀ॥
ਨੀਤ ਨੀਤ ਸ਼ਰਣ ਪ੍ਰਭ ਤੇਰੇ ਚਰਣੀ ॥

ਤੇਰੀ ਬਾਣੀ ਮੇਰੇ ਹਿਰਦੇ ਸਮਾਈ॥
ਤੇਰੀ ਬਾਣੀ ਮੇਰੇ ਹਿਰਦੇ ਸਮਾਈ ॥

ਮੇਰੇ ਰੋਮ ਰੋਮ ਅਮ੍ਰਿਤ ਸ਼ਬਦ ਹੈ ਗਾਈ॥
ਮੇਰੇ ਰੋਮਰੋਮ ਅਮ੍ਰਿਤ ਸ਼ਬਦ ਹੈ ਗਾਈ॥

ਕਰਮ ਕਾਰਣ ਮੇਰੇ ਸਭ ਸ਼ਬਦ ਸਮਾਈ॥
ਕਰਮ ਕਾਰਣ ਮੇਰੇ ਸਭ ਸ਼ਬਦ ਸਮਾਈ॥

ਮਿਲ ਸਤਗੁਰ ਅਬ ਮੈ ਪਾਉ ਰਾਮ ਰਘੁਰਾਈ॥
ਮਿਲ ਸਤਗੁਰ ਅਬ ਮੈ ਪਾਉ ਰਾਮ ਰਘੁਰਾਈ॥

129. फुलांचा रंग तुझ्या

मित्रा फुलांचा रंग तुझ्या...
मम फुलांनी घ्यावा...

सुगंधात तव फुलांच्या,
मम फुलांनी गंध ल्यावा...

तुझ्या निरागस फुलांसंगे,
तयांनी यथेच्छ बागडावे...

दवबिंदू असे कोमल हे,
सवे हलकेच रे झेलावे...

सावलीतून तव फुलांच्या,
तयांनी सूर्याला हलकेच पहावे...

तव पवित्र फुलांसंगे,
तयांनी ईश्वर चरण स्पर्शावे...

झाले निर्माल्य जरी तयांचे,
जिद्दीवर तव फुलांच्या,
तयांनी पुन्हा मातीतून उमलावे...

130. मंगलाहून मंगल

दूर प्रांतातील गुरुकुलमध्ये योग शिक्षण घेणारा एक साधक त्याच्या आईला त्याच्या मध्यावधी प्रगती विषयी कळवितो अशी कल्पना या रचनेची पार्श्वभूमी आहे ...

मंगलाहून मंगल
पहा चहुंदिशी दाटले ॥
शुभ शकुन गं माये
अवघे जीवन जाहले ॥धृ॥

श्रीगुरु पदस्पर्श होता
ज्ञानाने उत्तरी चालविले ॥
विज्ञान अध्यात्म संगमी
न्हावू मज घातले॥1॥

सगुणाच्या कणकणांमाजी
निर्गुण ते जाणिले ॥
मायेनेच मायेला
शून्य चिदरूप तिचे दाविले॥2॥

पाहता रजतम
क्षणात सात्विक ते जाहले॥
मनदृष्टी ती पारसमणी
लाभिली श्रीगुरुकृपेने॥3॥

भ्रमांधःकारी मन मायेशी
विसंवादी जाहले ॥
मम हृदयांतरी "तत्त्वमसि"
अर्थरूपे प्रकाशिले ॥4॥

कर्मी राहूनही मर्म
अकर्माचे म्यां जाणिले ॥
मन सजग सतर्क
जरी भाव नयनी वाहीले ॥5॥

131. राम सांग मज राम ग...

नुकतेच एक अतिसुंदर श्रीगुरुबाणी शब्द ऐकले... *रि माई मोरो प्रीतम राम बतावो॥* त्यावरून हे याची रचना झाली...

राम सांग मज राम गं...

गं मायेऽ राम सांग मज राम गं॥
निमीष एक ना ठरे हे मन॥धृ॥

परम पुरुष ईश श्रीराम रघुराय॥
द्वैताधिन मी माझी मति ही भ्रमित ॥1॥

करुणा निधान हृद दशरथ पूत॥
तृष्णा न जाई मी हा आर्त चातक॥ 2 ॥

प्राणाधार मज नित्य हे पंचायतन॥
कसा पाहू मी श्रीराम कणकणात ॥3॥

मस्तकी गं माये मम तव आशिष॥
पाहीन गं श्रीराम भेटता श्रीगुरुजन॥4॥

132. वर्षाव झाला...

वर्षाव जाहला भक्तीभावसुमनांचा॥
मम हृदयी हो देव श्रीराम प्रकटला॥धृ॥

तुटले बंधन अन तुटल्या शृंखला॥
श्रीगुरुमुखे देव श्रीराम आज पाहीला ॥1॥

समर्पित सदा श्रीगुरु चरणारविंदा॥
तेणे सहजी देव श्रीराम मज दाविला॥2॥

द्वैताचे अधिष्ठान अद्वय ते सदा ॥
अद्वयी पाहीला देव श्रीराम मत्सखा ॥3॥

कारुण्यघन श्रीराम बरसला ऐसा॥
आंस जाणूनी देव अंतरी प्रकटला ॥4॥

इथे कोण उरले ब्रह्मांड शून्यभावा॥
श्रीरामहृदयी आत्मभाव हो विरला ॥5॥

वर्षाव जाहला भक्तीभावसुमनांचा॥
मम हृदयी हो देव श्रीराम प्रकटला॥धृ॥

133. माई मोको होली खेलन की आंस

आज इस पावन होली के अवसर पर यह श्रीमाधव रंग लाया हुं, आप रंग जाओ जी॥

आज इस पावन होली के अवसर पर यह श्री माधव रंग लाएँगी है जी। आप रंग जाइए जी॥

माई मोको होली खेलन की आंस...

॥ माई मेरे होली खेलन की आंस॥

माई मोको होली खेलन की आंस॥

माई मेरे होली खेलन की आंस॥

कहाँ है माधव दुंदुत है उनका दास॥धृ॥

कहाँ है माधव दुंदुत है उनका दास॥

वृंदावन में रंग रंगिला है हर ग्वालबाल ॥

वृंदावन में रंग रंगिला है हर ग्वालबाल॥

कहा छिपा है ना पहचानू मेरा श्रीगोपाल॥1॥

कहाँ छिपा है ना पहचानू मेरा श्री गोपाल॥

बतावो माई कवण रंग से है खेलत शाम॥

बतावो माई कवण रंग से खेलत शाम॥

जो ना कही मैं देख सकू मेरा श्रीमुरार ॥2॥

जो ना कही मैं देख सकू मेरा श्री मुरार॥

ब्रह्मांड लागे जैसे यह सब वृंदावन॥

ब्रह्मांड लागे जैसे यह सब वृंदावन॥

अर लागे कई जनम मैंने गवाये री मात ॥3॥

अर लागे कई जनम मैंने गवाये री मात॥

माई बोली,

ਸ਼੍ਰੀਗੁਰੂ ਹੈ ਰਾਖਾ ਚਰਣੀ ਤਨਕੇ ਲਾਗ॥
ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਹੈ ਰਾਧਾ ਚਰਣੀ ਉਨਕੇ ਲਾਗ॥

ਰਖ ਤਨਮਨ ਤਨਕੀ ਚਰਣ ਧੂਰ,
ਰਖ ਤਨ-ਮਨ ਉਨਕੀ ਚਰਣ ਧੂਰ।

ਅਰ ਛਡ ਸਬ ਕੀ ਤੁਮ ਆਂਸ॥4॥
ਅਰ ਛਡ ਸਬ ਕੀ ਆਂਸ॥

ਹਰਿ ਨਾਮ ਰੰਗ ਰੰਗਾਕੀ ਤੁਮਰੇ ਸਨ ਤਨ ॥
ਹਰਿ ਨਾਮ ਰੰਗ ਰੰਗਾਕੀ ਤੁਮਰੇ ਤਨ-ਮਨ॥

ਤੁਮ ਪਾਕੀਓ ਕਾਨ੍ਹਾ ਤੁਮਰੇ ਹ੍ਰਦਯਾਂਤਰ॥5॥
ਤੁਮ ਪਾਕੀਓ ਕਾਨ੍ਹਾ ਤੁਮਰੇ ਹੀਰਦ ਅੰਤਰ॥

ਖੇਲੋ ਹੋਲੀ ਝਕ ਹਰਿਨਾਮ ਕੇ ਰੰਗ ਸੰਗ॥
ਖੇਲੋ ਹੋਲੀ ਝਕ ਹਰਿ-ਨਾਮ ਕੇ ਸੰਗ॥

ਹੋਲੀ ਤੁਮਰੀ ਖੇਲੇਂਗੇ ਸਾਥ ਤੁਮਰੇ ਸ਼੍ਰੀਰੰਗ॥6॥
ਹੋਲੀ ਤੁਮਰੀ ਖੇਲੇਂਗੇ ਸਾਥ ਤੁਮਰੇ ਸ਼੍ਰੀਰੰਗ॥

ਮਾਝ ਮੋਕੀ ਹੋਲੀ ਖੇਲਨ ਕੀ ਆਂਸ॥
ਕਹਾਂ ਹੈ ਮਾਧਕ ਫੁੰਡਤ ਹੈ ਤਨਕਾ ਦਾਸ॥ਧੂ॥

134. परमानंद प्रशांत पद

नाही चाहत है किछ हम तुमसे हो पंचसखियां ॥
हम बिरकत भयो मन तन धन को है त्यजिया ॥धृ॥

अग्यान अंधकारे उपजी है जो यह माया ॥
सब किछ हो कर भी कोई किछ नहीं पाया ॥१॥

माया का विधी विधान जो जन जाणिया ॥
लागे ब्रह्म सत्य और सब जगत है मिथिया ॥२॥

केवल सत्व स्वरूप जो यह माया को पाया ॥
श्रीगुरुने प्रभू से संतन का मेल मिलाईया ॥३॥

शून्य शिखर पर पूरण पूरण मे जाई समाया ॥
ऐसा निरंजन परमानंद प्रशांत पद है हमे पाना ॥४॥

शब्दब्रह्म है अत मन भावन॥
सत्त्व सत्य का परम निधान॥धृ॥

साधू संत ऋषी मुनी बखाण ॥
शब्दब्रह्म वह परब्रह्म समान ॥1॥

शब्दब्रह्म योग वाक-यज्ञ पठण ॥
मानव का हो सदा सत उद्धारण ॥2॥

शब्दब्रह्म ग्यान अति तेज अगन ॥
उपजे अर्थबोधन मन होई अमन॥3॥

श्रीगुरु कृपा से शब्दब्रह्मामृत मंथन॥
शब्दब्रह्म समाई हो सब पावन पूरण ॥4॥

136. शबद

जीवन मेरा है शबद॥
जीवन मेरा है शबद॥

मेरे प्राण है शबद ॥
मेरे प्राण है शबद ।

मेरी जान है शबद॥
मेरी जान है शबद॥

रोमरोम मेरे कहत है शबद ॥
रोम रोम मेरे कहत है शबद॥

गुरु का प्यार है शबद॥
गुरु का प्यार है शबद ।

गुरु का आशिष है शबद॥
गुरु का आशिष है शबद ।

मेरे गोविंद है शबद ॥
मेरे गोविंद है शबद॥

जय श्रीराम है शबद॥
जय श्री राम है शबद॥

पारब्रह्म परमेश्वर है शबद ॥
पारब्रह्म परमेश्वर है शबद॥

बली बली जाऊँ मैं गुरु चरण शबद ॥
बली बली जाऊँ मैं गुरु चरण शबद ॥

बली बली जाँऊँ मैं गुरु सरन शबद॥
बली बली जाँऊँ मैं गुरु सरन शबद ।

जी सुण यार सखा मित मेरे ॥
सिर है नीत मेरा आगे तेरे ॥धृ॥

राज यहां का मोहमाया सब है॥
दुतिया भाव मन भ्रम भ्रम रोवे ॥
कौन यहां मै-तूं, सब हम एक रे ॥1॥

अजाण मूरख हम अति फिके ॥
कठपुतली हम सब है मिट्टी के ॥
अंतर्यामी इक प्रभु जी खेलत है ॥2॥

श्रीगुरुकृपा हम पर हो जाए॥
अहं सियानप वहां चूर हो जाए ॥
तनमन सब जै श्रीराम हो जाए ॥3॥

138. री माई मोसे हरिहर ना बिसारे

री माई मोसे हरिहर ना बिसारे ॥
अजाण मन प्रभु को ना पहचाने ॥धृ॥

पंचतत मिल सब जगत रंगारे॥
काम क्रोध लोभ है मेरो मन लुटेरे ॥1॥

मिटाए जैसे सूरज सब अंधकारे ॥
कोट किरण से कणकण जो उजले ॥2॥

तैसे जब पांऊ मै श्रीगुरुवर जी मेरे ॥
कोट सूर्य प्रकाश मेरे अंतर उपजिये ॥3॥

गुर किरपाल होवे तो मन जाए ॥
सदा संग रंग मै पाऊ हरिहर से ॥4॥

बली बली जाऊ बली बली बली मै ॥
ना मिले प्रभ तो सिर धडी उतारे ॥5॥

री माई मोसे हरिहर ना बिसारे ॥
अजाण मन प्रभु को ना पहचाने ॥धृ॥

139. चोख प्रचिती

देशील का तुझी रे देवा मला चोख प्रचिती॥
सगुणामाजी तू निर्गुण अशी तुझी ख्याती॥धृ॥

सर्वाभूती विराजे ईश्वर वदिली संतवाणी॥
परि आम्ही अजाण इथे अहं हीच भ्रांती॥1॥

पिंड ब्रह्मांड आहे ही सर्व तुझीच निर्मिती॥
चराचरात असे देवा तुझीच रे वसती॥2॥

थकलो करकरून शुध्द तनमन बुध्दी ॥
कोडे ना सुटे का हे षड्रिपू घात करिती ॥3॥

पहा या पंच संवेदना मजवर जोर करिती॥
तव अद्वैतामृताचा आहे हा सदा चातक मी॥4॥

ज्यांना तू धरिले देवा आपुल्या हृदयाशी॥
धुळ त्या श्रीगुरु चरणांची लावियेली रे माथी॥5॥

आता नको हे भव-फेरे किती करू रे विनंती॥
कापूनिया हे शिर ठेवितो देवा तव चरणी॥6॥

जरी पडेल हा पिंड ना सोडीन तव चरणांसी॥
देशील का तुझी रे देवा मला चोख प्रचिती॥7॥

140. तुकयाची गाथा

अगदी लहान असताना शुक्रवार पेठेतून पायी तळ्यातल्या गणपतीला जाताना एक हात आई धरायची दुसरा हात बाबा. मग गंमत म्हणून मधुनच ते दोघे मला उचलायचे. माझे अधले मधले काही अंतर माझ्या हट्टाने तरंगत पार व्हायचे. असे करत करत आम्ही सारस बागेत पोहोचायचो.

संपूर्ण भारत वर्षातील संत वाङ्मय हे असे आईबाबांसारखे उचलून घेऊन ईश्वरापर्यंतच्या मार्गातील जीवन सहज सुकर सुलभ करते. जीवनातील खडतरता आपल्याला धक्का पोहोचवू शकत नाही.

जगद्गुरू संत श्री तुकाराम महाराज यांचा गाथा असाच अवर्णनीय आहे. आईची मृदुलता आणि बाबांचा कणखरपणा त्यांच्या या ग्रंथातील भाषाशैलीमध्ये प्रतीत होतो.

तुकयाची गाथा...

तुकयाची गाथा हो तुकयाची गाथा॥
स्त्रविले शब्दामृत तिथे टेकितो माथा।।
जगद्गुरू तो ऐसा लिहिता जाहला।।
जगी या दाविला भक्तीमुक्तीचा सोहळा॥धृ॥

मात सरस्वती शब्दरूप जाहली।।
संसार तमा नारायणे वाहिली।।
परमानंदी तुका ऐसा स्थिर हो जाहला।।1॥

अगोचर जरी तो परब्रह्म पुरुष॥
तुकयाच्या ओवीत ऐसा गेला हो रंगून॥
रंगात रंगुनी तयाचा विठ्ठल तो जाहला॥2॥

अंतर्यामी जयाने हा गाथा वदिला॥
हृद कमळी वसेल नित्य स्वर्गीय सोहळा॥
मृत्युंजय होण्या वाचू वेद हा पाचवा॥3॥

141. श्रद्धेच्या पलीकडे...

अश्रद्धा व्यक्ती कोणावरच विश्वास आणि श्रद्धा ठेवत नाही. अंधश्रद्धेचा तर विचारच नको करायला. अंध या शब्दातच सर्व काही आले.

श्रद्धेला मात्र अनेक आक्षेप घेतले जातात. मी श्रीराम अनुभवला नाही तर त्यावर किंवा त्याच्या संगमरवरी मूर्तीवर तोच माझा राम म्हणून का श्रद्धा ठेवावी. समर्थाना श्रीराम भेटले पण तुला भेटले का, आणि त्यांच्या मार्गाने गेले तर तुलासुद्धा राम भेटतील हे कसे. बुद्धीवादी बुद्धीभेद करण्यात चलाख आणि तरबेज असतात. “श्रद्धा ठेवल्याने आत्मबल वाढते आणि सकारात्मकतेने जीवन पार पाडले जाते.” ह्या आपल्या उत्तरावर पण बुद्धीवादी म्हणतात “श्रद्धा ही कल्पनेहून वेगळी नाही. कल्पनेत राहू नका वास्तव काय आहे ते समजूनच जीवन जगा.” बुद्धीवादी आपल्याला निरुत्तर करतात.

श्रद्धा खर्चिक असते. देवदर्शनाला गेल्यावर हल्ली वेगवेगळ्या दरांच्या वेगवेगळ्या रांगा असतात. श्रद्धा आहे असे म्हटल्यावर ती सिद्ध करण्यासाठी रांगेत उभे राहावे लागते आणि पैसे मोजावे लागतात. विश्वासावर तर कधीच पानिपतात गेले. त्यामुळे उंबऱ्याच्या बाहेर विश्वास हा विकतच घ्यावा लागतो. मोल दिले तरच काम होईल म्हणून विश्वास ठेवू शकता अन्यथा बसा वाट पहात.

यासाठी आपल्याला श्रद्धेच्या पलीकडे जावे लागेल. बायकोच्या शेजारी बसून “ही माझी बायको आहे अशी माझी श्रद्धा आहे” असे कोणी म्हणत नाही. कारण अनुभवाला प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त झाले की आपण श्रद्धेच्या पलीकडे सहजच जातो. आपण सर्वसामान्य लोकांना ईश्वराचा असा प्रत्यक्ष अनुभव घेता येणे अशक्य आहे. यासाठी प्रथम आपल्याला ईश्वर हा अमूर्त आहे हे निश्चित करावे लागेल. जसे माझे शरीर मूर्त आणि त्यात राहणारा माझा “मी” अमूर्त अन अदृश्य आहे अगदी तसेच. शरीराच्या खुणेने आपला अव्यक्त “मी” आपल्या आणि इतरेजनांच्या जाणीवेच्या कक्षेत येतो. त्या अव्यक्त “मी” च्या जाणीव कक्षेत आपल्याला अव्यक्त ईश्वराला सुस्थापित करायचे आहे. ईश्वरापेक्षा त्याचा एखादा साक्षात अविष्कार आपल्याला श्रद्धेच्या पलीकडे जाण्यास मदत करेल.

आपण देव्हान्यात देवाच्या मूर्तीकडे ती एक निर्जीव वस्तू म्हणून पाहत नाही. देवाच्या फोटोकडे तो छापील फोटो आहे असे समजून आपण पाहत नाही. आपली ही अद्वितीय मनोकायिक अवस्था आणि तेथे डोळे मिटून घडून आलेली ती निःप्रार्थनेची भावपूर्ण घटना हे सर्व कोणताही materialist स्वतः निर्माण वा घडवून आणू शकणार नाही. खरेतर श्रद्धेच्या पलीकडे गेल्याचा हा ठोस पुरावा आहे. तरीही अधिक शंका समाधानासाठी आपण अजून एक साक्षात दृष्टांत पाहूया. “या अव्यक्त स्थूल पादार्थिक शरीरात चैतन्यासह अव्यक्त सूक्ष्म “मी” त्या शरीराशी एकजीव होऊन कार्यास प्रवृत्त होणे” ही संपूर्ण घटनाच आपण त्यापलीकडील परम शक्तीची आहे असा निष्कर्ष काढू शकतो. कारण भाजीला फोडणी दिल्यासारखे या शरीराची जडणघडण सुरू असताना अमुक अमुक क्रिया करून त्यात तुझ्या “मी” ला आम्ही अमुक अमुक दिवशी प्रस्थापित केले असे कोणतेही तीर्थरूप आपल्या मुलांना म्हणत नाही. म्हणून या निष्कर्षावर श्रद्धा अगर विश्वास ठेवायची आवश्यकता नाही. तसेच आपले शरीर आणि त्यातील अव्यक्त असा आपला “मी” हे साक्षात एकमेवाद्वितीय प्रमाण आहे आणि असे दुसरे प्रमाण या जगात इतरत्र कोठेही नाही, ही काळ्या दगडावरची रेखा आहे. ती परम शक्ती म्हणजेच ईश्वर होय. अशा रीतीने श्रद्धेच्या पलीकडे गेल्याशिवाय आता आपल्याला पर्याय नाही. नाहीतर श्रद्धा आणि विश्वास यांच्या नावाखाली जनसामान्यांची लूटमार सुरूच राहिल.

श्रद्धेच्या पलीकडे जो जाई तो ना कधी कष्टी ॥४॥

अश्रद्ध ते भ्रमिष्ट सापडे श्रद्धेच्या अलीकडे
अंधश्रद्ध ते अज्ञानी तिथे उगा स्वतःला कष्टी
श्रद्धेच्या पलीकडे जो जाई तो ना कधी कष्टी

विश्वास बंधू श्रद्धेचा परि तो असे अधुरा
श्रद्धा न पाही व्यवहार, ती विश्वासा पार जाई
श्रद्धेच्या पलीकडे जो जाई तो ना कधी कष्टी

ठेवीता श्रद्धा तो देवही येतसे भेटी
श्रद्धेसह देवाने निर्मिली अवघी सृष्टी
श्रद्धेच्या पलीकडे जो जाई तो ना कधी कष्टी

परि सांभाळावया श्रद्धा सदा सतर्क हवेत तुम्ही
अन्यथा किती ते भक्त दांभिक आणि भ्रमिष्टी
श्रद्धेच्या पलीकडे जो जाई तो ना कधी कष्टी

एक साधक सच्चा जो आहे सुबुद्ध शास्त्री
श्रद्धा करतो पार घेऊनिया तिला तळहाती
श्रद्धेच्या पलीकडे जो जाई तो ना कधी कष्टी

ऐसी ज्याने ओलांडली श्रद्धेची ती ओटी
पारब्रह्म ते विलसे तयाच्या मनोसृष्टी
श्रद्धेच्या पलीकडे जो जाई तो ना कधी कष्टी

ही थोडी दीर्घ कविता आहे. वेळ काढून वाचायला हरकत नाहीहो . पण आवडेल तुम्हाला नक्की. आपण आपल्याला ज्या मी पणाने जाणतो ते आपण नसून आपण वास्तविक निर्गुण मी आहोत. त्याला अध्यात्मशास्त्रात कूटस्थ मी असे म्हणतात. आपल्या सानिध्यात जो अहं/ मी पणा निर्माण झाला आहे, तो कर्ताव भोगी झाला आहे असे दिसून येते खरे, पण तेही शेवटी आभासी आहे. जोपर्यंत अहं ला त्याची प्रत्यक्ष ओळख होत नाही, तोपर्यंत आभासी सत्यतेला सत्य मानूनच जगावे लागते कारण तो मी पणाच मुळी आभासी आहे. हे असे का? तर इथे काही तरी अघटीत घडले आहे. काय अघटीत घडले आहे? इथे एक चोरी झालीये. आपल्या नकळत आपल्या निर्गुण मी तत्वाच्या सानिध्यात दहा इंद्रियांच्या माध्यमातून विश्व उर्जा तिच्या अभूतपूर्व क्षमतेने आली आणि तिने मी पणाचा सत्य आभास निर्माण केला आभास . कधी सत्य असतो का? थोडे विचित्र वाटेल, पण हे असेच घडले आहे असे अध्यात्म शास्त्र सांगते .आणि भोक्ता यांचा अभिनिवेश घेऊन जीवन जगू लागला तो जीव कर्ता . .पुढची कथा कवितेत नमूद केली आहे

चोरी झाली...

चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्तेची

निर्गुण निर्विकार निराकार आणि
निर्गुण तत्व ते निरहंकार सदानंदी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्तेची

बुद्धिमत्तेच्या सर्वोच्च शिखरावरी
असंख्य अमर्याद मांदियाळी क्षमतांची
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्तेची

बांधुनिया त्या क्षमतांना काखोटी
दहा चोरांची निघाली हो सवारी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

गाठीला तो “मी” इथे त्या दश इंद्रियांनी
धरीले त्याला जाळे क्षमतांचे ते टाकूनी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

तत्क्षणी सळसळे तेथे वीज ही चैतन्याची
जाणीव झाली जीवाला त्याच्या मी पणाची
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

गर्वभिमानाचा कोट मी पणाला घालुनी
जोडीला त्याला त्या भ्रांतीच्या दावणी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

असोनि जग आभासी भासविले ते सत्यची
भागविली भूक त्यांनी आभासी वासनांची
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

मायेत गुंतुनिया थकली दशेंद्रिये ती किती
तरीही अलिप्तची असे सदा तो निर्गुण मी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

पश्चात्तापे अहं तो परिणाम आता भोगी
पळाली दशेंद्रिये मागता लेखाजोखी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

व्याकुळला जीव अन आर्त उठले मनी

मदतीला त्याच्या विवेक येई हो सत्त्वरी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

केली गुरुसेवा अन निस्सीम भगवदभक्ती
वैराग्याची चादर ओढून झाला तो निवृत्ती
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

विवेके जाणीले वेदवाक्य ते “अहं ब्रह्मास्मि”
लपेटला त्याने देह वैराग्याच्या वस्त्रातूनी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

आला तो मी पणा त्या मनाच्या स्मशानी
योगी तो त्या दश इंद्रियांना देतसे ज्ञानाग्री
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

लावियले त्याने भस्म भूषण ते सर्वांगी
महामाया आता त्याला शून्यत्व तिचे दावी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

पलिकडे साक्षात उभी निर्गुण श्रीभगवती
मध्ये श्रीगुरु मी शरण त्यांचे चरणी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

न्या हो न्या तुम्ही मजला पैलतीरी
कळवळे मी आता त्या श्रीगुरुचरणी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची
आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

श्रीगुरुकृपे गेला मी पणा विलयाशी
परमानंदी तो परमानंद होऊनी राहशी
चोरी झाली त्या निर्गुण मी तत्वाची

आज सांगतो कथा त्याच्या बंधमुक्ततेची

एक प्रचंड मोठा भगवदभक्तीचा प्रेममय उर्जा स्रोत गेली शेकडो वर्षे सर्व दिशांनी पंढरपूरला वाहत आहे. ही वैश्विक उर्जा अशी अखंड प्रवाहित होऊन राहणे ही ईश्वराचीच अद्भुत किमया आहे. या वारीचा हा प्रसंग अत्यंत रहस्यमय आहे ज्यामध्ये कोणीही एक असा प्रमुख नसताना, कोणताही आयोजक वा प्रायोजक नसताना, कोणताही वस्तुविषयात्मक फायदा तोटा नसताना केवळ अपरिमित अशा भक्तीच्या आणि देवावरील प्रेमाच्या कल्लोळात ही लाखो वारकर्यांची उर्जा उत्साहात पंढरीकडे वाहत असते.

असे सर्व अभूतपूर्व व अगम्य असेल तर का नाही प्रत्यक्ष देव हा उत्सव पाहण्यास येणार? निश्चितच येणार. त्याच्या प्रत्येक भक्ताच्या दारी जाऊन त्याच्या हाताला धरून त्या भक्तीच्या प्रवाहात तो आणणारच. संतश्रेष्ठ श्री ज्ञानदेव, जगद्गुरू श्री तुकाराम महाराज आणि त्यांच्यासारखे अनेक संत या भक्तांचे वा वारकर्यांचे सर्वोच्च प्रेरणास्थान आहे. त्यांच्या अभंगातून त्या वारकर्यांना या संतांची प्रेरणाशक्ती प्राप्त होते. मग भगवदभक्तीमध्ये लीन झालेल्या अशाच एका भक्ताला त्याच्या दारात आलेले पांडुरंग दिसले नाही तर नवलच. दारी आलेल्या विठ्ठलाला पाहून तो वारकरी म्हणतो...

जाऊ पंढरीला...

माझे बापरखुमादेव आले आले मज न्यायला
जाऊ माहेरी पंढरी; सवे माझ्या अवघा वैष्णवांचा मेळा

मम त्राण ज्ञानदेव अन प्राण झाला अवघा तुका
पहा माझ्यापुढे रखुमाई सवे चाले हा माझा पंढरीचा राया

गे विसरीन मी मजला; संसार खेळ हा घालून पालथा
तो प्रेमवेग भरला अंतर्दामी आता पाय न ठरे धरणीला

काय वर्णू ते पंढरीचे वैभव साक्षात इथे स्वर्ग अवतरला
जे जे मी पाहीन ते तो मज दिसे माझा विठू हा सावळा

शून्यत्वाच्या गाभाऱ्यात चैतन्याच्या प्रकाश पडला
जाईन त्या पंढरी गे जिथे भान नसे मम आत्मभाना

144. विवेक माझा भ्रतार

पती हा केवळ त्याचे नाते सांभाळणारा सर्वसामान्य पती नसावा तर सांसारिक जबाबदारीतून मोकळे झाल्यावर तो त्याच्या पत्नीचा अध्यात्मिक मार्गदर्शकसुद्धा झाला पाहिजे. सांसारिक उपभोगांच्या पलीकडे यशस्वीपणे जाण्यासाठी हे नाते अभूतपूर्व प्रगती करू शकते.

साधक जेव्हा त्याची उपासना करत असतो आणि अध्यात्मिक प्रगती करत असतो, त्यावेळेस त्याचा विवेक त्याला आत्यंतिक मार्गदर्शक ठरतो. जणू साधकाच्या जीवात्मरूपी नववधूसाठी हा विवेक तिचा भ्रतार म्हणून तिला शोभून दिसत आहे. हा विवेक त्या जीवात्मरूपी वधूला श्रीगुरुंपर्यंत घेऊन जातो आणि या मायेच्या पार जाण्यास जीवात्म्याला मदत करतो.

विवेक माझा भ्रतार ...

विवेके केले भ्रतार तेणे मज सद्बुद्धी अलंकृत केले

वैराग्याचा लावियेला कुंकुम तिलक तयाने

जीवन मंडपी शांतीचे शुभ तोरण बांधियेले

सत्याचा रंग खेळला तयाने मन माझे विशुद्ध केले

तटस्थतेचे मज देऊनिया वस्त्र मायेपासून दूर केले

श्रद्धेचा ओलांडूनी उंबरा मज साधनसंसारी रमविले

पेटवूनी सतर्कतेचा दिवा मज सम्यक—शयनी बैसविले

तयाचे केला संग तेणे मज भक्तीरत्न प्रसविले

देवाप्रती उठला कल्लोळ प्रेमाचा मी आनंदाश्रुंनी भिजले

श्रीगुरुचरणी मज वाहीले तयाने तेथे मी माझी न राहिले

आत्मभान हरपता तेथे साधनेत केला सांभाळ तयाने

ऐसा हा विवेक भ्रतार माझा ज्याने मज भवपार उतरविले.

145. संसाररूपी आखाड्यात...

आपण या मायावी दुनियेत जन्म घेतला की आपल्यासमवेत आपली पाच ज्ञानेंद्रिये शरीराच्या माध्यमातून आपल्याला प्राप्त होतात. विश्वाच्या या पाच क्षमता भलत्याच ताकदीच्या असतात. या जीवनरूपी आखाड्यात हे पाच मल्ल दंड थोपटून आपल्याला सतत आव्हान देत असतात. ते आपल्यावर षड्रिपूरुपी डाव टाकून आपल्या नियंत्रणाच्या बाहेर जाण्याच्या प्रयत्नातच असतात. ते आपल्याला दरवेळेस घडून येणाऱ्या संघर्षात नामोहरम करण्याचा प्रयत्न करतात. त्यांना रोखणे वेळप्रसंगी अत्यंत अवघड होते आणि आपल्या शरीर, मन व बुद्धी यामधील शक्तीचा अपव्यय होतो. कधी आपल्याला मान, सन्मान, प्रसिद्धी, संपत्ती इत्यादी तथाकथित वैभवात असल्याचा आभास निर्माण करून देण्यात ही पाच इंद्रिये यशस्वी होतात पण पुढे कोणत्याही क्षणी एका क्षणात माती चारून आपल्याला आसमान दाखवितात.

अशा या संघर्षमय जीवनात जो ईश्वराप्रती ओढ, भक्ती, उपासना या मार्गे एकदेशीय होतो त्यास निश्चितच ईश्वरकृपेने श्री गुरुंची प्राप्ती होते आणि ते त्या साधकाला मार्गदर्शन करतात. या पाच मल्लांच्या कोणत्याही डावांना निष्प्रभ करून त्यांच्यावर विजय मिळविण्यासाठी हे श्री गुरूच आपल्याला मार्गदर्शन करतात. आणि शेवटी त्या परमात्मा पित्याच्या चरणी आपल्याला समर्पित होण्यास सहाय्य करतात.

या रचनेची संकल्पना श्री गुरु अर्जुन देव जी यांच्या “गुरुमुख लाहा ले गये” या मूळ रचनेवर आधारीत आहे. तथापि हे त्या मूळ रचनेचे भाषांतर नाही. कुस्तीच्या फडाची संकल्पना दोन्ही रचनेत सारखीच आहे.

संसाररूपी आखाड्यात...

संसाररूपी या मायावी आखाड्यात
लावूनिया तू जीवन कुस्तीचे फड
कसा शांतचित्ते तू हा पाहतसी खेळ
ही आता मजवर कशी आली वेळ

कोण कुठला मी असे हा अशक्त
तरी उतरले पाच मल्ल माझ्या विरोधात
हा न्याय असा झाला या विश्वात
पहा ही जीवन कुस्ती लागली या रिंगणात

षट्पुंके डाव टाकूनी मज डोक्यावर घेती

मग उचलूनिया मज खाली टाकीती

शरीर मन बुध्दीला किती हे कुटती

मम प्रयत्नांती तरी त्यांचीच होते सरशी

आता तुझ्यावर मी खिळविली नजर

तू दयाळा कर कृपा आता मजवर

सोडीन प्राण मी तेव्हाच विजयपताका फडकविल्यावर

भेटवि मजला ते पट्टीचे गुरुवर्य सत्वर

देता त्यांनी पाठीवर केवळ एक थाप

पळतील रिंगणातून पंच-मल्ल आपोआप

विजय पताका येता घेऊनिया देवा तव समीप

मग वाहतील गुरु तव चरणी हा मम-आत्मदीप

146. या अनाम गावी...

अस्तित्व नावाच्या या अनाम गावी
कसा आलो इथे कुठून आला हा मी...

वेअंत इथे शृंखला त्याची ही कार्यकारणे
ज्ञानंध मी इथे परिणामांचे कडे चहुकडे

जरी वाटे भोगी कधी ते दुःख इथे मी
परि हात धरुनी पुढे मदमाया मज नेई

पहा सुखाची ती किती विविध दालने
मदमायेने पाजिले मम तृष्णेचे ते प्याले

भ्रांतीच्या भूवर रचुनी इमले वासनांचे
षड्रिपू लाविले कामी रक्षण त्यांचे मी केले

चुकविले असेच मदमायेला त्या एकदा
चाललो दिशा उत्तरेची उजळे अद्वैत-तेज प्रभा

पाहिले तिथे मी ते किती दृश्य विलक्षण
द्वैतावळ होतसे अदृश्य स्पर्शिता श्रीगुरु चरण

स्पर्शिता मी ते श्रीगुरु चरणारविंद
मदमाया झाली स्वप्न पुरे एक तो क्षण

पाहिले दिशा दिशांमध्ये त्या विरल्या
अवकाशाचाही आता वास तिथे नुरला

दाविती मज श्रीगुरु स्वप्नमायेचा आखाडा
तिथे वास्तवाला आधार आभासी सत्याचा

गुणबलांचा समुच्चय कायामन जाणीवक्षेत्र
तीच ओळख मानतसे इथे हा जीव प्रत्येक

विश्वउर्जेतुनी वाहे विविध गुणांचे ते पुंज

वृत्ती-वासनांचे उठे तिथे कित्येक ते झुंड

पाझरे येथे तो डिक इच्छा-ममत्वाचा
ज्यासी म्हणती भ्रांती आभास वास्तवाचा

जन्म जीवन मृत्यू ही तर उर्जा स्थित्यंतरे
त्या अज्ञान वाटेवरती हे स्वप्न सत्य वाटे

ज्ञानदृष्टे श्रीगुरु मज दाविती ते बोलती
कुठे ती मदमाया आता नसे कुठे रे भ्रांती

ऐक एक परब्रह्म असे इथे रे अनंत
त्यात असे शून्यत्व पसरले ते दिगंत

अगणित विज्ञान-क्षमता शून्यात त्या असे
उर्जा आणि गुण असंख्य त्यातुनी ते प्रसवे

उर्जेसवे ब्रह्म तिथे चैतन्य निर्गुण निरहंकार
सगुण विश्वाचे असे ते दोन परम-मूलाधार

ऐसे पाही अनिर्वचनीय विहंगम विश्वदृश्य
जेथे प्रसवे सगुण त्याचा आधार निर्गुण तत्व

साधुनिया केवळ चैतन्य एक ते लक्ष्य
चल ओलांडून जाऊ ते अपार अनंत शून्य

147. नामा तू आमुचा शिंपी

मनोवस्त्र हे बहुरूपी
नामा तू आमुचा शिंपी

शिकवी नामदेवा आम्हा
कसा घालावा हा टाका

कसे जोडावे माझे चित्त
विठ्ठलाच्या रे नामा

संतश्रेष्ठ श्री नामदेवा
तुम्ही लाडके त्या विठ्ठलाला

घालुनी त्याने भक्तीचा डगला
तुम्हा स्वर्ग दाविला आयता

तू दयाळा रे विठ्ठला
तू शिव मला भक्तीचा डगला

ही भक्ती मी वाहीन
होऊन तुज चरणी लीन

तुझी शिलाई मी चुकविन
तुझिया चरणी प्राण अर्पून

तू घट घट वासी, मम हृद निवासी
जेथे मी जाई तेथे मज तू पाही ॥धृ॥

तू बुद्धी प्रकाशी तरी तू ना दिसशी
तुज पाहण्या ती स्वयं अंध अशी ही

चर्मचक्षु केवळ स्थूल ते पाहती
कैसे मी तुज पाहू जरी तू सर्वनिवासी

सिद्ध म्हणती तू वसे मनमंदिरी
त्यातून तू विश्व कसे ते पाहसी

माझे पाहणे ते तू मज पाहविशी
माझे संचित ते तू मज दाखविशी

माझ्या जाणीवा त्या तू जाणविशी
माझे बोलणे ते तू मज बोलाविशी

माझे चित्त जरी तव तेजराशी
तरी मी अंध अजाण स्वस्वरूपी

तू सृष्टीकर्ता तू सर्वस्वव्यापी
परि तूज पाहण्या तू सुध्दा अपयशी

जर मी हा अंध अन तू असा अपयशी
तर आपण दोघे ती एकची रे असती

कैसे हे कोडे तू तुज घालीशी
निर्मुनी “मी” ती माया भोगिशी

तू आणि मी मध्ये ती माया-शक्ती
भेटव गुरु भोगिन अहं ब्रह्मास्मि

तू घट घट वासी, मम हृद निवासी
जेथे मी जाई तेथे मज तू पाही ॥धृ॥

पंजाबी भाषेमध्ये श्री गुरु अर्जन देव जी यांचे “प्रतिपाले नितसार समाले..” हे अतिशय सुंदर भजन असून त्यावर आधारीत ही रचना झाली आहे. तथापि मूळ रचनेचा हा थेट अनुवाद नाही.

या रचनेमध्ये आलेली गरीब, दीन, तिनका, बावळा, मुका, अज्ञानी, पामर, दुबळा इत्यादी विशेषणे पाहून स्वतःबद्दल नकारात्मक भाव निर्माण होतील असे क्षणभर वाटते. देवाने आपल्याला भौतिक पातळीवर असे जीवन दिले आहे की यातील एकही विशेषण या भौतिक चौकटीत आपल्याला लागू होत नाही. पण जेव्हा आपण अध्यात्मिक पातळीवर मनाच्या माध्यमातून देवाची भक्ती करत असतो तेव्हा मात्र त्याच्या अनंत क्षमतांच्या पुढे आपल्याला ही विशेषणे लागू होतात. ही विशेषणे आर्थिक शारिरीक अवस्थेशी निगडीत नाहीत तर ती मनाच्या अवस्थेशी निगडित आहेत कारण मनाने स्वतःच्या क्षमतांची कितीही जमवाजमव केली तरी ईश्वर शक्ती समोर ती कमीच असणार आहे.

प्रतिपालक तू...

प्रतिपालक तू आमुचिया जीवांचा
गरीब आम्ही तू दयाळ दीनांचा ॥धृ॥

अपरंपार तू अंत नसे तुज ठावा
रोमरोमी मम नीज भाव हा उठला

श्रेष्ठ मानी जो हा प्राणी स्वतःला
तू अमाप इतुका जेथे तो एक तिनका

बावळा जीव हा जोखे तुज कृपाळा
परि संकटी देवा तूचि रक्षे तयाला

निर्गुण तू निराकार रे निरंकारा
मी हा असे मुका वर्णना तुझिया

अज्ञानी मी वेग मतीचा आकुंचला
नितनेम आता येई मम आधाराला

म्हणे सिद्ध तू पल्याड आकाशाच्या
पामर मी कसे रे भेदू त्या शून्यत्वाला

तारले तू देवा त्या कित्येक पापियांना
गर्भवासी तू आता न पाठवि मजला

कृपाछत्र तुझे तयात मी हा दुबळा
शेवटचा श्वास माझा चिरंतन व्हावा

150. मन हताश हताश ...

मन हताश हताश तू दिसेना दिसेना
अंतर्बाह्य तू...मी अंध रे तुज पाहण्या

मन हताश हताश तू भावेना भावेना
सगुण माझे भाव न आकळति निर्गुणा

मन हताश हताश तू कळेना कळेना
इथे द्वैताच्या जाणीवा तू पल्याड अद्वैताच्या

मन हताश हताश मी गर्दीत हा एकला
आस तुझी एक काही विचार ना अन्यथा

मन हताश हताश ही कसली परीक्षा
तू अन मी एक परि मध्ये पडदा हा मायेचा

मन हताश हताश तू भेटता भेटेना
कसा भेटशील मला सांग कोणत्या उपाया

मन हताश हताश दिसे सर्वत्र निराशा
होता पूर्ण समर्पण प्रकटे दिव्यत्वाची आशा

मन हताश हताश हा मार्ग सापडेना
कृपा तुझी व्हावी ऐसी मज गुरुराया हा भेटावा

मन हताश म्हणूनि चरणी वाहीले हा माथा
जरी जातील रे प्राण ना सोडील चरणा

मन हताश इथे हा मदभाव आर्ततेचा
तुझे हृदय पाझरु दे.. दे एक घोट अमृताचा

नमस्कार,

मित्राचा त्याच्या स्व. आईसोबतचा फोटो पाहून झरकन काही ओळी सुचल्या. नंतर सगळं थांबलं. काय झालं म्हणून मनात डोकावलो तर तिथे हृदभाव नावाने कोणीतरी शब्दांची आतुरतेने वाट पहात होते. शब्द बहुधा संपत आले होते. जे जे शब्द येत होते त्यांच्यामध्ये एक आदब होती. हृदभाव त्या प्रत्येकाला त्यांच्या जागी आदबीने बसवत होता. पण पुन्हा सर्व थांबले. का? तर शब्द संपल्याने हा हृदभाव इतका आर्त झाला की त्याचे अश्रू झाल्याचे माझ्या लक्षात आले. माझं लिहीणं थांबलं आणि अपूर्णतेची जाणीव झाली. मातृत्वाचे वर्णन करणारे शब्द उपलब्ध होऊ शकणार नाही इतके ते पूर्ण आणि अनंत आहे. ना आई ना लेकरू कोणीच त्या ईश्वरीय मातृत्वाचे वर्णन करू शकत नाही. त्याचा अनुभव घ्यावा आणि तो शब्दातीत असल्याचे समजल्यानंतर त्या हृदभावाने अश्रू रुपाने वहावे अशीच ही विश्व रचना आहे. याच त्या अभिजात अपूर्णतेच्या कोंदणात आईची महती आजपर्यंत लिहीली गेली आहे आणि जगाच्या अंतापर्यंत ही अपूर्णता अभेद्यच राहणार आहे यात शंका नाही.

मां मेरी....

धन धन हुआ मैं मुझे ममता जो मिली तेरी..

भगवान है तू, मुझे अस्तित्व दिया तू मेरी माई

कैसे जाऊं पार उपकार है अपार तेरे

हर जनम मेरा होगा मां तेरी ही गोद में

दर्द ए दिल को कैसे करू बर्याँ जो तू नहीं है अब

इस दुनिया मे बने ही नहीं है कोई ऐसे लब्ज

परवरदिगार तू ही एक जो दर्द जाने है मेरा

बता तू कैसे हैं जिता सिवा मां के छत्र बिना

सिंचू मै तेरी यादे अब आंसूओं की धारा से

छोड़ूं मैं आखरी सांस मां तेरी ही पुकार से

आता लिहवत नाही...

152. तव चरण रज कण ते उठले...

पहा देवा तव चरण रजकण हे उठले
त्यातील कण जणू असे मूळ त्या ब्रह्मांडाचे ॥४॥

जगतो भाव ऐसे, जैसे मीच इथला मालक असे
परि शेवटी हा भाव धुळीस का हो मिळतसे -१

अज्ञानवश ते इमले रचितो इच्छा-वासनांचे
विचारबीजाला अंकुर यावे करुणा, शील अन प्रज्ञेचे -२

मायंध हा असा इथे मी, जीवन जगतो भ्रांतीचे
द्यावी मजला सुबुद्धी अथर्व, जिंकेन शिखर विवेकाचे -३

दिसती मजला द्वंद्व इथे अन भेदाभेद हा होतसे
अद्वैताची ज्योत प्रकटू दे मम अंतर्चक्षुमध्ये -४

गुणावगुणांना येता वेग, कारण-परिणाम ते पातले
शृंखलांना त्या तोडण्या येथे, अध्यात्मिक बल मज दे -५

सगुण मी पाही, परि ना पाही
अशा दिव्य दृष्टीचे मज वरदान तू दे -६

निर्गुण मी पाही अन वर्णन तयाचे करी
अमृत वाणी ऐसी, मजकडून वदवून तू घे -७

वैराग्याच्या क्षितिजावर सात्विकतेचा सूर्य उगवू दे
रज-तमांची वाफ होता, सर्वस्व मम सूर्यस्थ होऊ दे -८

अस्तित्वाच्या क्षमता माझ्या अनंतात अनंत होऊ दे
शून्यमंडळी तिथे लय लयाचा होऊन जाऊ दे -९

पहा देवा तव चरण रजकण हे उठले
त्यातील कण जणू असे मूळ त्या ब्रह्मांडाचे ॥४॥

राजेश भुतकर

153. भवरोग उतारा

कित्येक रोग इथे मारीती शरीरे
परि त्यावर असे औषधांचे उतारे

इथे माझिया मनात हा भवरोग
जुनाट असे हा म्हणती यास भोग

भवरोग होता सदा मी माझे म्हणती
षड्रिपु मला ते किती हो डसती

मी भयभीत लोभी काम क्रोधी
द्वेष मत्सर मज झाली भवभ्रांती

त्यावरी ना कोठे सापडे उतारा
कोणताही वैद्य इथे हो चालेना

मज भवरोग या संसाराचा
त्यावर उतारा प्रभू श्रीराम नामाचा

ठेवता मस्तक देवाच्या चरणी
भवरोग हा जाईल त्या क्षणी

शील ते पथ्य घ्यावे चूर्ण त्या प्रज्ञेचे
साधना असावी जसे काढे करुणेचे

भेटावा मज वैद्य श्रीगुरु ग्रंथरूपी
मिळेल हा उतारा या भवरोगावरती

श्वासातून मी असे जगावे
 जगताना मी मला शोधावे

 श्वासात मी मजला पहावे
 द्रष्ट्यासह दृश्य एक व्हावे

 श्वासांशी मी असे गुज करावे
 बोलणे तिथे ते मौन व्हावे

 श्वासांनी मी मला स्पर्शिता
 मी तिथे अस्पर्शित व्हावे

 श्वासांना मी असे ऐकावे
 कर्ण माझे प्रशांत व्हावे

 श्वासांसह मी गंधित व्हावे
 अमृतगंधी मी धुंद व्हावे

 कुंभकी तुझे ब्रह्मांड वसावे
 रेचकी भोगावे तुझे शून्यत्व साजिरे...

 श्वासांनी मज असे जगवावे
 थांबण्यापूर्वी अमरत्व द्यावे

आपल्या प्रत्येकालाच मी, माझे आणि मला या जाणीवा असतात. कधी कधी ह्या तीन जाणीवा त्यांच्या मर्यादा ओलांडतात आणि आपल्याला संभ्रमात पडायला होते. आपले शरीर ही वास्तव सत्यता आहे तर आपले “मी-माझे-मला” हे अदृश्य म्हणून आभासी सत्यता प्रकट करतात.

निर्गुण उर्जा आणि निर्गुण ब्रह्म यांच्या संयोगातून सजीवांच्या मनामध्ये “निर्गुण मी” निर्माण झाला. ज्याला कूटस्थ असे अध्यात्मात संबोधतात. या “मी” रुपी सर्वोच्च संवेदना जेव्हा चैतन्याश्रित मनाच्या क्षेत्रातून संक्रमित झाल्या तेव्हा तेथे “मी-माझे-मला” हा प्रतिसाद निर्माण झाला. निर्गुण उर्जा आणि निर्गुण ब्रह्म ही दोघे या भौतिक विश्वात अनोळखी किंवा अजनबी आहेत. त्यांचे अधिष्ठान विज्ञान आणि अध्यात्म यांनी अधोरेखित केले आहे खरे पण ते आपल्या सर्व जाणिवांच्या पलीकडे आहेत. ते निर्गुणत्वच खरे तर आपली ओळख आहे.

हे तीन घटक संपूर्ण मायावी द्वंद्वात्मक असा जीवनपट आपल्यासमोर निर्माण करतात आणि तो चालवितात. अन्यथा एका आपल्या चैतन्यमयी निर्गुण व अद्वैत स्वरूपाशिवाय इथे काहीही नाही असे वेदांतामध्ये व सर्व धर्मग्रंथांमध्ये लिहून ठेवले आहे.

आता साधक म्हणून आपणच आपल्याला आपल्या निर्गुण स्वरूपात ओळखून त्यामध्ये स्थिर व्हायचे आहे. त्यासाठी “मी-माझे-मला” हे प्रत्यय शरीर, मन व बुद्धीसह ज्या ज्या घटकांना लागू होतील त्यांना ध्यान यज्ञात आहुती द्यावयाची आहे. या ठिकाणी या तिघांनी निर्माण केलेल्या द्वंद्वातून संघर्षमय असा जो अग्नी निर्माण झाला आहे त्यामध्ये या तिघांना आधारभूत होणाऱ्या शरीर, मन व बुद्धीला समर्पित करावयाचे आहे. त्यातून जो अद्भुत असा प्रकाश निर्माण होईल त्यामध्ये त्या अजनबीला त्याची स्वतःची निर्गुण ओळख होईल आणि पुन्हा तो या “मी-माझे-मला” पासून कायमचा अलिप्त होऊन राहील.

अजनबी...

लगता है यहां कोई अजनबी है भाई
मैं, मुझे और मेरा इनका न है यहां कोई

कहांसे आते हैं तीनो उस अजनबी को हैं चिपकते
खुद ही रचते हैं माया इस अजनबी को नचाते नचाते

करके टुकड़े अब इस अजनबीने उस के तनमन धी के
जलाया उनको इस द्वंद्व की चिता में

इसकी ज्वाला से प्रकाश जो उठेगा
उस ही में इस अजनबी को पहचाना जाएगा

अब इस अजनबी का वही हैं भाई डेरा
जहां न मिलता हो कभी उसे मैं, मुझे और मेरा

ये ग माझी माई तू साक्षात निर्गुण रुपिणी
मी सगुण तुझे स्वरूप कैसे ते जाणी

ये ग माझी माई तू साक्षात शून्यस्वरुपिणी
शून्यातुनी मी उपजे परि शून्य न ते मी जाणी

ये ग माझी माई तू साक्षात सात्विकरुपिणी
रज तमांनी मज केले भ्रांत तुज मी कैसे जाणी

ये ग माझी माई तू सगुणस्वरूप ही मूर्ती जशी
भ्रांतीने हा इथे मी अंध तुज ते कैसे पाही

ये ग माझी माई तव शून्यातून क्षमता त्या प्रसवे
मी असे तव क्षमतांचा पुंज त्या क्षमतारूपे तू प्रकटावे

मी गार्इन ग स्वरूप तुझे, तू वाणी होऊन आली
मी पाहीन ग स्वरूप तुझे, तू दृष्टी होऊन आली
मी ऐकीन ग ऐश्वर्य तुझे, तू कर्ण होऊन आली
मी स्पर्शिन ग तुझिया चरणा, तू स्पर्श होऊन आली
तुव पूजा असे परम सुगंधीत, तू गंधीत अशी झाली

जे जे मी अनुभवी विश्व बाह्यांतरी
त्याचे मूळ असे ग निव्वळ ते निर्गुणी

गुणसंक्रमण होता तव उर्जेतुनी
ते ते भासे ग मला असे हे सगुणी

ऐसे आता मी अनुभवे तव विश्वाधिष्ठान ते निर्गुणी
कृपा तू केली मजवर दिली मज ही दिव्य ज्ञानदृष्टी

ऐसी या अपूर्व क्षमतारूपे तू नित्य वसे या मनी
भ्रांतीचे करण्या निर्दालन माई तू झालीस भवतारिणी

दे मजला वरदान असे मन ते सात्विक होई
दे मजला वरदान असे ते शून्यत्व प्रकटे मम कायी
दे मजला वरदान क्षणी एका निर्गुणची व्हावे मी

तुझेच मी स्वरूप असे ही जाण राख माझे मनी
तुझिया स्वरूपे मिलन व्हावे माझे ग या जन्मी

उत्तरेकडील श्री शेख फरीद जी, श्री गुरु कबीरजी, श्री अर्जुनदेव जी, श्री गुरु नानक जी अशा अनेक संतश्रेष्ठांनी जीवात्म्याला नववधू आणि परब्रह्माला पतिची उपमा देऊन अनेक उत्तमोत्तम रचना केल्या आहेत त्याच धर्तीवर ही एक लहानशी .रचना झाली.

कन्यादान...

श्रीगुरु माझी माता श्रीगुरु माझे पिता
तव कृपाशिर्वच द्यावे माझ्या ह्या सौभाग्या |धृ|

शुभकार्य हे विश्वरचित ती माझी गती,
तव कृपा होता होतील परब्रह्म माझे पति,
तुम्ही मिटवा माझ्या या प्रदीर्घ पतिविरहा- |१|

ना वर्णन असे ना चिन्ह अलेप्य माझा पति परमेश,
तुम्ही द्यावी मज अद्वैतदृष्टि अशी ती विशेष,
त्या निर्गुण ज्योतीने मी पाहीन परमात्म्याला |२|

किलमिश ते जावे जन्मजन्मांतरीचे,
निर्मल व्हावे मन त्यात आत्मबिंब उमटावे-,
तुम्ही सहाय्य करा माझे या अध्यात्म शृंगाराला-|३|

द्यावे मज महावस्त्र ते प्रखर वैराग्याचे,
द्यावे मज ते अलंकार अष्टसात्विकतेचे,
लावा कुंकुम तिलक मज हा सदसदविवेकाचा |४|

मज हाती रंगवा मेंदी ही कारुण्याची,
शीलतेचे काजळ व्हावे शोभा या नेत्रांची,
द्या मज हाती ती प्रज्ञास्वरूप वरमाला |५|

चालेन मी आता भावभक्तीची ही सप्तपदी,
समर्पित व्हावे सर्वस्व या शुभ लग्नवेदी,
व्हावे कन्यादान माझे त्या अविनाशी ईश्वराला ।६।

158. अंतर्बाह्य मी व्हावे आकाश...

अंतर्बाह्य मी व्हावे अवकाश, अदृश्यति तिथे सकल भवपाश
आकाशा तू असे जरी सर्वव्याप्त, तुझ्यासवे मी व्हावे सर्वालित

(सर्वालितसर्वाहून= अलित)

स्फुल्लिंग तुझे ते अद्वैतानंत, माझ्यातून ते मज व्हावे प्रतीत
आकाशा तू असे पूर्णत्वाचे उपाधिक, ना काही कधी त्यातून होतसे उणेअधिक-

शून्यत्वाचे तू असे परम निधान, त्या शून्याचे मी व्हावे रे विधान
तुझिया गर्भी होई चौघांचा विस्तार, आता माझ्यातून त्यांनी तुज करावे साकार

(जल वायू अग्नी आणि पृथ्वी ही चौघे अवकाश शून्यातून निर्माण होतात अशी वेदवाणी आहेअवकाश हे .
(.अनंत क्षमतांचे उर्जा क्षेत्र आहे हे आता क्वांटम शास्त्र सिद्ध करते

रचावी त्यांनी योगसाधनेची पायरी, काया माझी व्हावी तुझ्या शून्याची उंबरी
"ओलांडूनी तुझी शून्याची उंबरी, आत्मराज पाहे स्वस्वरूप परब्रह्माच्या उदरी"

- ऐसी आहे अक्षय्य ती संतांची वाणी, शोभतील आत्मराज ते निर्गुणाच्या कोंदणी
ऐसे जी सहाय्य तू करावे मज आता, प्रसव तू मज तूझ्यातून तूचि माझी माता

159. जगद मिथ्या...

मृग सापडे फास्यामध्ये
तळमळे तो अति आकांते

तैसे अडके जीव भवबंधने
भ्रांतिच्या या फसव्या फासे

जलविना ती मासोळी मरे
ती ना जगे कोणत्या उपाये

तैसे जीव क्षणोक्षणी मरे
श्रीगुरु ना तयाला जर कुठे दिसे

जे मन चाखेल संतरसामृत
श्रीगुरु तयाला भेटी निश्चित

भेदतिल ते रहस्य आपुले
मायेत दाविती ब्रह्म एकले

पडतील गळून भवबंधन फास
होईल जीवन जगदाभास

जीवन उद्दिष्ट इतुकेच असे
"जगद मिथ्या ब्रह्म सत्य" जाणणे

मिथ्या = अनिर्वचनिय = सत-असत असे एकाच वेळी प्रकटते.

भेटल्या एकदा श्रुती आणि प्रज्ञा
भाव तिथे माझा नतमस्तक झाला

साक्षी ठेवून शून्य अवकाशाला
म्हणाल्या चल मांडू तुझा लेखाजोखा

जोपर्यंत तुझ्यात आहे तू तुझा
तोपर्यंत लागू हा तुला तुझा लेखाजोखा

म्हणाल्या ओळख तुझी लिही जरा
ही काया माझी हा मी माझा

चूकलं काही याची जाणीव झाली मला
दोघींनी पाहीले विस्मये वदल्या त्या मला

क्षमतांचा पुंज असे तुझी काया
त्यात ही अदृश्य मनरूपी उर्जा

गुणांचे संक्रमण या उर्जेतून होता
पहा कशी प्रकटे ती आभासी सत्यता

जाणीवांचा ओघ तू हा तुझा कसा मानला
मालकीचा भाव हा कोटूनी तू आणला

वदल्या पुन्हा त्या दोन्ही माता
अरे तृष्णा तर सोड मृगजळ पण नाही उपमेला

भ्रांतीतून तू स्थापिले या तव विश्वाला

अनाथ रे आहे भाव ते "मी माझे अन मला"

इच्छा वासना आकांक्षा या तर निव्वळ कल्पना
वृत्ती प्रवृत्ती निवृत्ती तर कधीच नाही निपजल्या

मानिले तू सत्य आभासी त्या षड्रिपुंना
संघर्ष करण्या इथे जुंपले तू विश्वक्षमतांना

अरे काहीच इथे घडत नाही पहा ना तू जरा
कसा आम्ही मांडू तुझ्या भ्रांतिचा रे लेखाजोखा

दिग्मुढ मी होता त्या म्हणाल्या पुन्हा
प्रस्थापित कर त्या सुसंवादी भ्रांतिला

जाणून घेशी जर तू तुझ्या आत्मतत्वाला
तू असून नसशील इथे ही भवबंधने भोगायाला

अरे स्रोत तू निर्गुण चैतन्याचा
चिरंतन तू पुतळा अद्वैताचा

चल नेऊ आम्ही तुजला
त्या श्रीगुरु परमपदाला

जाणशील तिथे तू अक्षय्य अद्वयाला
जीवन अन मृत्यू तटस्थतेने पहायला

161. जन्मों का प्यासा...

जन्मोंका था मै जो यह प्यासा,
गोविंद नाम मिला इक अमृतसा

नाम हरि का जो परमानंदसा,
मिटे सब द्वय नासे विश्वाभासा

वेदन-संवेदन अब एक सपनासा,
वासन-वृत्ती सब लागे अल्लूतसा

भाव-भगतसे होवे पार श्रद्धा विश्वासा
तेरा नाम जैसे श्रीसद्गुरु का दिलासा

हरीनाम साक्षात जो स्वरूप अद्वयसा,
मंगलमय वाणीसेही वह होवे अपनासा

देखा देखी विश्व की जो खेल इक घडीसा,
सगुण निर्गुण आगे, पीछे तू चैतन्यसा

सहेज सुलभ उपजे इक मनो-अभिलाषा,
मै ना रहू कही जो इस हृद प्रकटे तू सांचा

162. ओढी जो चुनरी...

ओढी जो चुनरी श्रीराम नाम की,
माया से अब मै ना होऊ री मैली...

भावभक्ती से बनी उसकी बुनाई सत्व की,
निःशंक निर्भ्रम और निर्भय मैं भई री...

दाग ना लगगे कभी ऐसी है यह चुनरी,
जीवन अब सब हैं श्रीराम की मरजी...
(मरजी (मर्जी =

श्रीराम प्रेम से वह इतनी रंगीन भई री,
उस प्रेम रंग मे अब रत जाऊ मै कितनी...

सुदबुध इस मन की सब बिसर गई री,
कौन हुं मैं अब तू बता रे सखी री...

परमेश्वर खुद उनका हैं विरद राखे जी,
सांस सांस प्रतिपाल श्रीराम करे जी...
(विरद ब्रीद =, वचन(

चरणधूल पाने उनकी, मैं वारी जाऊ री
मैं वारी जाऊ री लख लख लख बारी जाऊ री
(लख बारी (वेळा लक्ष =

पारब्रह्म अब प्रकटे...
वह मेरे हृदयनिवासा है जी...
वह मेरे हृदयनिवासा है जी...

163. प्रतिपाले तू...

प्रतिपाले तू दीनदयाला
तेरा ब्रीद है राखे जय श्रीरामा

सांस सांस से तू दिये हम प्राणा
उस सांसोंमे तू है बसा श्रीरामा

चौगिर्द हमारे है श्रीराम जयकारा
तेरी हथेली हमे तू राखे है श्रीरामा

निर्भय किया तुद दर्शन जो पाया
सहेज आनंद जो हृद से हैं उपजा

इस मनतनधन का तू है इक स्वामी
चरणकमल पर तेरे मैं मेरा सब अर्पि

164. या स्वरांनो आर्त व्हा...

वाहतो तुम्हा आत्मभान ते माझे
जा स्वरांनो ईश्वरा ते पोहोचवा
या स्वरांनो आर्त व्हा ती ऐकवा त्या ईश्वरा

अद्भुत नाद जणू झरे अमृताचे
नादमाधुर्य तुमचे द्या मम गळा
या स्वरांनो आर्त व्हा ती ऐकवा त्या ईश्वरा

सूर, लय अन ताल मज द्या
आलापी घेऊन सहज समेवर येऊ द्या
या स्वरांनो आर्त व्हा ती ऐकवा त्या ईश्वरा

राग रस माझ्या संगीत साधनेचा
वाहू द्या ओघ मम भावभक्तीचा
या स्वरांनो आर्त व्हा ती ऐकवा त्या ईश्वरा

स्वर-दृष्टी द्या स्वर-शक्ती द्या
अध्यात्माची मज तुम्ही शांती द्या
या स्वरांनो आर्त व्हा ती ऐकवा त्या ईश्वरा

श्रुती जणू या नादीनी ईश्वराच्या
बरसा अमृतधारा होऊन स्वरांच्या
या स्वरांनो आर्त व्हा ती ऐकवा त्या ईश्वरा

नादबिंदूच्या पल्याड तिथे त्या
मज भेटवा हो त्या निर्गुणा
या स्वरांनो आर्त व्हा ती ऐकवा त्या ईश्वरा

तुझे एक नाम असे माझा प्राण
सर्वस्व तुज वाहिले ठेवुनी मनी ही जाण

आता नको विश्व-क्षमतांनो तुमचं हे प्रकटन
नको पुन्हा इथे या जीवाचं येणं-जाणं

आले हे मध्यान्ह आता, हा जीव ठेवतो गहाण
देवा तूच कर चिंता माझी, तुझीच तुजला आण

तू माझा मान देवा तू माझा सन्मान
तुझ्या कृपेनेच देवा होते तुझे ध्यान

रात्रंदिन आता देवा तुझेच रे स्मरण
हृदयात काही नाही, शिवाय तव स्फुरण

दे तव भक्तीचे वरदान, होईल मज आत्मज्ञान
संतांचा हा अनुभव, सांगे मज ते ग्रंथ-वचन

होऊ दे तुझी पंचतत्वे या देहात सु-प्रमाण
तुज भेटण्या देवा हेच असे उत्तम साधन

घालव घालव जन्मजन्मांतरीची भूक-तहान
अमनाच्या सिंहासनी तू होतसे विराजमान

चेतव वैराग्याची ज्वाला घडू दे योगाचरण
इच्छा-वासना-अहं-दुर्मतीचे जाळीन रे सरण

करुनिया ते भव-भाव-भस्माचे विलेपन
या देहामध्येच तुजला मी विदेही भोगीन

तुझे अद्वैतरूप पाहण्या उघड माझे हे नयन
अमृतवर्षाव होऊ दे, पाहता तुझे रूप निर्गुण

होईल जरी देहावसान, मी ना सोडू तव चरण
धाव धाव वेगे आता...
मी तुजला शरण देवा मी तुजला शरण...

नाम ज्याचे ओठी, तो असे भाग्यवंत ॥
जीवन त्याचे चालवी, तो सखा भगवंत ॥

नाम ज्याने ध्यायिले, तो मनुष्य गुणवंत ॥
इच्छा वासनांचा त्याच्या, आपोआप होतसे अंत ॥

नको आता कुबड्या, श्रद्धा अन विश्वासाच्या ॥
देखियेला अंतर्बाह्य, श्रीराम तो रोकडा ॥

ईश्वर चरणी ज्याने, अहं त्याचा वाहीला ॥
निर्गुणत्व अनुभवे, तो सगुणांचा पुतळा ॥

कुठला योग अन, कुठली ती समाधि ॥
तव स्मरण नित्य असे, दाटे अद्वैत रोमरोमी ॥

सरली अमृताची मोहिनी, नासली मरणाची ती भिती ॥
देही असूनी विदेही, साक्षात तो चैतन्य भोगी ॥

विश्वांतर्बाह्य तू भरला, अगम्य तू अगोचरी ॥
जिथे जिथे मन जाई, तिथे तू आधिच असशी ॥

श्रुती म्हणती तू, अकर्ता अकर्मी परि ॥
तूच घेई तुझे नाम अन, तूच तुझ्यातून असा प्रकटशी ॥

167. करु तुझे गं ध्यान...

करु तुझे गं ध्यान भगवती करु तुझे गं ध्यान,
दे मजला तू विमल बुद्धी अन सकल ज्ञान विज्ञान ॥धृ॥

तू क्षमतांचे महाशून्य रुप अन मागे ती निर्गुण,
पाच तत्वे ती प्रसवूनि त्यातून झालीस गं सगुण,

चैतन्य पातूनी शरीरी तू या झालीस विश्वजननी,
बुद्धीशक्तीचे मूळ रुप तू दात्री जाणीवांची,

क्षमतांचा विस्तार पहा ही प्रचिती दिव्यत्वाची,
कारणातूनी परिणामांची ती शृंखला तू निर्मिली,

घे परतुनी भाव माघारी मी मला अन माझे,
जे जे जाणू जाता ते देखिले निर्गुण गे माये,

भूलवती मज ना आता देवी ते तुझे विश्ववैभवं,
स्फुरतो तव प्रेमानंद त्यास साक्षी ही आसवं,

शरण तुला ही आर्त घालतो मम हृदयातून,
शून्यत्व लाभू दे त्या पाचांना या मम कायेतून,

तू कारुण्यसिंधू तू दाव दाव मज तव नीजरुप,
उंबर्यावर तव शून्याच्या मी होईन गं तद्रुप,

करु तुझे गं ध्यान भगवती करु तुझे गं ध्यान,
दे मजला तू विमल बुद्धी अन सकल ज्ञान विज्ञान ॥धृ॥

मन मैला पर आस खरी रे,
तूद बिन प्रभू यह जनम जलील रे...

कितने जनम पटका और धोया,
यह मैल ना अब तक मैने खोया...

मै मनमुख मन की बातों मे आया,
वह गुरुमुख होवे किरपा कर दाता...

यह मन पावन जब रखूं चरण पर,
तब तू आंवे मेरी आस बुझा कर...

ऐसा जो तेरा न्याय कठीण रे,
तू मेरे अंतर पर तूद मै पां ना सकू रे...

सब कुछ तेरा किता यह मैं मेरा कैसा रे,
हे दीनदयाले दाते अब पतीत पुनित सब होवे...

169. शून्यत्व मागतो मी...

शून्यत्व मागतो मी
तव निर्गुण रुप पहाण्या
शून्यत्व मागतो मी ॥ धृ ॥

ती खूण तिथे अशी की
अनहद तो वाजती गं
तव सत्व रुप दर्शन
हा मार्ग मी धरीन

अहंभाव मूक होता
वैराग्य ते भोगीन
अद्वैत रुप तव पाहण्या
दिव्य दृष्टी मज तू दे गं

संवेदिता मनोशरीर
देवी त्यास मी शरण
तो तव विश्वविलास ऐसी
राहू दे मज ती जाण

येथे त्या षड्रिपुंची
ती होऊ दे गं वाफं
मम आत्मभान प्रसाद
तव चरणी ठेवला गं

सगुण तव स्वरुप
कणकणातूनी दिसे गं
कर भस्म सर्व द्वैत
तो जन्ममरणाचा गं फास

शक्ती तुझी ती ऐसी
योगे एकवटीशी
प्रकटव तिथे तू ऐसे
शून्यत्व ते मम हृदयी

श्रीगुरु कृपा ती झाली
शब्दसुमन वाहतो गं
शून्यत्व मागतो मी
शून्यत्व मागतो
तव निर्गुण रुप पहाण्या
देवी
शून्यत्व मागतो मी

राखे तू रहीम कर्ता तू करीम
बक्षे तू बक्षंद दाता तू देहंद

जमिर तू अशर शेख तू दस्तगीर
अंदर बाहर बेशुमार अकाल तू अपार

अलख तू निरंजन कृपा तू जगनमातर
आत्मा तू विश्वंभर प्राण तू हरीहर

चैतन्य तू मनोहर अनादी तू अनंत
निर्गुण तू निराकार

निर्विकार तू निरहंकार जगदपिता परमेश्वर
गोसावी तू फकीर श्रीगुरु तू अपरंपार

पीरांचा तू पीर पाक तू पैगंबर
साधूसंत तू कबीर नारायण तू ज्ञानेश्वर

अल्लाह ब्रह्म एक
आता नुरे कोणता भ्रम

171. बिरहा बिरहा

आज तक हम दिल ढुंडते रहे
अभी अभी कंबखत यही मिला

देखा खोया था कहा
सब सन्नाटा सा मिला

आवाज की दुनिया मे खोनेवाले
यह गुंगे को आसान नही है ढुंडना

आंस देखी उसकी देखी उसकी ओट
जैसे लगी हो उसको कई गहरी चोट

कही आसमान मे था खोया
जहां देखू सब बिरहा बिरहा

मिलाओ परवरदिगार से वह बोला
मिल जाऊ तो तुम्हारा नही तो बिरहा बिरहा

172. नेती नेती...

वस्तु कही हुंडत कही
किस विधी आवे हाथ
कहे कबीर तब पाईए
जब भेदी लीजिए साथ

भेदी = श्रीगुरु

यावरुन सुचलेली प्रार्थना

न इति.. न इति...न इति...

परब्रह्मासी ऐसे बोलली श्रुती ॥ध्रु॥

ध्यान विलय होवो सर्व बुद्धी मती

शून्य व्हावी तिथे माया मनोगती ॥१॥

धरुनिया तिथे श्रीगुरुंनी मज हाती,

दावावे मज स्वस्वरूप त्यांनी अद्वय ते अति ॥२॥

तिथे सगुण निर्गुण अवघे भेद की हो मिटती

मीच भेटावे मजला तिथे ॥३॥

चुको ती फेरी पुनर्जन्माची

ऐसी व्हावी जी करुणा त्यांची मजवरती ॥४॥

मी समर्पित सदा त्या परम श्रीगुरुपदांसी.

मी समर्पित सदा त्या परम श्रीगुरुपदांसी.॥५॥

173. म्या जीवरूप मी ब्रह्मरूप

म्या जीवरूप मी ब्रह्मरूप असा
म्या मायेत गुंते मी तटस्थ सदा

जलात जल वायुत वायू अन अग्नी मिळो अग्निला
रजकण रजात मिळो जैसे हा म्या नसे उरला.

अनंताकार व्हावा तिथे हा मी असा
भोगीन म्या त्या निराकार आकाशा

मी तो असा व्हावा सकल सगुणांचे मूळ
होईल म्या त्या निर्गुण चरणांची धूळ

म्या सरूप परि मी अरूप चैतन्य सदा
माझे सरूप अरूप मिळो एका चिन्मयी ब्रह्मरूपा

मी सकल निधान परब्रह्म स्वरूपाचे
म्या त्या स्वरूपात मजला सहज मिळवावे

म्या सद्गुरु अभिलाष मी बीज विशुद्ध तिथे
इतकीशी ही जाण माझी तिज तुम्ही उजवावे

म्या शरण श्रीरामा निष्फळ ना मी जावा
तूचि सद्गुरूनाथ तूचि उतरव पैलतीरा

174. साक्षी चैतन्य...

माझ्यात इथे प्रसवूनि मला
हा मी श्वास घेतो अनंताचा

माझ्याच प्रारब्धाला मी सामोरा
क्षणोक्षणी असे तो द्वंद्वानुभव माझा

बाहेर वस्तू अन मनात विषय
परि मी साक्षीचैतन्य अन भाव चिन्मय

मीच मला ओळखून माझ्यात मी दंग
मी अरुप इथे परि माया खेळते सरुपरंग

ऐसे जाणता आता प्रारब्ध की हो नासे
प्रसविण्यास मजला पुन्हा तिथे कोणी मी नसे

जाता पैलतीरी तिथे सिध्द योग समाधी
शून्य तिथे निपजे पाच पंचवीसांतूनी

ऐसी पसरता ही शून्याची झोळी
तयात गुरुप्रसाद निर्गुण चैतन्य अद्वयी

175. अनंत अपार या ब्रह्मांडी...

अनंत अपार या ब्रह्मांडी,
कोण झाले हो माझी आई ,

आई होऊनी गर्भी राखिले,
लहानसे कुणी मज अवकाश हो दिधले,

पंचसखींनी त्या अवकाशी,
कसे मज त्यांचे रुपडे दिधले,

पंचतत्वे ही कुणी गुंफिली,
त्यातून जाणीव ती कशी निपजली,

आकाशाच्या निळया मांडवी,
भाव दिगंत मज कोण दाखवी,

स्वेच्छे वावरी मी या अवकाशी,
हे स्वेच्छावकाश हो दिधले कोणी ,

देहामध्ये मन बुध्दी ती विलसे,
त्यांना त्यांचे कुणी अवकाश हो दिधले,

त्या मनो-अवकाशी मज स्वेच्छा आकळे,
हिरीरीने किती मांडू मतमतांतरे,

क्षमतांची हो मालकी कुणाची,
अवकाश स्वेच्छेला दिधले कोणी,

मी सदा पराधिन, तू बंधंद हरी,
तुझ्याच कृपेने तुझे चरण धरी,

176. स्त्रीशक्ती वंदना ...

नको कुणाची दया अन नको कुणाचे दाक्षिण्य
मी सबल झुंजार जणू त्या झाशीचा हा स्कंध

नका बघू मजकडे स्त्री काया म्हणून
मातृत्वाला प्रसवूनि इथे मी पुरुषत्वाला देते जन्म

सहनशक्तीच्या मर्यादा त्या सहजी ओलांडून जाते
नव उत्तुंग शिखर मी त्यागाला दाविते

जिजाऊच्या मातृत्वाला शुरपणाचे तेज
लखलख लखलख तळपली माझ्या शिवबाजी तलवार

मारी क्युरीने पहा केले अणू अणू चे भेदन
मृत्यूला नमवूनी केले तिने मानवाचे कल्याण

सरोजिनी ती लढवय्या पेटविला स्वातंत्र्याचा संग्राम
आंग्ल देशीचे राजे तिच्यामूळे झाले किती हैराण

किती वदावी थोरवी त्या दिव्य मातृत्वाची
अनसूयेने सांभाळली बालरुपे त्रिदेवांची

शक्तीरुपा मी सदा वसते प्रत्येक प्राणीमात्रांत
मी होता शून्य तिथे उघडते मोक्षाचे ते द्वार

177. ज्ञानियाचे चित्त...

ज्ञानियाचे ते चित्त अतिविमल
सदा करुणेचे ते तिथे निर्झर निर्मल
षड्रिपु होती शांत पिऊनी करुणेचे ते जल
कैवल्याचा पुतळा ऐसा धन्य धन्य ते विश्व सकल
ज्ञानियाचे ते चित्त अतिविमल
सदा करुणेचे ते तिथे निर्झर निर्मल
चित्त असावे ऐसे निर्मल
जैसे ज्ञानियाचे ते विमल
करुणेचा तो अखंड निर्झर
तिथे काम क्रोध तृष्णा तिरस्कार
जलपान करीती पहा निरंतर

178. जागला गं जागला...

जागला गं जागला
श्रीराम मनी जागला

भक्तीसूर्य श्रीराम कृपे उगवला
अंधकार बुद्धी मतीचा निमाला

विवेकरूपी नव किरण सोहळा
शांतीस्वरूप मनी प्रकाश व्यापला

मनमायेच्या गं मंदिराला
सदगतीचे तोरण बांधुया

दरवळला सुगंध सुमतीचा
प्रशांत अनंत परमानंद निधाना

पंचसखींनो या गं या
मंगलाचरण ते गाऊ या
श्रीरामनामानंदी जीव हा विसावला

179. रोम है जितने...

मला राग भीमपलासी खुप आवडतो. या रागातील “भज मन नीस दिन शामसुंदर” या बंदिशीवर आधारित.

रोम है जितने...

दे जिंवा उतनी तू प्रभ मेरे
इस काया पर रोम है जितने

बीत गये सब जनम अधुरे
बीन गांवे सब नाम तिहारे ॥ धृ॥

नाम अनंत है गुण से तेरे
नाम मधुर-रस अमृत रस से

नाम रस जब हम तेरा पिवे
तुम को मनमंदिर हम पांवे

उजले मंदिर निर्भ्रम हम होवे
जहां देखू तेरा वैकुंठ पांवे

अनंत अपार तू सकल सुहेले
नामरस रंग रत हो जावे...

दे जिंवा उतनी तू प्रभ मेरे
इस काया पर रोम है जितने

बीत गये सब जनम अधुरे
बीन गांवे सब नाम तिहारे ॥ धृ॥

180. मन पवित्र सुंदर...

श्रीमद शंकराचार्य हे जरी अद्वैत दर्शनशास्त्राचे जनक होते तरी त्यांनी उपदेश-सहस्रीमध्ये असे म्हटले आहे की मन व्हावे तीर्थक्षेत्र आणि तिथे यावे ईश्वर साधूसंत... याच संकल्पनेवर आधारित ही रचना झाली.

मन पवित्र सुंदर सुंदर

मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम
जेथे होतसे मिलन
विवेक भक्ती शक्तीचे
मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम

इथे सृष्टी वैराग्याची
आकाश शोभा शून्यत्वाची
वायूची शांत शीतल लय
अगणित चैतन्य-सूर्य प्रतिदिप्त
मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम

घाट इथले उतरंड द्वैताची
इथे उभी मंदिरे अद्वैताची
मंदिरात मूर्ती स्वात्मभान
इथे सर्व जमती साधूसंतजन
मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम

इथे पूजा जणू असे भक्ती योग
आरती हो ऐसे समाधी ध्यान
प्रसाद श्रीराम जय जय राम
सवे ऐकावा हा नाद अनहद
मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम

इथे परम पुरुष
जो नांदती आत्मराज
जरी अवघे निर्गुण निरंकार
तिथे वाहे परिमल सत्व सगुण
मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम

181. साक्षी चैतन्य

माझ्यात इथे प्रसवूनि मला
हा मी श्वास घेतो अनंताचा

माझ्याच प्रारब्धाला मी सामोरा
क्षणोक्षणी असे तो द्वंद्वानुभव माझा

बाहेर वस्तू अन मनात विषय
परि मी साक्षीचैतन्य अन भाव चिन्मय

मीच मला ओळखून माझ्यात मी दंग
मी अरुप इथे परि माया खेळते सरुपरंग

ऐसे जाणता आता प्रारब्ध की हो नासे
प्रसविण्यास मजला पुन्हा तिथे कोणी मी नसे

जाता पैलतीरी तिथे सिध्द योग समाधी
शून्य तिथे निपजे पाच पंचवीसांतूनी

ऐसी पसरता ही शून्याची झोळी
तयात गुरुप्रसाद निर्गुण चैतन्य अद्वयी

182. अनंत संत अवस्था...

संत श्री कबीरजी यांची निर्गुण भजने खुप भावतात, ज्यात त्यांनी त्यांच्या बंधमुक्त अवस्थेचं अतिशय सुंदर वर्णन केलं आहे. जसे “युगन युगन हम योगी..., सखिया वा घर सबसे प्यारा..., निर्भय निर्गुण गुण रे गाउंगा...” इत्यादी... त्यावर कळस म्हणजे पंडित कुमारजी गंधर्व आणि विदुषी कोमकली यांची सर्वोच्च दर्जाची गायकी... संत श्री गोरखनाथ यांची “शून्य गढ शहर, शहर घर बस्ती...” ही योगी-अवस्थेचे यथार्थ वर्णन करणारी रचना पंडित कुमारजींनी अतिशय खुबीने गायली आहे. त्यांची गायकी आणि या संतांचे अमृतमय शब्द आपल्या मनाला एका वेगळ्याच जाणीवेपर्यंत घेऊन जातात. गुरुबाणीमध्ये तर ही मुक्तावस्था त्या संतांनी त्यांच्या आईला समर्पित करून लिहीली असल्याने अंतर्मनाला खोलवर स्पर्शून जाते. अशा या संत स्वरूपाच्या दिव्य वर्णनातून त्या संत स्वरूपाला प्रतीत करणारे काही शब्द सुचले. त्याचे सारभूत संक्षिप्तपणे इथे देत आहे.

अनंत संत अवस्था...

जे जाणायाचे ते जाणले गं माये,
आता अंतर्बाह्य श्रीराम पाहीले गं माये,

महाकारण ते होऊनी ब्रह्म स्वेच्छे पातले,
आपुल्याच शोधार्थ ते आपणची निघाले,

घेतली त्याने हाती पंचतत्वांची झोळी,
जाणीवांची त्याने मांडीयली गं खेळी,

निमित्त केवळ केले ऐसे सगुण स्वस्वरूपाचे,
षड्रिपु अन वासनांचे सोबत पेव जणू ते फुटले,

आपणची होऊनी श्रीगुरु अन ईश्वर आपणची,
आपणची आपणात जागवी शिष्यत्व जन्मोजन्मी,

श्रीगुरु-कृपे जाणिले ते जाळे हो आभासांचे,
स्थिर केले आत्मभान सगुणातून शून्यामध्ये,

मुक्तीचा हा योगमार्ग संत प्रशस्त करिती,
दोष सर्व दुर्लक्षुनी स्व-आत्मभान जागविती,

आता काया-मन-बुद्धी ते नसे संतांचे सामान,
होते केवळ ते निमित्त जागविण्या स्व-आत्मभान,

अनोळखी झाले भाव मी-माझे अन मला,
जाणीवा त्यागिल्या तिथे, नसे तू-तुझे अन तुला,

बांधिलेली मोट ऐसी आम्ही आमुच्या जीवपणाची,
रचूनिया सरण तिचे तिज आग लावली वैराग्याची,

साधनेत लोपली सिद्धी, साध्य एकत्वाचे साधले,
ब्रह्म देखिले, ब्रह्म ऐकिले, ब्रह्मस्वरूप होऊनी राहीले,

संता नाही त्याग अन नसे कुठे कुणाचा स्वीकार,
संता नाही द्वंद्व कुठे, अद्वयची ते जाहले प्रखर,

संता नुरला काळ, ना आदी, ना अंत,
आता रुप अरुपाच्या पल्याड संत होती दिगंत,

सहज सुलभ इथे योगी नांदती परमानंदे,
कोटी सूर्य तेज प्रशांत संत-हृदयी ते प्रकाशे,

मुक्त केले सुखे संतांनी त्या मुक्तीला,
निर्गुणाकडे नेती ते हा अनिर्वचनियतेचा हिंदोळा.

183. श्रीराम-सीता कर्तव्य दर्शन

रामायणात शेवटी सीतामाई वाल्मिकी आश्रमात जाताना प्रभू श्रीराम लक्ष्मण आणि सीतामाई यांनी दुःखाचे शिखर भोगले. पण कर्तव्य निष्ठा प्रेम विश्वास आणि त्याग यांच्या सहाय्याने ते तिथे विजयी झाले. जनतेसह कोणालाही निदोषी न धरता त्यांनी देवत्वाचा अत्युच्च अविष्कार घडविला. असे हे रामायण निर्दोष न्याय्य पुण्यप्रद महाकाव्य आहे याच विचारातून खालील रचना झाली आहे.

श्रीराम-सीता कर्तव्य दर्शन

हे राज्य रुघुवंशाचे न्यायाचे अन समानतेचे
नच करावा संदेह त्यांचे न्यायदान हो निस्पृहतेचे

वास्तव्य तिथे असे अनेक थोर थोर ऋषींचे
घटना कायदे निर्मिले सर्व ते त्यांच्या आदेशाने

न्यायदान कठोर ते असे आयोध्या नगरीचे
परि कधी न डळमळले ते नृप रुघुवंशाचे

असाच होता कायदा एक अति कठोर
जी स्त्री वसे परगृही ती होतसे सीमापार

नसे चाले तिथे काही साक्षी अन पुरावा
जरी ती असे पवित्र पश्चात त्या घटनेच्या

ऐसे कित्येक झाले न्यायदान त्या दरबारी

साक्षात श्रीरामाची पत्नी देवी सीतामाई
रावणगृही होती राहिली ती असता वनवासी

लंकेत श्रीरामाची झाली द्विधा स्थिती
कैसे मी वाचवू सीतेला जननिदेपासुनी

श्रीराम साक्षी तिथे तिने प्रार्थिले अग्निदेवा
सर्वस्व त्यास करुनी अर्पण, तिने दिली अग्नीपरीक्षा
काय वर्णावे तेज अन पवित्रता सीतामाईची
तेजाळला अग्नी त्यास झळाळी तिच्या पवित्रतेची

अश्रू ना थांबे तिथे कोणाचे लोट हो ते उठले
श्रीराम लक्ष्मण हनुमान सहित विभीषण अन त्याच्या लंकेचे

होता अग्नी-परीक्षा ऐसी सीतामाईची
सीतेसह सर्व परतले, धरिली वाट आयोध्येची

ऐसे सर्व लंकेत घडुनी जे गेले
आयोध्येत ते सर्वतोपरी सर्वांना होते कळले

असेच गेले आनंदात कित्येक महिने आयोध्येचे
परि धुमसत होते तिथे ते सीतेचे स्वगृही येणे

एका बुद्धी चंचल धोब्याचे निमित्त तिथे जाहले
त्यागिले स्वपत्नीला घेउनी नाव सीतामाईचे

आली फिर्याद राजाच्या महाली तिथे अर्धरात्री
धोब्यासह त्याच्या पत्नीने केली न्यायाची मागणी

न्यायदान जाहले अन तो धोबी असा जिकला
आयोध्या नगरीच्या काळजाचा ठोका असा चुकला

श्रीराम रात्रंदिनी रडती किती किती ते हमसुनी
कोणा सांगावे ते दुःख, होणार ताटातूट प्राणप्रियेशी

श्रीराम लक्ष्मणा म्हणाले “मज शब्द न ते फुटती
कसे सांगू त्या अग्निशिखेला तू सोड आयोध्येशी”

“मी राजा आयोध्येचा पाईक न्यायाचा अन समानतेचा
कर्तव्यदक्ष असा मी सदा हा सेवक माझ्या जनतेचा”

“झाले असे कित्येक न्यायदान इथे या दरबारी
परि आता सांगू कसे सीतेला तू परतुनी जा वनवासी”

“मरण यावे आता मी जातो रे स्वर्गाशी
मी ना आता जाईल कधी सन्मुख माझ्या सीतेशी”
लक्ष्मण म्हणे “श्रीरामा पालक अयोध्येचे तुम्ही
तुमचे कर्तव्य केवळ सकल जनांच्या सुखदुःखाशी”

ऐसे बोलुनी श्रीरामाशी नियोजन त्याने केले
वदला सीतामाईशी जाऊ ऋषीघरी वना ते

जाता तिथे वनात जवळी वाल्मिकी आश्रमाच्या
सोडिता सीतेला तिथे जणू आला प्राण कंठाशी त्याच्या

कालांतरे कळले सीतेला तिज श्रीरामाने त्यागिले
राजाच्या कर्तव्यासी तिने असे शिरोधार्य मानिले

जरी ना वदले श्रीराम सीतेला, ठेविले गुपित ते त्यागाचे
सीतेने जाणिले विवेके ते श्रीरामाचे प्रेमच झाले मुके

ऐसा राजा निस्पृह त्याने पाळिली त्याची न्यायसंहिता
जरी त्यास होता अधिकार ती संहिता बदलण्याचा

ऐसी होती राणी सत्वशील देवी सीतामाई
कधीही तिने श्रीरामराजाला धरिले नाही दोषी

साक्षात श्रीराम ते नारायण अन सीता असे ती लक्ष्मी
निर्मिली परिस्थिती कठीण, भोगिली ती त्यांच्या अवतारी

भोगीले त्यांनी दुःख कष्ट, परि न सोडिले कठोर कर्तव्यासी
ऐसे घडविले रामायणासी, ना धरिले इथे त्यांनी कोणाला दोषी

सहजी ते चालले अंगार त्याग स्वसंसाराचा करुनी
सकल जन मानिले जसे लेकरू स्वतःचे त्यांनी

म्हणुनी ते प्रभू श्रीराम अन देवी सीतामाई
त्यांना पूजिले जाते असे अखंड या त्रिलोकी

184. हे ऽऽ गोविंद हे ऽ गोपाऽळ

हे ऽऽ गोविंद हे ऽ गोपाऽळ
करीशी आमुचा तू सदा प्रतिपाळ ॥धृ॥

घनघोर द्वैत देवा ते इथे अंतर्बाह्य
करिशी आमुचा तू तयात सदा सांभाळ
॥1॥

देशी सुबुद्धी तव नामामृत ध्याया
ऐसा असशी तू एक परम दयाळ ॥2॥

नेणले जाणले त्यागिले सर्व काळ
तुजसाठी रे दयाघन तू विश्व कृपाळ ॥3॥

तू बाप विठ्ठल गोविंद वनमाळ
माई रुक्मिणी माऊलीहून मवाळ ॥4॥

संतांनी आखिला हा मार्ग अति सरळ,
पूजीन तुज अर्पूनी अद्वैताची माळ ॥5॥

हे ऽऽ गोविंद हे ऽ गोपाऽळ
करीशी आमुचा तू सदा प्रतिपाळ ॥धृ॥

185. विठुलाने घेतली भक्त पुंडलीकाची आण/ शपथ ...

पंढरी पावन जिथे म्यां देखिला पुंडलिक

त्यावरी मी प्रसन्न माझे बोलले सगुणरूप

"" आत्म हे माझे तुला करावया प्रकट

मज झाले सहायक तुझे मायबाप""

"" तूझी सेवा मी पाहतो डोळे भरून भरून

म्हणूनी युगे अठ्ठावीस मी उभा वीटवर""

"" जिथे पुत्र माने मायबाप मजसमान

उभा मी तिथे मज पुंडलीकाची आण""

186. हीच एक आस...

अंग माझे उर्जा रुप तिचे शून्य
आत ते वसे निर्गुण ब्रह्मचैतन्य

ल्यायले मी विश्व क्षमता वस्त्र
जणू शुध्द सत्वाचे ते सद्गुण

काढूनी बाहेर रज तमाची खडावं
सत्व जलाने गुरु चरण प्रक्षालन

श्रीगुरु चरणी आता हीच एक आस
भेटवावे ब्रह्म करुनी शून्य ते निरास

187. ਸਮਰਥ ਹੈ ਸ਼੍ਰੀ ਨਾਨਕਦੇਵ ਗੁਰਬਾਣੀ,

ਸਤਨਾਮ ਸ਼੍ਰੀ ਕਾਹੇ ਗੁਰੂਜੀ
ਸਤਨਾਮ ਸ਼੍ਰੀ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਜੀ □

ਸਮਰਥ ਹੈ ਸ਼੍ਰੀ ਨਾਨਕਦੇਵ ਗੁਰਬਾਣੀ,
ਸਮਰਥ ਹੈ ਸ਼੍ਰੀ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਗੁਰਬਾਣੀ।

ਜੋ ਗਾਏ ਤਸੇ ਮਾਯਾ ਪਾਰ ਤਤਾਰੀ
ਜੋ ਗਾਈ ਉਸਦੇ ਮਾਈਆ ਪਾਰ ਉਤਾਰੀ।

ਪਵਿਤ੍ਰ ਟੇਜ ਹੈ ਗੁਰੁ ਗ੍ਰੰਥ ਗੁਰਬਾਣੀ
ਪਵਿਤਰ ਤੇਜ ਹੈ ਗੁਰ ਗ੍ਰੰਥ ਗੁਰਬਾਣੀ।

ਜੋ ਨਰ ਸੁਧੇ ਪਾਕਨ ਪੁਨਿਤ ਹੋ ਜਾਈ
ਜੋ ਨਰ ਸੁਣੇ ਪਾਵਨ ਪੁਨਿਤ ਹੋ ਜਾਈ।

ਵਿਸ਼ਵ ਸ਼ਕਤੀ ਯਹੁ ਹਰਿ ਕਚਨ ਗੁਰਬਾਣੀ
ਵਿਸ਼ਵ ਸ਼ਕਤੀ ਇਹੁ ਹਰਿ ਬਚਨ ਗੁਰਬਾਣੀ।

ਜੋ ਪਾਕੇ ਫਿਰ ਭੀਜਲ ਕਬਹੂ ਨਾ ਆਈ
ਜੋ ਪਾਵੇ ਫਿਰ ਭਵਜਲ ਕਦੇ ਨਾ ਆਈ।

ਅਮ੍ਰਿਤ ਸਧੁਰ ਪਾਰਬ੍ਰਹ੍ਮ ਹੈ ਗੁਰਬਾਣੀ
ਅਮ੍ਰਿਤ ਮਧੁਰ ਪਾਰਬ੍ਰਹਮ ਹੈ ਗੁਰਬਾਣੀ।

ਜੋ ਧਿਆਈ ਕਹੁ ਰਾਮਨਾਮ ਸੁਖ ਪਾਈ
ਜੋ ਧਿਆਈ ਰਾਮਨਾਮ ਮੁਖੀ ਪਾਈ।

ਜਿਸ ਦੇ ਸਸਤਕ ਪ੍ਰਭੂ ਸੁਭਾਗ ਲਿਖਾਈ
ਜਿਸ ਦੇ ਮਸਤਕ ਪ੍ਰਭੂ ਸੁਭਾਗ ਲਿਖਾਈ।

ਪਾਕੇ ਅਨਹਦ ਨਾਦ ਪੂਰਨ ਗੁਰਬਾਣੀ
ਪਾਵੇ ਅਨਹਦ ਨਾਦ ਪੁਰਣ ਗੁਰਬਾਣੀ।

ਸਾਂਸ ਸਾਂਸ ਮੇ ਬਸਹੁ ਗੁਰੁਬਾਣੀ
ਸਾਂਸ ਸਾਂਸ ਮੇਂ ਬਸਹੁ ਗੁਰਬਾਣੀ।

ਗੁਰ ਚਰਣ ਸਦਾ ਹੀ ਬਲ ਬਲ ਜਾਏ
ਗੁਰ ਚਰਣ ਸਦਾ ਹਾਓ ਬਲ ਬਲ ਜਾਈ।

188. ਪ੍ਰਭ ਪਾਯਾ

ਪ੍ਰਭ ਪਾਯਾ ਤੂ ਦੇਖ ਸਖੀ ਰੀ
ਚਾਤਕ ਕੋ ਹਰਿ ਬੁੰਦ ਮਿਲੀ ਰੀ
ਪ੍ਰਭ ਪਾਇਆ ਤੂ ਦੇਖ ਸਖੀ ਰੀ ।
ਚਾਤਕ ਕਉ ਹਰਿ ਬੁੰਦ ਮਿਲੀ ਰੀ ।

ਹੁਦ ਆਕਾਸ਼ ਮੇਥਾ ਛਾਯੀ ਰੀ
ਹਿਰਦਿ ਆਕਾਸ਼ ਮੇਥਾ ਛਾਈ ਰੀ।

ਸਾਕਨ ਆਯਾ ਰੇ ਸਖੀ ਰੀ
ਸਾਵਨ ਆਈਆ ਰੇ ਸਖੀ ਰੀ।

ਕਿਰਪਾ ਤਸਨੇ ਬਰਸਾਏ ਰੀ
ਕਿਰਪਾ ਉਸਨੇ ਬਰਸਾਈ ਰੀ। 1।

ਮੈ ਭਿੰਗੀ ਤਸ ਅਮ੍ਰਿਤ ਧਾਰੀ
ਮੈ ਭਿੰਗੀ ਉਸ ਅਮ੍ਰਿਤ ਧਾਰੀ।

ਸੁਦਬੁਧ ਸਭ ਗਯੀ ਰੀ ਸੋਰੀ
ਸੁਧਬੁਧ ਸਭ ਗਵਾਈ ਰੀ ਮੋਰੀ।

ਰੋਸਰੋਸ ਸੇ ਅਬ ਸਗਨ ਹੁੰਦੇ ਰੀ
ਰੋਮਰੋਮ ਸੇ ਅਬ ਮਗਨ ਹੁਈ ਰੀ। 2।

ਪ੍ਰਭ ਪਾਯਾ ਤੂ ਦੇਖ ਸਖੀ ਰੀ
ਚਾਤਕ ਕੋ ਹਰਿ ਬੁੰਦ ਮਿਲੀ ਰੀ
ਪ੍ਰਭ ਪਾਇਆ ਤੂ ਦੇਖ ਸਖੀ ਰੀ ।
ਚਾਤਕ ਕੋ ਹਰਿ ਬੁੰਦ ਮਿਲੀ ਰੀ ।

189. कमल नयन विशाल अतिसुंदर

कमल नयन विशाल अतिसुंदर
माधवा मनोहरा प्रिय तू मुरलीधर

गोविंदा गोपाळा तू यशोदानंदन
बरसू दे श्रीकृष्णा तव प्रेमानंदघन

श्रीधरा पुरुषोत्तमा तू नारायण
राधावर हरी हरी तू मधुमिलींद

तू साकार केशवा परि निराकार
तू विठ्ठल सुकुमार रूक्मिणीचा वर

लक्ष्मीपती तू घननीळ मनमोहन
प्रशांत मुद्रा अर्धोन्मीलित लोचन

संगे शेषनाग तू चक्रधर तू गदाधर
तू अजानुबाहू तूची सकल प्राणाधार

तू जगद्गुरू विश्वंभर मम हृदयनाथ
चरण तुझे देवा मज कैवल्याचे धाम

190. मै चातक जनमों का प्यासा

मै चातक जनमों का प्यासा
पिंऊ हरि बुंद तो मिटे हर तृष्णा ॥धृ॥

ना उठाऊंगा दाना सुख का
देख देख रे दूख अंदर छिपा
मै चातक जनमों का प्यासा
पिंऊ हरि बुंद तो मिटे हर तृष्णा

अब तुम बिन ना कवण हमारा
यह है सब माया भ्रम का पसारा
लिया नाम प्रभु भवभय को नासा
जह देखू तह तेरा दर्स पियारा

मै चातक जनमों का प्यासा
पिंऊ हरि बुंद तो मिटे हर तृष्णा

191. विश्व कणांनो...

क्वांटम शास्त्रानुसार विश्व-उर्जा ही कण व तरंगांच्या रूपात प्रकट होते आणि त्यात जाणीवा निर्माण करून अनिर्वचनीय असा मायावी खेळ खेळते. आता त्या क्षमताधिष्ठित विश्व उर्जा कणांनी मानवी स्वरूपात हे समजून घेतले आहे की इथे आत्मतत्वाशिवाय काहीही नाहीये. ते आत्मभान आता त्या उर्जा कणांशी संवाद साधताना काय म्हणतेय ते इथे काव्यरूपाने मांडले आहे.

विश्व कणांनो...

ध्या परतूनी ध्या परतूनी
प्रकटवलेल्या क्षमता माघारी ।
मी तुमचा आभारी विश्व कणांनो
मी तुमचा आभारी॥धृ॥

दिले सगुणरूप जरी मी असे निर्गुणी
जाणीवा देऊनी केलेत मला साक्षी ॥1॥

तुम्हीच तुमचे असे सुरूप घेऊनी
ओळख दिली मज अहं ब्रह्मास्मि॥2॥

प्रसवूनि क्षमता त्या वृद्धिंगत करुनी
सत्वाचे शिखर ते गाठा हो तुम्ही॥3॥

संत शब्दामृत तुम्ही प्राशन करुनी
मजला हो ध्यानी ती द्यावी उन्मनी॥4॥

सत्वाच्या या पवित्र दर्पणी
माझे पहाणे तयात करा हो तुम्ही ॥5॥

आता झालात श्रीगुरु चरण तुम्ही
माझे स्वत्व सदा तुमचे हो ऋणी॥6॥

खेळ द्वंद्वाचा हा सत्वर मिटवूनी
तुमचे अद्वैत मिळो माझे अद्वयी
॥7॥

ध्या परतूनी ध्या परतूनी
प्रकटवलेल्या क्षमता माघारी ।
मी तुमचा आभारी विश्व कणांनो
मी तुमचा आभारी॥धृ॥

192. प्रार्थना

प्रभुजी हम अमृत के प्यासे
इस प्यास को हम बुझाए कैसे

ऐसी किरपा करो हे दयाल
हमरे मन बसो सदा तुमरा खयाल

अमृत गुरबाणी पियो पियो
मैं मेरा सब जगत बिसराहो

अमृत गुरबाणी गावत गावत
चूँके यमघाट हम प्रभू पावत

...

ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਜੀ ਕਾ ਖਾਲਸਾ॥ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਜੀ ਕੀ ਫਤਹਿ ਜੀ॥

ਪ੍ਰਭ ਜੀ ਹਮ ਅਮ੍ਰਿਤ ਕੇ ਪਿਆਸੇ।
ਹਮਰੀ ਪਿਆਸ ਬੁਝਾਉ ਕੈਸੇ।

ਐਸੀ ਕਿਰਪਾ ਕਰੋ ਹੇ ਦਇਆਲ।
ਹਮਰੀ ਸੁਦਬੁਧ ਰਖੋ ਤੁਮਰੀ ਨਾਲ।

ਅਮ੍ਰਿਤ ਗੁਰਬਾਣੀ ਪਿਵਹੁ ਪਿਵਹੁ।
ਮੈਂ ਮੇਰਾ ਸਭ ਜਗਤ ਹਾਉ ਬਿਸਰਹੁ।

ਅਮ੍ਰਿਤ ਗੁਰਬਾਣੀ ਗਾਵਤ ਗਾਵਤ।
ਚੁੱਕੇ ਜਮਪੂਰ ਘਾਟ ਹਮ ਪ੍ਰਭ ਪਾਵਤ।

193. ਸਮੈ ਰਚਨਾ ਤੇਰੀ...

ਸਭੈ ਰਚਨਾ ਤੇਰੀ ਸਭੈ ਰਚਨਾ ਤੇਰੀ
ਸਮੈ ਰਚਨਾ ਤੇਰੀ ਸਮੈ ਰਚਨਾ ਤੇਰੀ
ਹਾਉ ਬਾਰੀਕ ਮੈ ਹਰ ਬਾਰੀ ਹਾਰੀ
ਹਾਝ ਬਾਰੀਕ ਮੈ ਹਰ ਬਾਰੀ ਹਾਰੀ ||ਧ੍ਰੁ||

ਹਾਝ = ਅਹੰ
ਬਾਰੀਕ = ਕਮਜ਼ੋਰ

ਨਾ ਦਿਸੇ "ਮੈ" ਉਸ ਦੀ ਪਕੜ ਹੈ ਭਾਰੀ
ਨਾ ਦਿਸੇ "ਮੈ" ਉਸਦੀ ਪਕੜ ਹੈ ਭਾਰੀ
ਮਨ ਹੈ ਮਾਇਆ ਮੈ ਕਿਛ ਨਾਹੀ ਪਾਈ
ਮਨ ਹੈ ਮਾਯਾ ਮੈਂ ਕਿਛ ਨਾਹੀ ਪਾਈ

ਮੈ ਕਛ ਨਾਹੀ ਇਹ ਗਿਆਨ ਤੁੰ ਕਰਾਈ
ਮੈ ਕਛੁ ਨਾਹੀ ਇਹ ਗਿਆਨ ਤੂੰ ਕਰਾਈ
ਸਬ ਕਿਛ ਤੇਰਾ ਇਹ ਗੁਰਗਿਆਨ ਤਰਾਈ
ਸਬ ਕਿਛੁ ਤੇਰਾ ਇਹ ਗੁਰਗਿਆਨ ਤਰਾਈ

ਮੈ ਆਕਾਸ਼ ਤੁੰ ਪਰਗਾਸ ਦਿਖਾਈ
ਮੈ ਆਕਾਸ਼ ਤੂੰ ਪਰਗਾਸ ਦਿਖਾਈ
ਆਂਸ ਹੈ ਇਤਨੀ ਤੁੰ ਮਤਿ ਮੋਰੀ ਟ੍ਰਿਡਾਈ
ਆਂਸ ਹੈ ਇਤਨੀ ਤੂੰ ਮਤਿ ਮੋਰੀ ਟ੍ਰਿਡਾਈ

ਪਰਗਾਸ = ਪ੍ਰਕਾਸ਼
ਟ੍ਰਿਡਾਈ = ਟੁੱਟ ਕਰਨੇ

ਮੈ ਮਨ ਮੇਰਾ ਹਾਉ ਬਲਿਹਾਰੀ ਜਾਈ
ਮੈ ਮਨ ਮੇਰਾ ਹਾਝੁ ਬਲਿਹਾਰੀ ਜਾਈ
ਕਰ ਕਿਰਪਾ ਪ੍ਰਭ ਤੁੰ ਮੋਰੀ ਲਾਜ ਰਖਾਈ
ਕਰ ਕਿਰਪਾ ਪ੍ਰਭ ਤੂੰ ਮੋਰੀ ਲਾਜ ਰਖਾਈ

194. पहाणे...

पाहणार्या.ने पाहता मनगुणदोषा ते
होऊनिया ते नाहीसे अंती शून्यची उरे

पाहणार्याने पाहता शून्याकडे
शून्य होऊनिया तिथे साक्षीभाव उरे

साक्षीभावाने पाहता पाहणार्यासकडे
तिथे अवघे ब्रह्मची दाटे चहुकडे

कलीकाळी वरदान दिले श्रीगुरूहरिने
पाहता पाहता सगुण निर्गुणची झाले.

ऐसे माझे व्हावे जगी सिध्द ते पहाणे
म्हणून श्रीगुरू चरणी सर्वस्व ते वाहीले

195. प्रभु दर्शन प्यास बुझा पंचसखी री

विश्वातील पाच तत्त्वांनी मिळून आपले शरीर व मन निर्माण झाले आहे. संतांनी त्यांना पंचसखी म्हणून छान वर्णिले आहे. तिच संकल्पना घेऊन ही रचना झाली.

प्रभु दर्शन प्यास बुझा पंचसखी री ।
मुझे वेग मिलाओ हरगोविंद सखी री ॥१॥

सखी पंचसखी तुम काया मनी धारि ।
माया नीत नीत दिसे इत उत सारी ॥

श्रीगुर परसाद अब हम सब जानी ।
माया सगुण, वसे उस पार मुरारी ॥

तुम हो सखी क्यों मेरा मोहन छिपाई ।
किलविख त्याग मुझे प्रभ दरस दिखाई ॥

अचरज है सखी जब पहचान मिटाई ।
तुमरे अंदर अनहद तब तुम हो सुनाई ॥

मंगल गावो, मंगल गावो सखी री ।
मुझे प्रभ आण मिलाओ सखी री ॥

प्रभु दर्शन प्यास बुझा पंचसखी री ।
मुझे वेग मिलाओ हरगोविंद सखी री ॥१॥

196. प्रित जुडी...

प्रित जुडी सखी प्रित जुडी
हरगोविंद से मेरी प्रित जुडी ॥धृ॥

निंद गयी मोरी चैन गयी ।
खानपान सब अब बिसर गयी ॥

मायामोह मै सब त्यागी मुरारी ।
पर मोहन तेरे मोह से मै हारी ॥

क्युं तुम छलसे मोरी सुध चुराई ।
अब कहा गये मेरे कृष्ण कन्हाई ॥

तेरे चरण ना छोड़ू नारायण हरी।
प्राण जाई पर मेरी आंस ना जाई॥

तुम अंतर्यामी अद्वय हम जानी।
गुरु किरपा से तू मोहे दर्स दिखाई ॥

प्रित जुडी सखी प्रित जुडी
हरगोविंद से मेरी प्रित जुडी ॥धृ॥

197. घन जलद सावळा

अवनीवरती शीतल जलधारा
विठू माझा प्रेमळ सावळा
ओथंबले मन प्रेमामृतधारा

आकाश निरभ्र मोकळे
नेसले अनंताचे सोवळे
आकाश विठुल विठुल
तेची दिसे परब्रह्म निष्कल

तिथे श्रीगुरु चरण एकची खुण
त्यांचे पायीचा मी व्हावा एक कण
ऐसी सर्व उपाधींची व्हावी राख
जसे तिथे न उरे कोण खास

ज्ञात अज्ञात इथे अति अलीकडे
पल्याड अव्यक्त दाटले चहुकडे

198. प्रसंग युद्धाचा...

खरे तर आपण जीवनात अनेक संघर्ष अनुभवत असतो जे अध्यात्मिक दृष्टिकोनातून सपशेल आभासी असतात. जोपर्यंत अज्ञान जात नाही तोपर्यंत आभासी सत्यतेचे नियोजन अनिवार्य आहे. यावर संत कबीरदास यांनी जो उपाय दिला आहे तो इथे रचनेमध्ये दिसून येतो.

क्षणोक्षणी आम्हा प्रसंग युद्धाचा...
चुकवायचा सतत हा द्वंद्वाचा मारा...

अहं आभासी परि निरिक्षक मायेचा...
बंदी सदा हा वृत्ती इच्छा वासनांचा,

भ्रांतिने मानितो इथे आभासी सत्यता...
जे मानिले ते भोगूनही ना मिटे तयाची तृष्णा ,

भार ना सोसवे आता या मदमायेचा...
फेरा चुकवूया या आपुल्या जन्ममरणाचा,

योगभक्तीने लववूनी माया,
करुया धनुष्य त्या मायेचा,

एकाग्रतेची ओढूया प्रत्यंचा,
लक्ष्य करुया त्या शून्याकाश तत्त्वाला,

लागेल ठाव तिथे आपुल्या स्वस्वरूपाचा...
आता उरलो इथे उपकारापूरता...

199. पारब्रह्म परमेश्वर...

पारब्रह्म परमेश्वर सतगुरु
आगम अगोचर नाथ

अजाण मै कैसे जाणू
जो घट घट है रहते आप

आप छुपे है मुझमें जाणू
फिर क्यों लगता हूं मै अनाथ

कोटसूर्यसम तेज प्रकाश
तू देख न सके मेरी आँख

बिरहा बिरहा अंदर अगन
कब बरसेगी तेरी अमृत धार

कैसे पार होगी भवनय्या
थाम ले प्रभू तू हमरा हाथ

तू दयाल तू कृपाल स्वामी
सदा मै जाणू तू हमरे साथ

आठ पहर कर जोड़ रहू
तुमरी चरण सदा हमरा माथ

200. जे जे भेटे भूत...

आता जे जे भेटती भूत
त्यासी जाणावे भगवंताशी सूत

जरी दिसे ते सगुण साकार
जाणवे मागे तत्व निर्गुण निराकार

जो पाहती विश्व या देहबुद्धीतून
त्या माजी जाणावे ते आत्मतत्व अनन्य

या तृष्णेची नदी मिळो अमृतसागरी
द्वंद्वाचे तट बुडो अद्वैताचे पुरी

201. तेज प्रखर ...

तेज प्रखर तव ऐश्वर्याचे
उजळती कणकण ब्रह्मांडाचे

जीवन आमुचे ऐश्वर्य तुझे रे
तुझीच सत्ता अखंड असे रे

प्रकाशक तू ज्ञानविज्ञानाचा
स्वामी असा तू अनंत तत्त्वाचा

ऐश्वर्य देखता आत्मभान हरपले
जे जे तुझे ते माझेच मानले

तव कृपेने तव ऐश्वर्य देखिले
तुझ्या विरहाचे इथे रण ते पेटले

तू माझ्यात तरी हा विरह कसा रे
तव विरहाचा हा अग्नी चेतू दे

तनमनातून तव तेज येऊ दे
ते तेज पुन्हा तव तेजात मिळू दे

202. प्रिय बोल सखी री..

प्रिय बोल सखी री प्रिय बोल सखी री
मेरे राम का नाम प्रिय बोल सखी री ॥धृ॥

जोड़ जोड़ तू अक्षर इक इक
राम के नाम तू बोल अनगिनत
कैसे...राम बिन हम सुख पाए सखी री ॥1॥

रामनाम जो हम औखद पाये
किलविख सब मन के यह जाए
न आए संकट निकट कभी री ॥2॥

रामनाम जप जप जो गाए
मन मे ब्रह्म प्रकट हो जाए
पाए शांत अनंत मती गती री ॥3॥

जानू बाहर राम राम है अंदर
जहां देखू पाऊ मेरे राम अति सुंदर
रामरस पिऊ है यह अमृत शीतल री ॥4॥

प्रिय बोल सखी री प्रिय बोल सखी री
मेरे राम का नाम प्रिय बोल सखी री ॥धृ॥

203. चल शोधू तिथे...

चल शोधू तिथे त्या हृदयतळाशी प्रेमाचा तो अपार सागर
संध्या छाया पडतील तिथे जरी जिकून घेऊ मृत्यूचे समर ॥१॥

एकटेच जरी चालावे लागे ओलांडण्या ते वृद्ध क्षितीज
वर्षाव करुया प्रेमाचा त्यावर आपले जवळी जो जो येईल ॥२॥

विसरून सर्व तो भूतकाळ ऐसे होऊ प्रेमाचा खोत
मृत्यूही जरी येऊ पहाता प्रेमानेच करु त्याचे स्वागत ॥३॥

204. जरी मी आहे इथला...

जरी आहे मी इथला
तरी आहे तिथलाही,

इथे मी असा आहे प्रकट
तिथे आकाश आहे मी.

पंचसखी गाता गीत हे मंगल
तिथे ऐकू नाद अनहद हा मंजूळ

इथे आत्मभान ते आले चैतन्यातून
ते केवळ पुर्णत्व पातले त्या ब्रह्मातून

205. मन पवित्र सुंदर सुंदर...

श्रीमद शंकराचार्य हे जरी अद्वैत दर्शनशास्त्राचे जनक होते तरी त्यांनी उपदेश-सहस्रीमध्ये असे म्हटले आहे की मन व्हावे तीर्थक्षेत्र आणि तिथे यावे ईश्वर साधूसंत... याच संकल्पनेवर आधारित ही रचना झाली.

मन पवित्र सुंदर सुंदर

मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम
जेथे होतसे मिलन
विवेक भक्ती शक्तीचे
मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम

इथे सृष्टी वैराग्याची
आकाश शोभा शून्यत्वाची
वायूची शांत शीतल लय
अगणित चैतन्य-सूर्य प्रतिदिस
मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम

घाट इथले उतरंड द्वैताची
इथे उभी मंदिरे अद्वैताची
मंदिरात मूर्ती स्वात्मभान
इथे सर्व जमती साधूसंतजन
मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम

इथे पूजा जणू असे भक्ती योग
आरती हो ऐसे समाधी ध्यान
प्रसाद श्रीराम जय जय राम
सवे ऐकावा हा नाद अनहद
मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम

इथे परम पुरुष
जो नांदती आत्मराज
जरी अवघे निर्गुण निरंकार
तिथे वाहे परिमल सत्व सगुण
मन पवित्र सुंदर सुंदर
जसा हा इथे त्रिवेणी संगम

206. अज्ञानी मी असा...

अज्ञानी मी असा मी मलाच गं अजाण,
कसे मज भेटतील ते श्रीहरी नारायण

सगुणी दिला जन्म तुम्ही माझे मायबाप
निर्गुणी होण्या जन्म आता भेटावे श्रीसद्गुरू नाथ

ज्याचे मुखी सदा नाम हरी हरी,
त्याचे चरण मी धरीन सत्वरी,

जो मज दाविल हृदयी श्रीराम, आई मी वाहीन गं त्याला माझे पंचप्राण...

दान गं द्यावे मज देवाने विरहाग्रीचे,
करीन दहन त्यात मी माझ्या तनमनाचे,

आता इथे पुन्हा न व्हावा सगुणाचा संग
जलात जावे जल मिळूनी अन ते व्हावे अथांग

207. जीवन वास्तव प्रखर ...

ऐसे हे जीवन वास्तव प्रखर
असूनिया मिथ्या त्याची जाणीव कठोर

ऐसे माझे कित्येक मरुन गेले मी
माझ्यातूनच पुन्हा उपजले ते नवीन

पहा तो मी अनेकदा जन्मलो
जगलो मेलो फिरून जन्मलो

ऐसे जीवनचक्र लागले गतीला
परि कोण मला निरंतर पाहत राहीला

तो पाहणारा मी व्हावा हाची हट्टाहास
आला मी जीवनी घेऊनी नव काया आभास

आता तो पहाणारा मी माझा झाला
मी माझ्यातून मला पाहू लागला

आता अवस्थांतराच्या ना लागतील चवडी

आता नाही रचणार चवडी अवस्थांतरांच्या
राहीन होऊन रेणू श्रीगुरु चरणांच्या

208. लुटले लुटले...

लुटले लुटले मीच मला लुटले,
लागला हरिचा नाद मीपण सरले॥धृ॥

संसारी हा खेळ तृष्णेचा मांडियेला,
सुखदुःखामाजी मीपणा कमाविला,
आत्मभान मायेत ऐसे लयाला गेले ॥1॥

अवचित घडले कसे कोण जाणे,
जाणविले मजला हरि पाहतो आहे,
भासाभास तर्क तिथे क्षणार्धात तुटले॥2॥

ऐकेना अहं तयाने विज्ञान शोधले,
परि हरि तेज विज्ञानानेची दाविले,
अंती सर्व अहं गर्व पुरते लुळे पडले॥3॥

हरि पाही परि मजला ना कुठे दिसे,
व्याकुळला जीव तो सैरभैर पळे,
स्थिर करुनी मन श्रीगुरु चरण धरीले॥4॥

श्रीगुरु वचन बोलले,
श्रीगुरु वचन ऐकीले,
तू पाहशील हरिला माझ्याच नजरेने॥5॥

गुरवाणी गुंजे तू भोग संसार भोग ते,
परि जळी जैसे कमलदल असे कोरडे,
आठ प्रहर तू हरि नाम ना विसरे॥ 6॥

209. रखो राखणहारे

राखो लाज मोरी राखणहारे
हम द्वारे तुमरे हरि गोविंद मुरारे ॥धृ॥

माया खुद को कभी नहीं जाणे
लापरवाह यहां है ब्रह्म खुद से ॥

पारब्रह्म निरंजन परम परगासे
उपजी माया जीवभाव भरम से ॥

माया देखे सुणे माया माया ही बोले
जैसे मैं मैं करती कठपुतली डोले॥

हम मीन तुम आत्मसिंधू अपारे
अंदर बाहर तुम एको प्रभ हमारे ॥

जनम जनम हम माया मे लपटे
लाज गवाईं मनइच्छे से नहीं छुटे॥

दरस तेरे के जन्मोंसे है प्यासे,
श्रीगुरु आगे हम सिर धडी उतारे ॥

कर जोड हरि हम द्वारे तुमरे
गोविंद गोपाल जगदीश मुरारे॥
राखो लाज मोरी राखणहारे
राखो लाज मोरी राखणहारे॥

210. बिरहनिया...

ईश्वर चैतन्य रुपाने आपल्यामध्ये असतो. पण तिथे त्या चैतन्यात दडलेले ईश्वरीय तत्व आपण थेट जाणू शकत नाही. त्याच चैतन्यामूळे आपल्याला ईश्वराचा विरह जाणवतो. एकीकडे तो विरह सहन होत नाही आणि दुसरीकडे आधीच कमकुवत असलेलो आपण मायेला निष्प्रभही करू शकत नाही.

यावरून एक गोपी तिची ही व्यथा श्रीकृष्णाला त्याच्यावर नाराज होऊन सांगते असे रुपक घेतले आणि ही रचना सुचली.

जा जा मैं तोसे नाही बोलू कन्हैया॥
तू मुझ मे फिर क्युं लागि तनहांईया॥धृ ॥

वेद कितेब पढपढ मन थकाया ॥
मूरत पूजी अर तुझे भोग चढाया ॥1॥

अर = और

घुम घुम तीरथ तनमन उलझाया॥
प्रभू मिलन को कछु मिल नाही उपाया॥2॥

तू मेरो प्राण तू है मनतन बसिया ॥
जन्मोंसे हुं क्युं मै तेरी बिरहनिया॥3॥

बिरहनिया = जिसे बिरह हुआ है वह गोपी

तू सत तू चित आनंद मन वसेया॥
फिर भी क्युं तोसे मैने नहीं पाया ॥4॥

वसेया = निवास करनेवाला

जब कोई संत भगत तुझे जाणिया॥
सब को तुने तुझ मे ही समाया॥5॥

जब तुद धियाऊ बाधत मोहमाया॥
मै मसकीन इह होवे लखबरीया ॥6॥

मसकीन = कमकुवत

लखबरीया = लाखों बार

निमख इक बिसरु तो लागे जुग बिताया॥

रोमरोम से भई मै हरि तेरी जोगनिया ॥7॥

निमख = क्षण

तुम आओ जी बन के गुर-ग्यानिया॥
बल बल जाऊ सदा मै तेरी चेरीया॥8॥

चेरीया = शिष्या

अब मै हारी प्रभू बिरह से हो सखिया ॥
मिल गोविंद या लेवो प्राण मनहरीया॥9॥

211. प्राण सख्या श्रीरामा ...

नमस्कार, वृद्धपणी माणसाची परिस्थिती शक्तीहीन होते. सर्व क्षमता क्षीण झालेल्या असतात. मन सैरभैर होते व ते ईश्वराला सतत शरण जाते. पश्चात्तापाने मन उद्विग्न होते कारण काळ हातून निसटलेला असतो. भोगवादी द्वैताने त्या निष्पाप जीवाला सपशेल चकवा दिलेला असतो. आणि आता अशा वेळी तो जीव भानावर येऊन देवाची करुणा भाकतो. ही रचना गुरबाणी मधील "रामराए होवे वैद बनवारी" हे अत्यंत करुण पण अमृतमयी शब्द ऐकून सुचली. त्याचा अनुवाद केलेला नाही. मात्र मांडणी त्यास समांतर आहे.

प्राण सख्या तू माझ्या श्रीरामा
मज समीप यावे वैद होऊनिया ॥
तव नामरूप औषध देऊनि
अद्वय मजला करावयाला ॥ धृ ॥

थकले तन ही निर्बलता
नयनी वाहे अश्रुधारा॥
केस धवल कंठ बैसला
देह पैलतीरी आला राघवा॥१॥

मन वढाय तो चंचल वारा
द्वैताने हा फास आवळला ॥
औषध नाही आत वेदना
धाव धाव आता रघुराया ॥२॥

तव दर्शन आस मज श्रीरामा
आर्त तुझी मी वाट पाहता ॥
प्राण आता कंठाशी आला
तव चरणी दे मज बेअंत विसावा॥ 3॥

प्राण सख्या तू माझ्या श्रीरामा
मज समीप यावे वैद होऊनिया ॥
तव नामरूप औषध देऊनि
अद्वय मजला करावयाला ॥ धृ ॥

212. मी अनाथ ...

आईबाबांच्या नंतर ईश्वर आपला आईबाबा होतो. वाटत असणारे अनाथपण तोच दूर करतो केवळ त्याला शरण जाणे आवश्यक आहे.

मी अनाथ प्रभू तू मम प्रिय नाथ॥
अजाण मला तुझी प्राणमय साथ ॥धृ॥

तू अनंत अपार
परम पुरुष दीनानाथ ॥
अंतर्बाह्य तू जन्मोजन्मी
ना तुटे तव साथ ॥1॥

मायबाप माझे
तव स्वरूप साक्षात ॥
अप्रकट जरी उभयता
भेट होते तव दर्शनात ॥2॥

तू श्रीगुरु तत्व दयाळ
माझा जीवनाधार ॥
अपराधी मी तुझा
या मायेतून मज उध्दार ॥3॥

भावेल जैसे तुज देवा
मजला इथे तू राख ॥
ना सोडील तव चरण
होईल जरी देहपात ॥4॥

मी अनाथ प्रभू तू मम प्रिय नाथ॥
अजाण मला तुझी प्राणमय साथ ॥धृ॥

आईबाबांची आठवण ही अति हृद्य जरी असली तरी नैराश्यातून बाहेर काढणारी नितांत प्रेरणादायी आहे. तनव उमेद आणि उत्साह वर्धक आहे. कारण ते त्यांच्या अपरिमित जाज्वल्य अशा आशिर्वाद रूपात आपल्या समवेत आहेत. त्यांचे प्रेम सतत तनमनातून स्फुरत असते. अक्षरशः त्यांच्या सावलीच्या रूपात त्यांचे प्रेम आपल्या समवेत आहे. त्यांची उणीव जरूर भासते पण ती उणीव पुढच्या क्षणी भरून काढण्यासाठी त्यांनी असे काही आपल्याला अमूल्य दिलेय की साक्षात ईश्वराला ही आश्चर्यच व्यक्त करावे लागेल. त्यांची परम पवित्र सूक्ष्म स्पंदने आपले सतत संरक्षण करण्यासाठी सुसज्ज आहेत. ते आपल्या समवेतच आहेत यात शंका नाही. संपूर्ण जीवन त्यांचे चरणी अर्पण...

213. येळकोट...

येळकोट देवा येळकोट
देवा तुझा सदानंदा ॥
षड्रिपू तुडवितो पायी
कृपा असावी देवा ॥धृ ॥

माझा हात तू धरिला देवा
मल्हार मार्तंडा ॥
म्हाळसाई शक्तीरुपा
तिचा हा ब्रह्मांड सोहळा ॥1 ॥

तुझा जयघोष देवा
तुझा भंडारा उधळला ॥
खोबऱ्याची वाटी
माझा अहं मी फोडीला ॥2॥

अंतर्बाह्य हा जीव
सोनेरी भक्तीने रंगला ॥
माझ्या हृदयीचा देवा
तुम्हा आवडला देव्हारा ॥3॥

तुझ्या पालखीचे भोई
त्यांची चरण धूळ मस्तका ॥
तुझा ध्वज उंच उंच
डोलती अनंत रुप पताका॥ 4॥

मायेचा हा डोंगर
मी चढीन माझ्या खंडोबा ॥
कडे पठारी तुझे अमृत वैभव
भोगिन रे देवा ॥5॥

तुम्ही माझे मायबाप
साक्षात पार्वती शंकरा ॥
श्रीगुरु म्हणून मज भेटावे
उधळीन अस्तित्वाचा भंडारा ॥6॥

214. श्रीराम हृदयी पाहिले...

आपल्या मायमराठीला कोटी कोटी प्रणाम. भावनांना चपखल व अर्थपूर्ण शब्दरूप देणारी आई श्रीसरस्वती साक्षात मातृभाषा म्हणून आपल्याला लाभली आहे. जसं मातृत्व सगळ्या मातांमध्ये समानतेने प्रतीत होते तसेच तिची इतर भाषा स्वरूपे सुध्दा तितकीच जाज्वल्य आहेत जणू त्या तिच्या विविध तेजःपुंज प्रभा आहेत. शतशः वंदन.

पाहीले पाहीले श्रीराम हृदयी पाहीले ।
तनमनाचे करुनी मंदिर चित्त चरणी वाहीले॥धृ ॥

त्यागिले त्यागिले मी माझेपण त्यागिले ।
कोटी सूर्य तेजाने हृद आकाश व्यापिले ।1।

गंगौघ खळखळते ह्या नयनातून वाहीले ।
जाणीवांच्या कोंदणी रघुनंदन मी जाणिले ।2।

सुमुखपंकज करपंकज पदपंकज उमलले।
श्रीराम मज सन्मुख समचरण मी वंदिले ।3।

द्वैताच्या भ्रम-पवनी आत्मभान जपिले ।
जाता जे जे पाहू मज अद्वयची तू दाविले ।4।

आता निर्भय निःशंक निर्वैर मन ते जाहले।
मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अखंड ध्यायिले।5।

श्रीराम जय राम नाम श्रीराम दुमदुमले।
पिंडी हे ब्रह्मांड श्रीरामरूप प्रकटले॥6॥

सफल सुफल जाहले जन्म मरणांचे फेरे ।
दर्शनाने तुझ्या चिरंजीवीत्व मज लाभले ।7।

पाहीले पाहीले श्रीराम हृदयी पाहीले ।
तनमनाचे करुनी मंदिर चित्त चरणी वाहीले॥धृ ॥

215. स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे

ना कर्ता ना भोक्ता
नाही मालक कोणी
ह्या जाणीवांचा इथे
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे॥ 1॥

वृत्ती प्रवृत्तींचे पीळ पेटले
इच्छा वासनांचा उठला धुराळा
षड्रिपू गेले तपोभूमीत गाडले
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे ॥2॥

देह केला धारण परि
देहची आता गेला त्यागला
आता मनाला शून्यत्व लाभले
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे ॥3॥

भाव आविर्भाव सर्व निर्भाव
मी निर्गुण निराकार निर्विकार
माझ्यात सगुण विश्व म्या देखिले
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे ॥4॥

सगुण ते भेदूनी विवेकाने
सगुणी निर्गुण ब्रह्म ते आणिले
बिंदू अमृत-सिंधू अद्वयची झाले
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे॥ 5॥

जाहली श्रीगुरु कृपा अपार
आता नुरला तो मायेचा भार
श्रीगुरु शिष्यासह सर्व भेद निमाले
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे ॥6॥

आता अल्याड पल्याड मायेच्या
खेळ मांडियेला द्वैताद्वैताचा
परमानंद भोगतो अनंताचा तिथे
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे॥ 7॥

216. श्री गुरु सन्मुख...

राग जैतश्री मधील श्री गुरु अर्जुन देव जी यांची रचना अत्यंत विनम्रपणे मराठी भाषेत रुपांतरीत करण्याचा प्रयत्न केला आहे.

अब मै सुख पायो गुरु आगि
त्यजी सियानप, चिंत विसारी,
अहं छोडियो, है तियागि ॥धृ॥

श्रीगुरु सन्मुख होता, सुखरूप पावलो मी॥
चतुराई त्यजिली, चिंता मिटली ॥
अहं हा सोडूनिया, तृष्णा त्यागिली ॥धृ॥

जवु देखु तवु सगल मोह मोहीयो,
तवु सरणी परिउ गुर भागि
कर किरपा टहल हरि लाइउ
तवु जम छोडी मोरी लागि ॥1॥

ज्यास मी पाहू जाता
त्यावरी मायेची मोहिनी ॥
धावलो तुझिया चरणी
गुरुभाग्य योग उजळी॥
तव कृपा होई सत्त्वरी
मज घाला हो हरि चरणी।
तेणे मजलागी
यम बाधणार नाही॥1॥

तरिउ सागर पावक को
जवु संत भेटे वड भागि
जन नानक सरब सुख पाए
मोरो हरि चरणी चित लागि ॥2॥

अग्नी सागर करण्या पार
भेटे संत मम भाग्य अपारा॥
दास नानक सदा सर्व सुखी
मम चित्त लागो हरीचे चरणी ॥2॥

217. निर्गुण समाधी

विश्व-क्षमतांची साम्राज्ञी।

आई तू जगदंब भवानी।

सगुण उर्जेला स्थिर करुनी।

शिव समर्पित सहज होऊनी।

लावलीस तू निर्गुण समाधी ।

प्रकटले शिवचैतन्य तव अंतर्दामी।

तुझे तेज गं यावे माझे बुद्धीमती ।

श्रीगुरु कृपे मिळावी अद्वय गती ।

218. मनोकमल...

ज्ञानसूर्य विवेक किरण पसरावे॥
मनोकमल तेजाने न्हाऊन निघावे॥

तव सौंदर्यासम आमुचे भाग्य उजळावे॥
आमुच्यातूनी सहज अद्वय उमलावे॥

अहं अली हा मुक्त होऊनी ॥
अनंतात तयाने विलीन व्हावे॥

ऐसे आमुचे सुंदर मनोकमल॥
श्रीगुरु कृपेने हरी चरणी शोभावे॥

अली म्हणजे भुंगा

219. निरागस तू निरागस मी ही

खरे तर प्रत्येक जण निरागसच असतो .आपल्याला माया खेळविते .काही नवदाम्पत्य तर सपशेल भांडणाची शिकार होतात.भांडणाचा विजय कधीच नाही झाला पाहिजे .

निरागस मी निरागस तू ही
माया साधते डाव नकळत अशी ॥

विषयाचे विष कालवून मनी
वादविवाद तिथे घडविते ती ॥

तिथे संघर्षांच्या ठिणग्या पडती
भान हरपते दोघे भांडून दमती ॥

सावध राहू जपूया नाती
ओंजळ भरुया भावसुमनांची ॥

मने सांभाळून एकमेकांची
प्रेमाने जाऊ ईश चरणांशी ॥

220. Lets have a feeling

Let's have a FEELING of hand being held by the God

Let's have a FEELING of ears listening Shri Gurbani

Let's have a FEELING of heart understanding HIM

Let's have a FEELING of mind engulfed by divinity

Let's have a FEELING of eyes shedding tears with bliss

Let's have a FEELING of Self-less-ness while surrendering to HIM.

221. खुल खुल जाए

राग भैरवी मध्ये गुंफलेले शब्द

खुल खुल जाए मेरे बंध
खुल खुल जाए मेरे बंध

मूल ना जानू ना जानू आप
काम क्रोध मोह मन लिपटाए
अगन कुंड यहा महाभयंकर
प्रभू तुम मेरे हो तारणहार

तूम समरथ अगम अगोचर
नौनिधी के दातार
मै हर बारी हारा हुं भगवन
लेऊ तुमरी चरणन शरण

222. भगवंत तू माझा भगवंत तू

श्वासात तू प्राणात तू॥
स्पर्शात तू गंधात तू ॥
वाणीत तू रसनेत तू ॥
पंचकोशांचे मूळ तू
कायेच्या कणाकणात तू॥
भगवंत तू माझा भगवंत तू ॥

राग संगीत तू भावरंगात तू॥
मनात तू बुद्धीत तू ।
स्वत्व तू चैतन्य तू ॥
दृष्टीत तू सृष्टीत तू ॥
पिंडी ब्रह्मांडी तूच तू ॥
भगवंत तू माझा भगवंत तू ॥

सगुण तू निर्गुण तू ॥
साकार आकार निराकार तू॥
अमृत तू त्याचा गोडवा तू॥
अपरंपार तू अनंत तू ॥
सर्वस्व तू माझे जीवन तू॥
भगवंत तू माझा भगवंत तू ॥

अस्तित्व तू आत्मभान तू ॥
ज्ञान तू विज्ञान तू ।
प्रशांत तू अद्वैतानंद तू ।
सापेक्ष तू निरपेक्ष तू ।
समर्पण तू निर्वाण तू ॥
तुझ्यात तू अन माझ्यातही तूच॥
भगवंत तू माझा भगवंत तू ॥

223. कोण हा मी?

आपण निष्पाप निरागस आहोत पण आपल्याला आपला मी अनेकदा त्रास देतो. आपल्या स्वतःच्याच "मी-माझे-मला" या तीन भावांवर निकराचा क्रांतिकारी हल्ला चढविण्याचे धाडस करण्यास खुप शौर्य लागते हे सत्य आहे. त्या तिघांना सतत जाब विचारला पाहिजे त्यांच्यावर सतत हल्ला केला पाहिजे जेणे करून त्यांचे अस्तित्व आपल्याला त्रासदायक होणार नाही.

समोरच्या व्यक्तीच्या मनाला
लागेल असे बोलणारा "कोण हा मी"।।

स्वतःला मान-सन्मान मिळावा
म्हणून आटापिटा करणारा "कोण हा मी"।।

स्तुतीप्रिय, मानभावी इतरांशी ईर्ष्या राखणारा "कोण हा मी"।।

जे जे काही आहे त्याबद्दल गर्व बाळगणारा
इतरांना कमी लेखणारा "कोण हा मी"।।

आपल्यासाठी इतरांना वाकडी वाट
करायला लावणारा "कोण हा मी"।।

कमजोर व्यक्तींवर हुकुमत
सत्ता गाजविणारा "कोण हा मी"।।

धुंद बेधुंद मनाप्रमाणे हट्टी व
स्वार्थी वागणारा "कोण हा मी"।।

परम तत्वाला जाणून घ्यायचे
टाळणारा अहंकारी "कोण हा मी"।।

"कोण हा मी" त्याची दखल व्हावी जी।।
जाब त्यासी विचारूनी त्याची विल्हेवाट लावावी जी।।
त्याच्या असण्याला शोभा येईल ती वाट धरावी जी।।

इतरांच्या दुःखात सहभागी होऊन
ते वाटून घेणारा "इथे आहे"।।

इतरांच्या सुखात सुख मानून
ईश्वराला त्यासाठी प्रार्थना करणारा "इथे आहे"।।

गरजू व अडलेल्या जीवांच्या

निस्वार्थी उपयोगी पडणारा "इथे आहे"॥

सर्वांची काळजी घेणारा जीवलग
निरपेक्ष प्रेमळ "इथे आहे"॥

सतत विनम्र विनयशील
प्रयत्नशील, समर्पित "इथे आहे"॥

ईश्वरीय तत्वाला सदा समर्पित
श्री गुरु वचन गाणारा "इथे आहे"॥

"इथे आहे" पण तो त्याच्या
असणेपणात विरघळून गेलेला आहे॥
अदृश्य आहे... अद्वय आहे...॥

224. कठपुतली ओळखली

कठपुतली ओळखली ती॥
कठपुतली मी ओळखली॥ धृ ॥

मी- माझे- मला चे धागे बांधुनी॥
खेळ नियंत्रण हो कुणाच्या हाती॥1॥

भासे तिला सत्य या मायावी जगती॥
कार्यकारण शृंखलेत स्वतः ती गुंतली॥2॥

निर्मुनी संसार तयात धुंद बेधुंद रमली ॥
आभासी सत्यता लक्षात ना तिच्या आली॥3॥

द्वैतात सुखदुःखे ती हसली रडली॥
असूनी अमर कितीदा ती मृत्यू पावली॥ 4॥

श्रीगुरु कृपे तिज लाभता ज्ञानदृष्टी॥
कठपुतली आता ती जाहली वेगळी॥5॥

कठपुतली आहे पण आत ती नाही॥ अखरीत अनुभव अवतरला या जीवनी॥6॥

या या मजसंगे या या हो झडकरी॥
ऐकू गाऊ श्रीगुरुवाणी सदा मुक्तीदायी॥7॥

अखरीत = आश्चर्यकारक

परम सुखदायी परम सुखदायी॥
देवपूजा अरदास परम सुखदायी ॥धृ ॥

साक्षात चैतन्य सोहळा हा मी पाही॥
जळी स्थळी सर्वत्र देव ठायी ठायी॥ 1॥

ऐकुनी अमृतमयी श्री गुरुंची वाणी॥
देव आले हो आले आज या हृद-गृही ॥2॥

स्वतः येती इथे स्नान स्वतः देव करीती ॥
पूजा आसन स्थापन स्वतः देव होती॥3॥

स्वतः लावुन चंदन गंध टिळा मस्तकी॥
पवित्रतेची मंगल रुपडी साजरी गोजिरी ॥4॥

पाने फुले वस्त्रे आवडीची स्वतः देव ल्यायती ॥
सुगंधी ईष-सौंदर्य माझे मन मोहविती ॥5॥

मी निहाल निहाल ती देव लीला पाहुनी॥
काय वर्णावे सौंदर्य येते रोज नवे खुलूनी॥6॥

श्री गुरू कृपे देवपूजनी मम भाग्य उजळती॥
वाहतो देवा तव चरणी फुले ममाश्रूंची॥7॥

226. किती वाहती या नयनी...

मायेच्या शक्तीसमोर हतबल असल्याचे जाणवते तेव्हा डोळ्यातून नकळत पाणी वाहते.

किती वाहती या नयनी॥
अश्रूंच्या या संतत धारा॥धृ॥

मन अशुद्ध नित्या॥
कशी आणू शिष्य-पात्रता॥

आम्ही मायेच्या आधिना॥
हार सपशेल होता षड्रिपुंचा मारा॥

मन विषयीची का रमते
जाता करावया तव आराधना॥

पश्चात्तापे मन उद्विग्न उदास॥
श्रीगुरु तूची कृपाळा दयाळा ॥

ही मायाशक्ती प्रबल प्रबल॥
तुझ्या मार्गी टिकव तू मजला॥

आम्ही ना जाणू सार तुझे ईश्वरा॥
श्रीराम नाम मुखी येऊ दे रे ईश्वरा॥

एवढीची आर्त मम हृदयीची देवा॥
प्राण जावे श्रीगुरुवचनी मग्न असताना॥

227. दर्शन की अभिलाषा

तनमनधन छोड द्वार तुम्हरे आया ॥
दर्शन की अभिलाषा प्रभू जी
दर्शन की अभिलाषा॥धृ ॥

ना पूजा भगत ना कभी सुकर्म किया ॥
श्रीगुरु चरणतल कभी शीश ना झुकाया ॥1॥

जपतप ध्यान ग्यान कुछ नही पाया॥
मेरा मेरा करता जनम फिर गवाया॥2॥

गती ना जानू मेरी लिखी है अब क्या ॥
पतित उद्धारण हेतू शरण तेरी मैं आया ॥3॥

तुम को मैं पाऊं जाऊं ढुंढूँ मैं यहां वहां ॥
हृदय समाए मेरे अब ये दुनिया देखणवाला ॥4॥

तनमनधन छोड द्वार तुम्हरे आया ॥
दर्शन की अभिलाषा प्रभू जी
दर्शन की अभिलाषा॥धृ ॥

228. कठपुतली श्रीकृष्ण कन्हैया की

कठपुतली भई सखी री॥
कठपुतली कृष्ण कन्हैया जी की ॥धृ॥

कान्हा की मुरली धुन मधुर नादरी ॥
मगन भई सखी री मै तो मगन भई॥1॥

गोविंद संग खेलू रंग भरी पिचकारी ॥
ऐसी बिसर गई जगत को मैं हूई बावरी॥2॥

मनमोहन सिंऊ जब वन रास रचाई ॥
मै खोई कहां सब सुदबुध बिसरी ॥3॥

अब मै कहां दुंडू खुद को री माई ॥
आठ पहेर मुझमे पांऊ जी मैं मुरारी॥4॥

कठपुतली भई सखी री॥
मै कठपुतली कृष्ण कन्हैया जी की ॥धृ॥

229. आत्मनिवेदन

श्रीगुरु चरण धूल लावूनी मस्तकी॥
देवा...

अर्पियितो तुज मम आत्मनिवेदन भक्ती॥

सुख अवीट जशी गोडी नामामृताची॥
दर्शन क्षणभर होता जल वाहे नयनातूनी॥धृ ॥

त्यजिले ते जे जे होते हवे त्या मनमानसी॥
समर्पिले सर्वस्व दिली ज्ञानयज्ञी आहुती॥1॥

आता नुरले भाव दुजे रे गेली ती भ्रांती॥
आता आनंदी आनंद इथे भोगितो प्रशांती॥2॥

आता श्रीगुरु चरण शरण नित्य हे मन धावती ॥
माझ्या रामराया तुजवीण मज अन्य ना दिसती॥3॥

ऐसा तुझा संकल्प ती होतसे इथे पूर्ती॥
आत्म्यातून परमात्म तुझे सहजी इथे प्रकटती॥4॥

सुख अवीट जशी गोडी तव नामामृताची॥
दर्शन क्षणभर होता जल वाहे नयनातूनी॥धृ ॥

230. ऐसी व्याकुळता

ऐसी व्याकुळता दिलीस या जीवाला॥
कैसे आभार मानू जीव निःशब्द आर्त जाहला॥

आता विषय वस्तू मधून जीव आरपार गेला॥
तो अहं त्या अद्वयी ऐसा स्थिरावला॥1॥

ऐसी दिधली दृष्टी श्रीगुरु आशिष लाभला॥
जीव या चित्ती अति भरूनी भरूनी पावला॥2॥

परम पावन पुण्यकाल अवतरला॥
श्रीगुरु कृपे ईष चरणी प्राण एकटविला॥3॥

श्रीसीतारामरघुराई विसावली हृदनयना॥
जन्म जीवन मृत्यू आता एका स्वप्नाची कला॥4॥

231. कोंदण अद्वैताचे

अस्तित्वाला माझ्या कोंदण हो अद्वैताचे॥
विश्ववैराग्य प्रेमाचे त्यास पैलू हरिभक्तीचे॥धृ ॥

दारा-पुत्रपौत्र संपत्ती संबंधी प्रसिध्दीचे॥
ना उरले ते कारण मम आनंदोत्साहाचे॥1॥

संपला मालकीचा भाव मी-मला अन माझे॥
जे जे जाणीवांत येती ते सर्व मूलकण हो अद्वैताचे॥2॥

आता भ्रांतीचे मळभ ते विरले विरले॥
श्रीरामनाम कारण निश्चित समाधानाचे॥3॥

कार्य कर्म समाचरण घडते इथे जे जे॥
क्षणाक्षणाला अर्पितो प्रभूच्या चरणां ते॥4॥

लाभली गती अनंताची श्रीगुरु कृपेने॥
समर्पित सदा सर्वस्व हरि चरणां ते॥5॥

अस्तित्वाला माझ्या कोंदण हो अद्वैताचे॥
विश्ववैराग्य प्रेमाचे त्यास पैलू हरिभक्तीचे॥धृ ॥

232. कोण इथे ?

कोण इथे भोक्ता भोग जो भोगतो
कोण इथे कर्ता कर्म जो करतो

कोण इथे द्रष्टा अंतर्बाह्य जो पहातो
कोण इथे अनुभावक अनुभव जो घेतो

कोण इथे ज्ञाता सदा ज्ञान जो घेतो
कोण इथे जीव जीवन जो जगतो

आभास सत्यतेचा तोच इथे जन्मतो
तथाकथित जीवन जगूनी तोच तो मरतो

सगुणांचा अविष्कार का इथे दिसतो
जाणीवांचा जल्लोष का इथे उठतो

मायावी शक्तीचा जोर तोच इथे असतो
अद्वैतातून अवघा हा द्वैतभाव उद्धवितो

केवळ श्रीगुरु चरण शरण आम्ही जातो
कृपेने त्यांच्या सदा श्रीरामनाम उच्चारितो

श्रीराम नामे साक्षात सदा परब्रह्म हो पूजितो
द्वैतात असूनही अंतर्बाह्य अद्वैत जगतो

233. कशी करू देवा मी पूजा आरती

कशी करू मी देवा तुझी पूजा आरती
नवक्षमतांचे दान दे करण्या तव आरती

अणूरेणूपासूनी तू अनंत अशी तव किर्ती
तुज ओळखण्या तू मज द्यावी सुबुद्धी सुमती

किती सूर्य चंद्र तुज ते नित्य ओवाळिती
असंख्य तारकारुपी ऋषी तुज पुष्प अर्पिती

तुज दर्शन घ्यावया येती महाऋषीमुनी
वेदघोष अखंड या ब्रह्मांडी हो निनादती

तुझे ऐश्वर्य देवा ही माया द्वैताद्वैताची
तू मायबाप मज ऐसे घेतले मांडीवरती

श्रीगुरु तू माझा मज दिली विवेक शक्ती
राखिलेस चरणी सतत शरणी शरणी

मी अजाण बालक असे तुझा या जगती
पंचप्राणांच्या ज्योतीने देवा करितो तव आरती

देवा हीच माझी आरती हीच माझी आरती
नवक्षमतांचे दान दे करण्या तव आरती

234. पाहणार्याने एक दिवस

पाहणार्याने एक दिवस ऐसेची पहावे॥
ठायी ठायी तयास तिथे चैतन्य दिसावे ॥१॥

पाहणार्याने सर्व भिन्नता विसरून पहावे ॥
पहाता पहाता त्या मागे एकतत्त्वची पहावे ॥१॥

पाहणार्याने एक दिवस त्या मायेकडे पहावे॥
असूनही ती नाही तिचे मिथ्यापण ते जाणावे ॥२॥

पाहणार्याने एक दिवस षड्रिपुंकडे पहावे॥
विवेक दृष्टीने तयांचे आभासीपण ते जाणावे ॥३॥

पाहणार्याने एक दिवस ऐसे देवाकडे पहावे॥
पहाता पहाता श्रद्धेच्या पल्याड निघून जावे ॥४॥

पाहणार्याने श्रीगुरु चरण ऐसे निष्ठेने पहावे ॥
श्रीगुरु दर्शनी ते श्रीगुरुचरणामृतची प्राशावे॥५॥

पाहणार्याने एक दिवस आपुल्या अंतरात पहावे॥
भोगुनिया ते अद्वैत स्वतःमध्ये लीन व्हावे ॥६॥

235. धर्म क्या है?

जनम हमारा धर्म है॥
जीवन हमारा धर्म है॥
हमारी सांसे धर्म है॥
हमारी भूख पियास धर्म है॥
हमारी वेदना धर्म है॥
हमारा प्यार धर्म है॥
सबका विश्वास और सबकी इज्जत धर्म है॥
हमारा हर एक अच्छा प्रयास धर्म है॥
सब को संभालना हमारा धर्म है॥
दूष्ट प्रवृत्ति निकालना धर्म है॥
मानवता हमारा धर्म है ॥
सुखशांती के मार्ग धर्म है॥
अभिन्नता का ग्यान धर्म है॥
कर्तव्य हमारा धर्म है॥
सेवा भाव हमारा धर्म है॥
सुरज चंदा ग्रह तारे धर्म है ॥
प्रकृती और आत्मा हमारा धर्म है ॥
धर्म परम सत्य है ॥
हमारी सबकी मृत्यू धर्म ही है॥

236. अविद्येचे पेव फुटले

वैज्ञानिक दृष्टिकोनातून तर इथे फक्त दुःख आहे पण सुख नावाच्या काल्पनिक गोष्टीकडे प्रत्येक जण जिवाच्या आकांताने पळत असतो. जीव व्याकुळ होतो...हाती काहीही लागत नाही...कारण दुःखाचा विसर म्हणजे सुखाचा आभास...पहा किती किती विषमता.. ठायी ठायी संघर्ष.. जिकडेतिकडे अस्थिरता... पहावत नाही अगदी... काही लोक अजाण तर काही लबाडीचा कळस...संत म्हणतात तसे सगळीकडे अविद्येचा सागर आहे...त्याला पार करण्यासाठी श्रीगुरु चरण निष्ठेने हृदयी ठेवावे.

स्वतःला टाचणी मात्र बोचते
तिथे पर दुःख शीतल भासते
अविद्येचे पेव पहा हो फुटले
हृदयी श्रीगुरु चरण धरुया निष्ठेने

कोणाला कुणाचे इथे नाही देणेघेणे
आपल्याची दुःखात जीव सुख शोधे
अविद्येचे पेव पहा हो फुटले
हृदयी श्रीगुरु चरण धरुया निष्ठेने

इथे फरकाचे ज्ञान द्वैतास निर्मिते
कैफ चढतो धुंदीत ते जीवन वाया जाते
अविद्येचे पेव पहा हो फुटले
हृदयी श्रीगुरु चरण धरुया निष्ठेने

कोणास बुद्धी अचाट मिळते
कुणी निर्बुद्ध असती बापुडे
अविद्येचे पेव पहा हो फुटले
हृदयी श्रीगुरु चरण धरुया निष्ठेने

कोणास मिळे धन धान अपार
कुणी राहीले पहा उघडे नागडे
अविद्येचे पेव पहा हो फुटले
हृदयी श्रीगुरु चरण धरुया निष्ठेने

वाघिणीस तिचा बछडा प्यारा
परि देते पाडसास मृत्यू वेदना
अविद्येचे पेव पहा हो फुटले
हृदयी श्रीगुरु चरण धरुया निष्ठेने

इथे कुणास मिळे महासत्ता
कुणी चाकर राही जन्मभरे
अविद्येचे पेव पहा हो फुटले
हृदयी श्रीगुरु चरण धरुया निष्ठेने

इथे कुणास बल शक्ती मिळे

परि अनेक दिसती का ते दुबळे
अविद्येचे पेव पहा हो फुटले
हृदयी श्रीगुरु चरण धरुया निष्ठेने

इथे दुःखातची ते व्याकुळ जग सारे
सुख शोधून ते ना कुणा सापडे
अविद्येचे पेव पहा हो फुटले
हृदयी श्रीगुरु चरण धरुया निष्ठेने

जणू अज्ञानची इथे ऐसे पातले
वस्तु विषय ऐसे सत्य ते भासले
अविद्येचे पेव पहा हो फुटले
हृदयी श्रीगुरु चरण धरुया निष्ठेने

आमुच्या गावा केवल अद्वैत अद्वैत
तिथे अधिष्ठान सदा सदविवेकाचे
परम प्रकाश अमृत हो परमानंदाचे
या हो या शरणी श्रीगुरु चरणा ते

237. वैराग्याचे सजीव पुतळे

वैराग्याचे नव सजीव ते पुतळे॥

जे द्वैताद्वैताच्या सदा पलिकडे॥

अलख निरंजन घन गंभीर निनादे॥

तिथे भवताप तो कधी नुरे ॥

श्री नवनाथ गुरु हो दयाळू माझे॥

द्या वैभव मजला तुमच्या भक्तीचे॥

शरण शरण मी श्रीगुरुनाथ चरणां ते॥

238. रिक्त रिक्त श्वास माझे

हीच ती परम दिव्य शक्ति जी अहं च्या स्वरूपात आणि देहभानाच्या सगुण स्वरूपात प्रत्येक जीवात विराजमान आहे. तिची पार्श्वभूमी किंवा मूळ अद्वैत निर्गुणच आहे तिलाच समर्पित होऊया...जेणे करून राहतील शेवटी फक्त श्वास रिक्त रिक्त...

रिक्त रिक्त श्वास माझे
निर्गुणाचे गीत गाती

रिक्त रिक्त श्वास माझे
अद्वैताचे प्रेषित असती

रिक्त रिक्त श्वास माझे
वैराग्याचे प्रतिक असती

रिक्त रिक्त श्वास माझे
तिथे श्रीगुरु आशिष वसती

रिक्त रिक्त श्वास माझे
जेथे श्रीराम नाम उपजती

रिक्त रिक्त श्वास माझे
परम शांती परमानंद नांदती

रिक्त रिक्त श्वास माझे
श्वासातच अमरत्व जगती

239. झडकरी मज कर तव चरणांची ती धूळ

परवा मला राग आसावरी शिकवायला सुरुवात केली सरांनीही अत्यंत आर्त "हरि बिन तेरा कौन सहाई" त्यासाठी .
च या रागाचे .सराव करताना तनमनाला विसरून टाकणारा कारुण्य रस निर्माण होतो .भाव असलेली बंदीश निवडली
त्यामुळे सद्गदित व्हायला होते आणि काल .विशेष आहे सकाळी प्रॅक्टिस केल्यावर प्रवासात ह्या ओळी सुचल्या.

मन विश्व उर्जा तिचे मूळ निर्गुण निर्गुण॥
कोण थांबवेल तयाचे हे इथले आंदोलन॥1॥

आंदोलनी जहाले ते विश्व तयास सगुण॥
कोणी नाही इथे परि पेटले आभासांचे रण ॥2॥

द्वैतसंघर्ष हा वाहीला पंचमहाभूतांतून॥
तेणे कारणे अहंभाव राहीला इथे हा टिकून॥3॥

द्वैतभाव जीवांस सदा करितसे आगतिक॥
कसे कळेल मजला पुर्णातिपूर्ण केवलाद्वैत॥4॥

कठिणातिकठिण मजवरी आला हा प्रसंग॥
क्षणोक्षणी मी इथे का हा असे तृष्णार्त॥5॥

तू अति दयाळ कृपाल हरि हो मेहेरबान॥
पेटला भवसागर तू वाचिव ममात्मभान॥6॥

आता काय कशाची मी तुज घालू देवा आणं॥
झडकरी मज कर तव चरणांची ती धूळ॥

(आणं म्हणजे शपथ)

240. महास्नान काकड आरती

कार्तिक मासि ब्रह्म मुहूर्ती॥
देव सकल आले भूवरती॥
महासोहळा आज काकड आरती॥
महासोहळा आज काकड आरती॥धृ॥

देव विठ्ठल सवे ती रखुमाई उभी॥
ओवाळिती त्यांसी संतजन सुरनरमुनी॥1॥

आज जीवनी महामहाभाग्य उजळती॥
सकल मंगलाचार इथे विठ्ठल्या राऊळी॥2॥

पुष्पपत्र तोरणे ठायीं ठायीं बांधीली॥
सुवासिनी काढिती दारी सडा रांगोळी॥3॥

धवल धवल देव अभिषेक दही दूध लोणी॥
लाविले चंदन उटी येती सप्तसरीता अभ्यंगस्नानी॥4॥

रेशिम महावस्त्र सवे सुवर्णालंकार लेवूनी॥
सुंदर मनोहर ल्यायला तो पुष्प मुकुट शिरी॥5॥

कमलपुष्पाहार गळा माळ तुळशीची॥
अष्टगंध चंदन टिळा लावला मस्तकी॥6॥

आर्त संतवाणी सवे टाळ मृदंग वाजती॥
थरारले अंगांग इथे अभंगात हो नाहूनी॥7॥

प्रसन्न प्रसन्न देव स्मित हास्य करिती॥
संतुष्ट संतुष्ट झाली अवघी संतमंडळी॥8॥

कार्तिक मासि ब्रह्म मुहूर्ती॥
देव सकल आले भूवरती॥
महासोहळा आज काकड आरती॥
महासोहळा आज काकड आरती॥धृ॥

241. चिन्मय रूप घेऊन ये ग माय

"मा गो चिन्मयी रूप धोरे आय ही बंगाली भाषेतील "देवीची अतिशय आर्त प्रार्थना ऐकलीफारसे नाही कळले पण .
अंतर उत्स्फूर्तपणे .गायकाने भाव इतके आर्त कळकळीने उत्कट व्यक्त केले आहेत की मनाचा त्यात आपोआपच लय झाला
झालेली ही रचना

चिन्मय रूप घेऊन ये गं माय माझी ॥
मृण्मयी रूप तुझे तू दुर्गा सदानंदमयी ॥धृ॥

मी अजाण बाल तू महामाई देवी॥
कर उध्दार सत्त्वरी अघोरी माई॥1॥

ब्राह्मणी तू माई परात्परा ब्रह्मरुपिणी॥
जगन्माता तू ब्रह्मांडोदरधारीणी ॥2॥

अद्वय तू माई महाविश्वविलासिनी ॥
मम द्वंद्व बुध्दी नाश कर गं माय माझी॥3॥

प्रशांतीरुपा तू महामहाशक्ती दायिनी ॥
मम षड्रिपु विनाश कर गं माय माझी ॥4॥

तू सकल महाज्ञान विज्ञान दीपांकुरी ॥
मम विवेक जागृत कर गं माय माझी ॥5॥

श्रीगुरु स्वरुपा तू महामहायोगिनी ॥
हो मुक्तीदात्री माई तू महानिर्वाण रुपिणी ॥6॥

चिन्मय रूप घेऊन ये गं माय माझी ॥
मृण्मयी रूप तुझे तू दुर्गा सदानंदमयी ॥धृ॥

242. आज माझा ज्ञानराज निवृत्ती पावला

काल कार्तिक वद्य त्रयोदशीत्यावरून मला खालील ओळी .संत श्री ज्ञानेश्वर माऊलींनी संजीवन समाधी घेतली .
.सुचल्या पण दिवसभर कामाच्या गडबडीत इथे द्यायचे राहून गेले

माऊली समाधिस्थ होताना तिघे भावंडे साश्रू नयनाने सद्गदित झाली होतीनामदेव महाराज सांत्वन करत श्री .
असताना श्री निवृत्ती नाथांजवळ आले, म्हणाले तम्ही साक्षात श्रीगुरु व अद्वैताचे महाअधिकारी आणि आपल्या
डोळ्यात पाणी पाहून मला काही सुचत नाहीये तुमचे सांत्वन मी कसे करू.

तेव्हा श्री गुरु निवृत्ती नाथ म्हणाले..

आज माझा ज्ञानराज निवृत्ती पावला ॥
पहा पहा स्वसंवेद्याचा साक्षात ब्रह्म सोहळा ॥1॥

मज प्रेम आले उचंबळूनी दाटला हा गळा ॥
मी गुरु ज्ञानियाचा परि कसा रोखू बंधू प्रेमाचा उमाळा ॥2॥

माझ्या विठूच्या चरणतली आज वीट थरारली ॥
सद्गदित होई भगवंत ही ज्ञानलीला पाहूनी ॥3॥

शिष्य ऐसा मिळे अवघे गुरु पद आले फळाला ॥
धन्य जाहला हा गुरु ते ब्रह्मपद मिळे शिष्याला ॥4॥

ज्ञानराज माझी ऐसी सकल जगाची माऊली ॥
भवसागरी सर्व जीवाची जाहली प्रेमळ साउली ॥5॥

काय वर्णू आता माझ्या ज्ञानियाचे हो ऐश्वर्य ॥
निःशब्द निःशब्द उमटले मनी विश्वाचे ते आर्त ॥6॥

243. मोह ना अन्य जडो

मोह ना अन्य जडो
मज तुजवीण मनमोहना॥
राख शरण सदा मज तुज श्रीचरणारविंदा॥धृ॥

कुकर्मकुविचारांची कधी ना हो-
मज ती बाधा ॥
दे मज ज्ञानतप-विज्ञान जप-
योगाच्या क्षमता ॥1॥

तुझिया हस्ते तूच घडव रे
तुझाच हा चेला॥
सर्वस्व आहे अर्पण तुजला
माझ्या गोविंदा गोपाला ॥2॥

कायाबुद्धीची ना हो-मन-
कधीच मज ती पीडा ॥
नांदो मज आत्मानंदी
तू सदानंदा गोविंदा॥3॥

विनवणी तुज दयाळा
गोपाळा नारायणा ॥
तू श्रीगुरु म्हणूनी यावे
मज निजधामी न्यावयाला ॥4॥

सर्वोच्च ज्ञान विज्ञानाने तेजःपुंज झालेल्या माझ्या माय मराठीच्या चरणी शतशः नतमस्तक

244. भगवंत तू माझा

जे वैज्ञानिक दृष्टिकोनातून सिद्ध झाले आहे तेच हे....

भगवंत तू माझा भगवंत तू

श्वासात तू प्राणात तू॥

स्पर्शात तू गंधात तू ॥

वाणीत तू रसनेत तू ॥

पंचकोशांचे मूळ तू

कायेच्या कणाकणात तू॥

भगवंत तू माझा भगवंत तू ॥

राग संगीत तू भावरंगात तू॥

मनात तू बुद्धीत तू ।

स्वत्व तू चैतन्य तू ॥

दृष्टीत तू सृष्टीत तू ॥

पिंडी ब्रह्मांडी तूच तू ॥

भगवंत तू माझा भगवंत तू ॥

सगुण तू निर्गुण तू ॥

साकार आकार निराकार तू॥

अमृत तू त्याचा गोडवा तू॥

अपरंपार तू अनंत तू ॥

सर्वस्व तू माझे जीवन तू॥

भगवंत तू माझा भगवंत तू ॥

अस्तित्व तू आत्मभान तू ॥

ज्ञान तू विज्ञान तू ।

प्रशांत तू अद्वैतानंद तू ।

सापेक्ष तू निरपेक्ष तू ।

समर्पण तू निर्वाण तू ॥

तुझ्यात तू अन माझ्यातही तूच॥

भगवंत तू माझा भगवंत तू ॥

245. कोण हा "मी"

आपण निष्पाप निरागस आहोत पण आपल्याला आपला मी अनेकदा त्रास देतोय "मला-माझे-मी" आपल्या स्वतःच्याच .
या तिघांना सतत .तीन भावांवर निकराचा क्रांतिकारी हल्ला चढविण्याचे धाडस करण्यास खुप शौर्य लागते हे सत्य आहे
जाब विचारलापाहिजे त्यांच्यावर सतत हल्ला केला पाहिजे जेणे करून त्यांचे अस्तित्व आपल्याला त्रासदायक होणार नाही.

समोरच्या व्यक्तीच्या मनाला
लागेल असे बोलणारा ॥"कोण हा मी"

स्वतःसन्मान मिळावा-ला मानः
म्हणून आटापिटा करणारा ॥"कोण हा मी"

स्तुतीप्रिय, मानभावी इतरांशी ईर्ष्या राखणारा ॥"कोण हा मी"

जे जे काही आहे त्याबद्दल गर्व बाळगणारा
इतरांना कमी लेखणारा ॥"कोण हा मी"

आपल्यासाठी इतरांना वाकडी वाट
करायला लावणारा ॥"कोण हा मी"

कमजोर व्यक्तींवर हक्मत
सत्ता गाजविणारा ॥"कोण हा मी"

धुंद बेधुंद मनाप्रमाणे हट्टी व
स्वार्थी वागणारा ॥"कोण हा मी"

परम तत्वाला जाणून घ्यायचे
टाळणारा अहंकारी ॥"कोण हा मी"

"कोण हा मीत्याची दखल व्हावी जी॥ "
जाब त्यासी विचारुनी त्याची विल्हेवाट लावावी जी॥
त्याच्या असण्याला शोभा येईल ती वाट धरावी जी॥

इतरांच्या दुखात सहभागी होऊनः
ते वाटून घेणारा ॥"इथे आहे"

इतरांच्या सुखात सुख मानून
ईश्वराला त्यासाठी प्रार्थना करणारा ॥"इथे आहे"

गरजू व अडलेल्या जीवांच्या
निस्वार्थी उपयोगी पडणारा "इथे आहे॥"

सर्वाची काळजी घेणारा जीवलग
निरपेक्ष प्रेमळ ॥"इथे आहे"

सतत विनम्र विनयशील
प्रयत्नशील, समर्पित ॥"इथे आहे"

ईश्वरीय तत्वाला सदा समर्पित
श्री गुरु वचन गाणारा ॥"इथे आहे"

"इथे आहेपण तो त्याच्या "
असणेपणात विरघळून गेलेला आहे॥
अदृष्य आहे॥...अद्वय आहे ...

246. देवपूजा

परम सुखदायी परम सुखदायी॥
देवपूजा अरदास परम सुखदायी ॥धृ॥

साक्षात चैतन्य सोहळा मी पाही॥
जळी स्थळी सर्वत्र देव ठायी ठायी॥ 1॥

ऐकूनी अमृतमयी श्री गुरुंची वाणी॥
देव आले हो आले आज या हृदगृही ॥-2॥

स्वतः येती इथे स्नान स्वतः देव करीती ॥
पूजा आसन स्थापन स्वतः देव होती॥3॥

स्वतः लावुन चंदन गंध टिळा मस्तकी॥
पवित्रतेची मंगल रुपडी साजरी गोजिरी ॥4॥

पाने फुले वस्त्रे आवडीची स्वतः देव ल्यायती ॥
सुगंधी ईषसौंदर्य माझे मन मोहविती ॥-5॥

मी निहाल निहाल ती देव लीला पाहुनी॥
काय वर्णावे सौंदर्य येते रोज नवे खुलूनी॥6॥

श्री गुरु कृपे देवपूजनी मम भाग्य उजळती॥
वाहतो देवा तव चरणी फुले ममाश्रुंची॥7॥

247. Revolutionary Thought Vibe

Revolutionary thoughts vibe
Inspires the life II

Revolutionary thoughts vibe
Illuminates the life II

Revolutionary thoughts vibe
Solves mystery of life II

Revolutionary thoughts vibe
Feels it an enthusiastic life II

Revolutionary thoughts vibe
Makes us aloof from life II

Revolutionary thoughts vibe
Helps us transcend above life II

Revolutionary thoughts vibe
Takes us to shri Guru's pious feet II

248. अश्रुंच्या या संतत धारा

मायेच्या शक्तीसमोर हतबल असल्याचे जाणवते तेव्हा डोळ्यातून नकळत पाणी वाहते.

किती वाहती या नयनी॥
अश्रुंच्या या संतत धारा॥धृ॥

मन अशुद्ध नित्य॥
कशी आणू शिष्यपात्रता॥-

आम्ही मायेच्या आधिन॥
हार सपशेल होता षड्रिपुंचा मारा॥

मन विषयीची का रमते
जाता करावया तव आराधना॥

पश्चात्तापे मन उद्विग्न उदास॥
श्रीगुरु तूची कृपाळा दयाळा ॥

ही मायाशक्ती प्रबल प्रबल॥
तुझ्या मार्गी टिकव तू मजला॥

आम्ही ना जाणू सार तुझे ईश्वरा॥
श्रीराम नाम मुखी येऊ दे रे ईश्वरा॥

एवढीची आर्त मम हृदयीची देवा॥
प्राण जावे श्रीगुरुवचनी मग्न असताना॥

249. संतांची दिवाळी

खरी दिवाळी आपल्या संत ऋषी मुनी यांनी साजरी केली.

सात्विक मायेच्या जीव पात्रात...

घालून मनबुद्धी समर्पणाचे तेल...

तिथे पंचेंद्रियांची करूनी योग वात...

वैसले अवघे संत होऊनी समाधिस्थ...

कौतुके लाविती श्रीगुरु ज्ञानज्योत ...

तेजाळले ब्रह्मांड तेजाळले आत्म...

साजिरा केला ऐसा दिव्य दीपोत्सव...

देखिला हरी हृदयी लक्षलक्ष तेजात..

हरि कृपा झाली तिथे प्रकटले शब्दब्रह्म

ग्रंथरूप केले साक्षात ते स्वर्गीचे अमृत...

तुमच्या चरणी सर्व.. सर्व हो समर्पित...

तुम्ही आमुचे श्रीगुरु लावण्या ज्ञानदीप...

250. गुज दीपांचे

सांगतो तुला गुज दीपांचे ॥
उत्सव चैतन्याचा ते तेज तयांचे॥
प्रकाशिती जैसे आपुले आत्म हृदयीचे॥
घालवूनी अज्ञान तिमीरांधा ते॥
तैसे दाविती दृष्टांत दीपोत्सवी ते॥
आत्मप्रकाशी घेऊ दर्शन श्रीहरीचे॥

251. कुणी नाही इथे

वैज्ञानिक व अध्यात्मिक दृष्टिकोनातून मी हा भाव सपशेल आभासी आहेतरी पण तो इतका प्रखर सत्य आहे की त्याला .
जर .टाळता येत नाही आभासच इतके प्रखर आहेत तर त्यांच्या जाण्याने जे परब्रह्म अवतरते त्या परम सत्यरूप तेजाचे कोण
वर्णन करेल? केवळ श्रीगुरुच त्याचे वर्णन करतातस्वामींनी दासबोधामध्ये म्हटलेय अहो हे विश्व अजून श्रीसमर्थ रामदास .
मग इथे हा संसारी कोण आहे .अस्तित्वातच आलेले नाही?

कुणी नाही इथे ज्याला मान सन्मान अपमान आहेत

कुणी नाही इथे ज्याला जन्म जीवन मृत्यू आहेत

कुणी नाही इथे ज्याच्याकडे आहे—नाहीचे हिशेब आहेत

कुणी नाही इथे ज्याला सगेसोयरे संसार आहे.

कुणी नाही इथे ज्याला शरीर मन बुद्धी आहे.

कुणी नाही इथे ज्याला इच्छा आकांक्षा वासना आहेत.

कुणी नाही इथे ज्याला गुणावगुण त्रिदोष आहेत.

कुणी नाही इथे ज्याला बंध .मुक्तीचा ध्यास आहे -

कुणी नाही इथे पण हे कोण परिक्षण करत आहे.

तेच गूढ रहस्य आहे ज्याचा भेद केवळ बाकी आहे.

नीव नीव लागू पायी, श्रीगुरु कृपेचे त्यास एकमेव आर्त आहे.

252. हा गडी आला कुठून

हा गडी आला कुठून ॥
ह्याचा बाप ब्रह्म निर्गुण ॥
ह्याची आई उर्जा निर्गुण ॥
मग हा झालाच कसा सगुण ॥1॥

ह्याचा त्रिगुण गर्भी झाला जन्म ॥
संत म्हणती ते ब्रह्म प्रतिबिंब ॥
त्याच्या आजूबाजूला अज्ञान ॥
पाहूनी साधला डाव अन ॥
ते पहा लेकरु उचललं मायेनं ॥2॥

त्याचं पंचकोषांचे हो कोंदण ॥
परि मध्ये पारब्रह्म ते अटल ॥
त्याला द्वैताचं घातलं आंगडं ॥
त्याला क्षमतांचे दिले हो आंदण ॥3॥

पाच ज्ञानेंद्रियांनी हा युक्त ॥
पाच कर्मेन्द्रियांनी हा सुसज्ज ॥
माया वांझोटी ना फुटे पान्हा तिज ॥
लेकरु उपाशी नाही दूध परमानंद ॥
त्यास मायेने द्वैताचे पाजिले दूध ॥
म्हणूनी हा कायम वाढीला तृष्णार्त ॥4॥

दहा इंद्रियांनी केले ह्याला दिशाहीन ॥
भरुनी राहीला अहंकार गर्व अभिमान ॥
अहो मायेने ओतले षड्रिपु त्या दुधात ॥
त्यानेही प्यायले विष ते गोड मानून ॥5॥

सत्ता संपत्ती प्रसिद्धीचा हव्यास ॥

माया वाजवी टाळी बाळ वाढविला खास ॥

भोग भोगवूनी भोगवला तिने तयास ॥

कर्ता करूनी नागविला तिने तयास ॥

आता मृत्यूपासून करीतो धावाधाव ॥

तिथे माया होते हतबल सपशेल ॥6॥

मृत्यू समयी त्यास हो हमखास ॥

उभा करूनी यमाच्या दरबारात ॥

जाती मायेची ती दशेंन्द्रिये पळून ॥

एकला उभा तो होतसे हतबल ॥

मिळे तयास न्याय अति कठिण ॥7॥

कोण दाविल त्यास त्याचे मायबाप ॥

कोण पाजिल त्यास दूध अमृतपान ॥

श्रीगुरु भेटती तयास एकूनी आर्त हाक ॥

अलगद लाभती प्रांगण अद्वैताचे तयास ॥8॥

चरणी होता समर्पित समाधिस्थ ॥

श्रीगुरु दाविती त्यास शून्याची वाट ॥

तिथे आई उभी साक्षात श्री जगदंब ॥

बाळात सामावून तिचे होतसे निर्वाण ॥

भेटविशी बापाशी ते ब्रह्म निर्गुण निराकार ॥9॥

253. जेव्हा मन ते शिणते

जेव्हा माझे मन ते शिणते॥
जेव्हा माझे शरीर ते थकते॥

घेतो श्री गुरु चरणी विसावा॥
होऊन संपूर्ण समर्पित तिथे॥

चरण धूळ मस्तकी लावता॥
द्वैतभाव ते माझे सारे विसरले॥

शरीर गेले सवे मनही गेले॥
बुद्धीचे आता काम ते नुरले ।

श्रीगुरु पदस्पर्श भाग्याने॥
आनंदरूप मम आत्म अनुभवले॥

श्रीगुरु वाणीचे अमृत कानी पडले॥
जीवन अवघे तृप्त तृप्त जाहले॥

जेव्हा माझे मन ते शिणते॥
जेव्हा माझे शरीर ते थकते॥

घेतो श्री गुरु चरणी विसावा॥
होऊन संपूर्ण समर्पित तिथे॥

254. नमितो श्रीगुरुचरण मी

नमितो श्रीगुरु चरणी मी ॥
ध्यायितो श्रीगुरु वाणी मी ॥
पंचेंद्रियांवर विजय मिळवूनी ॥
जाईन माया सीमोल्लंघूनी मी ॥
नमितो श्रीगुरु चरणी मी ॥
ध्यायितो श्रीगुरु वाणी मी ॥1॥

जनसेवेच्या मज देउन संधी ॥
कर्मातून मज अकर्म दाउनी ॥
अहं पार षड्रिपु जाळूनी ॥
मज चालवा हाती तुम्ही धरूनी ॥
नमितो श्रीगुरु चरणी मी ॥
ध्यायितो श्रीगुरु वाणी मी ॥2॥

द्वैतातील अद्वैत दाउनी ॥
वैराग्याचे वस्त्र देउनी ॥
मुखी हरिचे नाम देउनी ॥
मज उपकृत हो करा गुरुजी ॥
नमितो श्रीगुरु चरणी मी ॥
ध्यायितो श्रीगुरु वाणी मी ॥3॥

यावे विश्वाचे आर्त तनमनी ॥
ते आसन उंच द्यावे हो तुम्ही ॥
जाता अश्रूंच्या ओघात वाहूनी ॥
व्हावे विशुद्ध विशुद्ध अमृतमयी ॥
नमितो श्रीगुरु चरणी मी ॥
ध्यायितो श्रीगुरु वाणी मी ॥4॥

समाधिस्थ मज ऐसे बसवूनी ॥
दावा मज माझा हरि निर्वाणी ॥
विजयपताका शून्याच्या शिखरी ॥
स्वधर्माची हो फडकवेन मी ॥
नमितो श्रीगुरु चरणी मी ॥
ध्यायितो श्रीगुरु वाणी मी ॥5॥

255. तिथे तुला ईश्वरा...

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे सरहद्दीवर माझ्या वीरांचे सांडिले रक्त॥1॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
ज्यांनी भागविली भूक शेतात उपाशी राबून॥2॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे विद्यामंदिरी घुमती ज्ञान विज्ञान विवेक॥3॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे हृदयी प्रेम निःस्वार्थ नसे अहंकार॥4॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
बुद्धी माझी जिथे होईल रे कुंठित॥5॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे निःशब्द मम वाणी अन शब्द॥6॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे श्रीगुरुवचन ऐकता हरवेल माझे मन॥7॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे वदिता श्रीगुरुवाणी अश्रु अनाहूत वाहतिल॥8॥

256. बाबा

आज माझा बाबा अप्रकट जाहला ॥
सगुण माझा ईश्वर तो अनंतगत पावला ॥

होतास तू सात्विक सज्जन भक्त समर्थाचा ॥
जीवन तुझे जाहले जणू भक्तीचा सोहळा ॥

करुनी कठोर संघर्ष जीवनाला भिडला ॥
स्वत्व त्यागुनी माझा पिंड तू पोशिला ॥

सुसंस्कारांचा मज मनी घालूनी ज्ञान सडा ॥
जीवनाचे मर्म मजला तो शिकवूनी गेला ॥

योगक्षेम समर्पण अन कर्तव्य कठोरता ॥
स्वजीवनी जगूनी मज आदर्श घातला ॥

पिता माझा श्रीगुरु कधी मित्र तो सखया ॥
आज मला असा का पोरका करुनी गेला ॥

कैसे ऋण फेडू तुझे कोणत्या उपाया ॥
माझ्या सर्व क्षमतांचा तूची असता दाता ॥

बाबा...,

असेल तुझा आधार माझ्या अंतीम श्वासाला ॥
तव चरणी ठेवितो माझा सद्गदित माथा ॥

257. जशा पावसाच्या सरी

जशा पावसाच्या सरी
पडे दाटल्या मेघांतूनी
मनी आठवणी वाहती
महापूर त्या होऊनी ॥ ध्रु ॥

डोळे भरुनी भरुनी
येते असे खुप पाणी
आईबावांच्या सर्यांची
मनी वाहते गं नदी ॥1॥

किती किर्तने ऐकीली
किती केले गं पूजाविधी
त्यांच्या अशा सहवासाने
जीवन पावलो मी भरुनी ॥2॥

त्यांनी मज राखिले निरोगी
दिल्या सुसंस्कारांच्या राशी
शिकविले मज त्यांनी
किती पराकाष्ठा गं करुनी ॥3॥

किती ओवाळीले आईने
तिची ज्योत गं संजीवनी
किती स्पर्श तात मात चरणांसी
त्याची होणार ना गणती ॥4॥

प्रेम अलोट त्यांचे गं
असे सदा माझ्यावरती
त्यांचा ऋणी जन्मोजन्मी
नाही होणार मी उतराई
नाही होणार मी उतराई ॥5॥

जशा पावसाच्या सरी
पडे दाटल्या मेघांतूनी
मनी आठवणी वाहती
महापूर त्या होऊनी ॥ ध्रु ॥

258. अनंताचा ठाव ...

समईच्या शांत ज्योतीला डोळे भरून पाहून ध्यानात बसले की एखादा क्षण मन निर्भाव होते. आपल्यातील निरीक्षक त्याचे स्वत्व हरवतो. त्या कोणत्या तरी एका क्षणी आपण हरवलो होतो याची आपल्याला नंतर जाणीव होते. ते इथे मांडण्याचा प्रयत्न केला आहे.

एका क्षणी ऐसा हरवे हा अहंभाव॥
आगळा अवर्णनीय तिथे हा अनुभव॥

केवळ असणे हे एक ते स्फुरण॥
हाच का असावा आपुला निजभाव॥

काया मनाला त्याचा न लागे ठाव॥
वाणीला ही तिथे नसे काही वाव॥

अकथ कथा त्याची शब्द शब्दातीत॥
काय म्हणावे त्यास भाव की निर्भाव ॥

व्हावी आता ती श्रीगुरू कृपा अपार॥
एका क्षणाने त्या घ्यावा अनंताचा ठाव॥

259. माया महाभयंकर

माया यहां महाभयंकर
जैसे अगन कुंड का हो सागर

श्रीराम नामसे ही जात है तर
अन्य ना कोई काम का
है लांघन उसका अति दुस्तर

लागे भवसुख पावत मन शरीर
पर पिछे दूख कायम है हाजीर

नही मिले कर्म का कोई सच्चा सार
भुलभूल्लैया भ्रम भ्रम अति असार

पल पल माया करे महाप्रपात
अग्यान अंधेरे जीव चंचल है जात

श्रीराम नाम की पकडे जो डोर
श्रीगुरु कहत है वह जाई पार

अब की बार बक्ष देवो भगवान
ना होई फिर फेरा
जहां हो यह सुपने सा संसार

260. कधीच नाही

या रचनेमध्ये मी हा भाव आणि भोक्ता वेगळे आहेत. भोक्त्याला आलेले अनुभव तो नाकारतो आणि त्याची भूमिका विशद करतो .

मला उगाच या लाटांनी सतत भिजवलं...

ऐक दर्यात पाऊल मी कधीच नाही ठेवलं...1

भ्रम प्रभावे शरीर जरूर कधी असेल डोललं...

मद्य प्राशन तर मी ते कधीच नाही केलं...2

माहीत नाही पायात काटं कुठं कधी रूतलं...

पायताण तर मी पायातून कधीच नाही काढलं...3

नयनी जल तर ते अनेकदा वाहीलं...

ऐक सुखदुखाच्या पलिकडून गं मीच ते पुसलं ...4

मला हो बोलताना सगळ्यांनीच पाहीलं...

पण मौन ते माझं कधीच नाही गं तुटलं...5

सुर लय तालात तर मी खूप काही गायलं...

स्वर माझे नव्हते अन कान तुझे नव्हते ते कुणालाच नाही कळलं...6

जीवनभर मला माझ्या तनमनानं फिरवलं...

ऐक..., तरी माझं विश्व व्यापकत्व ते कधीच नाही भंगलं...7

सदा मी तटस्थ अन माझं वैराग्य तुला जाणवलं...

आहे...न्याहाळलं नाही च्या पलिकडून मी ही ते-8

माया अनिर्वचनिय असं सर्व संतांनी सांगितलं...

अनिर्वचनियतेला तिथे प्रकाशित कोणी केलं...9

ईश्वर चरणी झुकताना तू अनेकदा मला पाहीलं....

मला सोड, त्या झुकवणार्या ईश्वराला तू कधीच नाही गं पाहीलं...10

261. परब्रह्म

परब्रह्म हो सावळे सावळे ॥
प्रेमे पाहीले भरूनीया डोळे॥धृ॥

वाणी थांबली शब्द थांबले॥
अति मनोहर रूप मज भावले ॥1॥

पावले पावले
जीवन भरूनी पावले॥
तुज पाहता विठ्ठला
आनंदाश्रू नयनातूनी वाहीले॥2॥

तुझिया माये जरी मन डुंबले डुंबले ॥
तुजविण ना काही मनी म्या चिंतिले॥3॥

आई रखुमाई माझे बाप गं तू विठ्ठले॥
तव चरणी मस्तक म्या ठेविले ठेविले॥4॥

अघाध तृप्तीचे तुम्ही दान हो मज दिले ॥
ध्या मज तव हृदयी आता माझे ना काही उरले ॥5॥

262. भरून पावलो

भरून पावलो भरून पावलो रामराया ॥
संत वचने शीतल जाहली मनोकाया ॥धृ॥

शब्दामृत मिळता त्या राशी ग्रंथांचिया ॥
शुध्द जाहली माझी मनबुध्दी काया ॥1॥

इच्छा वासना वृत्ती सकल ब्रह्ममाया ॥
तव कृपे राघवा जावी सत्वर विलया ॥2॥

अघाध तृप्ती लाभू दे प्राणसखया ॥
श्रीगुरुचरणधूळ म्या मस्तकी लाविलीया ॥3॥

भरून पावलो भरून पावलो रामराया ॥
संत वचने शीतल जाहली मनोकाया ॥धृ॥

263. मी तर आकाश आहे

मी तर आकाश आहे।
मी तर आकाश आहे॥धृ॥

माझ्या मध्ये हो मायेने।
शरीर मन बुद्धीने।
नाव ठेवून स्वतःचे।
जीव जगविला जाणिवेने ॥1॥

मी तर आकाश आहे।
चिरंतन आहे।
चिरंजीव आहे।
शून्यासह अनंत आहे॥2॥

कोण हा जीव आहे।
अद्वैतातील द्वैत आहे।
नाही सह सुध्दा तो आहे।
म्हणूनच तो मिथ्या आहे ॥3॥

जीवामध्ये आकाश आहे।
आकाशापल्याड ईश्वर आहे।
त्यास जीव समर्पित होताहे।
खूण श्रीगुरुजी पटवून देताहे ॥4॥

मी तर आकाश आहे...
मी तर आकाश आहे....

धरती माझी मैत्र
आधार देते स्वस्थ

अग्नी माझा मैत्र
अन्न पूर्ण ब्रह्म प्रसाद

वायू माझा मैत्र
प्राणायामे करतो विशुद्ध

जल माझा मैत्र
जीव तृप्त तृप्त शांत

आकाश माझा मैत्र
खूण आपले अस्तित्व सर्वत्र

265. निष्कला परमात्म रूपा

श्री संत गुरु ज्ञानदेवांचा चांगदेव पासष्टी हा लघुग्रंथ आपल्याला अत्यंत अंतर्मुख करतो त्याचे अर्थानुबोधन . हे आपल्याबद्दलची आपली समज अधिक विशुद्ध करते यावरून इथे विचार असा आहे की पारब्रह्म परमेश्वराकडे त्याचा मी . आपल्याला त्याच्या या अद्वय अवस्थेची कल्पना करताना त्याच्या आणि .सुध्दा नाही इतका तो विशुद्ध व निर्मल आहे रकाने तनमनातून थरथर निर्माण होते आपल्यातील फाणि ती कल्पना कल्पनाच रहाते तो आपल्यात असूनही ही . धरं तर संत म्हणतात तसे तो आणि आपण .आगतिकता निर्माण होते कारण तो त्याच्या स्व बद्दलच मुळी वेपरवाह आहे एकीकडे ही .नाही हे गूढ रहस्य आहे एकरूप असूनही या वेपरवाह अवस्थेची कल्पनासुद्धा करण्याची पात्रता आपल्यात माया आपल्याला तिच्यातून निपजलेल्या आहे अशा वेळी आपल्या या .नाही च्या कल्पनांचे सपशेल खेळणे करून टाकते- ...आर्त अवस्थेची कैफियत मांडून देवाला आर्जव करण्या पलिकडे आपण काय करू शकतो?

निष्कला परमात्मरूपा देवा दयाघना ॥
करुणा व्हावी जी मजवरी तुझी प्राणप्रिया॥धृ॥

स्वाधिन केलेस तू निरंकारा ॥
तुझे सर्वस्व त्या मायेला ॥
ब्रह्मांडी हा खेळ मायेने मांडला ॥
जीवाजीवांत पेरिला अहं फुकाचा॥1॥

उठला इथे हा कल्लोळ जाणीवांचा ॥
द्वैताचा अन त्या भ्रांत अहंभावाचा ॥
मी पणाचा मल तुज कधी ना लागला ॥
तू देवा अद्वया नित्य निर्मल निराळा ॥2॥

कसा स्वीकारू हा मीपणा मायेचा ॥
अति लज्जास्पद हे भाव मीमला ॥-माझे-
जरी असे सर्व तुझी सर्वत्र चैतन्य सत्ता ॥
भाव मालकीचा कैसा जीवांतूनी निपजला॥3॥

क्षणभरही ना वाटेना लाज या जीवाला ॥
वृत्ती इच्छा वासनांचा हा जित्ता असे पुतळा ॥
तू ईश्वरा चैतन्याधारा सर्व जीवमात्रा ॥
वाटे तू भोगिशी परि कसा राहशी रे अभोगा॥4॥

तुझीया प्रकाशे प्रकाशती माया ॥
परि तुज त्याचा नाही रे धांडोळा ॥
इथे दृष्य दर्शन हा मायेचा सोहळा ॥
परि तुज पहाण्या तू अखम आंधळा ॥5॥

तू आणि मी असे एक जरी ईश्वरा ॥
परि मायेने हा इथे डाव रे साधला ॥
तुझ्यात तुझी परम अद्वयावस्था ॥

मी अलिकडे मध्ये मायेचा पडदा ॥6॥

मी इथे जसा अधांतरी कठपुतळा॥
कसा सोडवू हा मायेचा रे विळखा ॥
श्रीगुरु वचने यावे विज्ञान खड्ग हाताला॥
आत्मज्योत ही मिळेल परमात्म्याला ॥7॥

निष्कला परमात्मरुपा देवा दयाघना ॥
करुणा व्हावी जी मजवरी तुझी प्राणप्रिया॥धृ॥

266. शबद रखो उरधार

भारतवर्षांत होऊन गेलेल्या आपल्या सर्व संतांच्या माध्यमातून ईश्वराने हे संतरसामृत पृथ्वीवर पाठवले आहे.

अशा सर्व ईश्वरीय संतसाहित्याचा उद्देश श्री गुरू ज्ञानेश्वर माऊलींचे पसायदान*प्रत्यक्षात येणे हाच आहेतिथे भाषा धर्म *.
तर एक माध्यम होऊन राहतात .यातील विविधता अडथळे करत नाही

शबद रखो उर धार मेरे भाई शबद रखो उर धार।।

ਸਬਦ ਰਖੋ ਉਰ ਧਾਰ ਮੇਰੇ ਭਾਈ ਸਬਦ ਰਖੋ ਉਰ ਧਾਰ। ।

सहेजी तरेगा भवसागर तू पार मेरे भाईशबद रखो उर धार।। ...

ਸਹੇਜ ਤਰੇਗਾ ਭਵਸਾਗਰ ਤੂ ਪਾਰ ਮੇਰੇ ਭਾਈ ਸਬਦ ਰਖੋ ਉਰ ਧਾਰ। ।

काट लेवो मस्तक तूम अपना।। गुर चरणी हो कुरबान सदा।।

ਕਾਟ ਲੇਵੋ ਮਸਤਕ ਤੂਮ ਅਪਨਾ।। ਗੁਰ ਚਰਣੀ ਹੋ ਕੁਰਬਾਨ ਸਦਾ।।

जम डंडे का ना लगे तुझे मार मेरे भाई शबद रखो उर धार।।

ਜਮ ਡੰਡੇ ਕਾ ਨਾ ਲਗੇ ਤੁਝੇ ਮਾਰ ਮੇਰੇ ਭਾਈ ਸਬਦ ਰਖੋ ਉਰ ਧਾਰ। ।

267. महादेवी योगिनी

हे माता महादेवी योगिनी योगमयी ॥
जाग जाग तू मम तनमनातूनी॥धृ॥

अद्वय शक्ती तू महामाता मृण्मयी ॥
अद्वय चैतन्य तू सतचिदरुपिणी॥1॥

अगम्य क्षमतांची तू देवी साम्राज्ञी ॥
अथर्वा तू ते द्वंद्व तव चरणतलाशी॥2॥

परतूनि मजला भेटव गं मजसी॥
तोडून पंचभूतांची दूस्तर करणी॥3॥

दान मागतो तुज हे परमेश्वरी ॥
जागव तव अद्वय या तनमनातूनी॥4॥

समर्पित सदा श्रीगुरुदेव चरणांशी॥
श्रीगुरु स्वरूपा तू माता मुक्तीदायिनी ॥5॥

हे माता महादेवी योगिनी योगमयी ॥
जाग जाग तू मम तनमनातूनी॥धृ॥

268. लाभो मज संतांची दृष्टी

श्रीमद शंकराचार्य जी यांच्या अद्वैत दर्शनानुसार खरतर ईश्वर सतत आपल्यातच असतोमायावी कर्म आणि भोग यापासून .
ही खंत .पण अशा थोर संतांशिवाय आपल्या सारख्या सामान्य जनांस तसे जाणवत नाही .आपण सदा सदा मुक्त असतो
संतांनी ही भक्तीची आंस .मांडली आहे खालील रचनेतत्यांच्या अभंगात रचली आणि साधकांच्या मनात तिच आंस
आपोआप पेरली गेलीशेवटी साधकाने दिव्य दृष्टीचे दान श्री जगद्गुरू .त्याचे अवर्णनीय परिणाम साधक जाणू लागला .
यांना मागितले

ईश्वर पहातो॥...
परि ईश्वर दिसेना॥
ईश्वर भोगतो॥...
परि हा जीव काही जाणे ना॥

माझी दृष्टी ही भ्रांतीची॥
मती भवभयाची॥
कर्त्याची अन भोक्त्याची॥
पकड ही भारी॥
मायावी द्वंद्वाची॥

परि दया अपार आम्हावर तुमची॥
म्हणूनिया रास लाविली अभंगांची॥
तुम्हांस सदा आंस विठू चरणांची ॥
ऐसी ती पेरिली तुम्ही माझिया चित्ती॥

गोड ध्यास मनी आंस जागवती॥
जीव अति तनी मनी व्याकुळती॥
ऐसी तव आंस मधुर अमृताची॥
तेणे आकुंठली आत वाणी माझी॥

लाभो मज ती संतांची दृष्टी॥
मजवर सदा ऐसी कृपा वृष्टि॥
श्री जगद्गुरू हो तुमची॥
आता व्हावी व्हावी जी ॥

269. परमानंद दर्शन

ईश्वराचे परमानंद दर्शन कुठे घ्यावे तर संत साहित्यात म्हटल्याप्रमाणे ते श्रीगुरु वचनात आहे श्रीगुरु वचन हे अघाध तृप्ती .
...त्यासाठी प्रभू चरण शरण .निर्माण करणारे अमृत आहे

॥ परमानंद दर्शन ॥

अघाध तृप्ती ऐसे तव परमानंद दर्शन
नीव नीव लागे हे मन प्रभू चरण शरण ॥धृ॥

अति आर्जवे आळवितो तुज जन्मोजन्म॥
घालव घालव माझे हे सर्व अज्ञान भ्रम ॥1॥

पूर्व कर्म जळो, चेतव परम ज्ञान यज्ञ ॥
सौभाग्ये लाभो मज मनी नित्यानंद नवनूतन॥2॥

जागव जागव मनातून हे परमात्मभान॥
विशुद्ध निरंकार मन व्हावे सहज उन्मन ॥3॥

तुझिया ध्यानाप्रति राहो वृत्ती सावधान॥
घडू दे विवेकप्रलय-, लाभो तव दिव्य निधान॥4॥

भवभय हरण पावन श्रीगुरु ग्रंथ वचन॥
नारायण नारायण नारायण नारायण॥5॥

अघाध तृप्ती ऐसे तव परमानंद दर्शन
नीव नीव लागे हे मन प्रभू चरण शरण ॥धृ॥

270. निर्गुण निर्गुण

काल आपण अगदी सोपे उदाहरण घेऊन परब्रह्म स्वरूपा निर्गुण उर्जा साऱ्या विश्वात सगुण साकार होण्यास कशी कारणीभूत झाली ते पाहीले..त्यावरून .

निर्गुण निर्गुण...

निर्गुण निर्गुण निर्गुण। ।
सकल सगुणाधार निर्गुण॥धृ॥

निराकार निर्विकार निर्गुण॥
परब्रह्म निष्कल चिरंतन निर्गुण॥1॥

विश्व उर्जा चलन निर्गुण ॥
भासे परब्रह्म साकार सगुण ॥2॥

क्षमताधिष्ठीत पूर्णातिपूर्ण निर्गुण॥
अकर्मी अकर्ता उदासीन निर्गुण॥3॥

शून्यानंता पल्याड निर्गुण॥
कोटी सूर्य प्रकाश निर्गुण निर्गुण॥4॥

परमानंद प्रशांत अद्वय निर्गुण॥
अंतर्बाह्य केवल निर्गुण निर्गुण ॥5॥

कृपा व्हावी जी तुमची ऐसी निर्गुण॥
मज द्यावी दृष्टी जाणाया निर्गुण॥6॥

श्रीसतगुरु चरण दर्शन निर्गुण॥
समर्पित सर्वस्व सदा हे सगुण॥7॥

निर्गुण निर्गुण निर्गुण। ।
सकल सगुणाधार निर्गुण॥धृ॥

271. साक्षात परब्रह्म

तू साक्षात परब्रह्म परमेश्वर॥
तुझ्या भक्तांचा हा मी चाकर॥
चरण धूळ मस्तकी टिळा लाविला लाविला॥

तू कृपावंत दयासागर ॥
तुझ्या नामाचा नित्य जागर॥
मनी माझ्या ऐसा तू केला तू केला॥

मज पार करण्या भवसागर॥
तुझ्या हाती तू धरिला माझा कर॥
भाव सर्वस्व तव चरणी मी वाहिला वाहिला॥

श्री गुरू मज तू भेटविशी अति उदार॥
प्रेमाने मज ते सांगती तुझे परम सार॥
जन्ममरणाच्या बंधातून हा जीव सुटला सुटला॥
जन्ममरणा पल्याड हा जीव निघाला निघाला ॥

272. तू बा विश्वा

आपण आपल्या पंचेंद्रियां मार्फत विश्व जाणून घेतो त्याला विज्ञानात निरीक्षण असे म्हटले जाते निरीक्षण झाले की द्वंद्व .
आणि त्यातूनच संभ्रम निर्माण होतोसत्संग हा श्री /सुसंवादी भ्रांति म्हणजे संतमार्ग .हीच विश्वाची मूलभूत रचना आहे .
प्रभू दर्शन घडवतो तर विसंवादी भ्रांतिने ते मायाधिन जीवन रसातळाला जाते

तू बा विश्वा माझ्यातून काय पहाशी इथे॥
निष्कल परब्रह्म केवळ ते विलसे ॥

किती तुज औत्सुक्य वेग उत्स्फूर्ततेचे ॥
जीवनभर उलघाल ते इमले क्षमतांचे॥

अरे काय पहाशी जग वस्तू विषयांचे॥
तुझ्यातून निपजे तुझेच वादळ द्वंदाचे ॥

पाहशील जगती तू जे जे काही इथे॥
आभासी सत्य ते केवळ सगुणाचे॥

ऐसे पिंडी अहं तो प्रकटे मायोद्धावे ।
तो करि "मी"निरीक्षण सकल ब्रह्मांडाचे॥

द्रष्टा दृष्य दर्शन ते आपुलिया निर्मिले ।
स्वस्वरूप ते तयाच्या विसरीची पडिले ।

चरण धरीता सत्त्वरी श्रीमहासतगुरुंचे ॥
अद्वैत स्थूलसूक्ष्मी ऐसी परम दृष्टी ही लाभे ॥

नको वसवू संसार पुन्हा पुन्हा तू इथे॥
तू कुणीही नाहीस जाण श्रीगुरु उपदेशे॥

तू बा विश्वा माझ्यातून काय पहाशी इथे॥
निष्कल परब्रह्म केवळ ते विलसे ॥
सकल परब्रह्म केवळ ते विलसे ॥

273. निहत्था मी उभा

नुकतेच एक सुंदर श्रीगुरुबाणी शब्द ऐकलेज्यामध्ये या जीवनरूपी आखाड्यात पंच महाभूतात्मक इंद्रिय रूपी पहेलवान .
साधकावरहल्ला करतात आणि ईश्वर ते पहात असतात असे वर्णन आहेमग श्रीगुरु कृपे साधक तिथे विजय मिळवून .
...चे मनोगतसाधका .या रचनेची संकल्पना मात्र तिच आहे .थेट भाषांतर नाही .मोक्षाधिकारी होतात असे वर्णन आहे

निहत्था उभा मी आखाड्यात विश्वाच्या॥
मध्ये एकला हा इथे संघर्ष कडाक्याचा॥

इंद्रिये पहेलवान मजवर करिती हल्ला॥
क्षणात मी चितपट कसा करू सामना ॥

आले आले माझे पुण्य हो फळाला ॥
मज आठवला दीनानाथ श्रीगोपाला ॥

त्याचिया नजरेने त्यास मी पाहिला ॥
मजवर त्याची दृष्टी तो अति कृपाळ दयाला ॥

पाठीवर थाप श्रीगुरु आशिष मिळाला॥
इंद्रिये विझली तिथे आखाडाच संपला॥

श्रीगुरु चरणी पडलो जीव आक्रंदला॥
पुन्हा नको तो मायावी द्वंदाचा आखाडा॥...

माझा गोविंद मला भेटवा॥...
श्रीगुरु, माझा श्रीराम मला भेटवा॥...

हे ईश्वरा माझी प्रार्थना ऐकशील ना...

हिमालयाच्या उत्तुंग शिखरावरून
क्षितीजाला टेकलेल्या आकाशाला पाहताना
.., हे माझ्यात आहेअसे म्हणण्याचे मला धाडस दे।। .

मी सगळ्यात आहे पण कशाचाही माझा संग नाही .
याचा अनुभव घ्यायची कुवत माझ्यात निर्माण करा।।

अत्यंत सुंदर पवित्र मुर्ती पाहील्यावर
त्या पावित्र्याचा आणि सौंदर्याचा प्रकाशक तू आहे
हे जाणण्याइतकी शुद्धता मला दे।।

बोधिचित्त स्थिर करून
सम्यक मन अवस्था टिकवून ठेवण्यासाठी
माझ्या मनी सामर्थ्य दे।।

श्रीगुरु चरणी अनेक वेळा समर्पित होताना
मनाला स्थिरता दे।।

श्रीगुरु चरणी अश्रूंचा अभिषेक होताना
मनाला त्यात वाहून जाऊ दे...

हे ईश्वरा माझी प्रार्थना ऐकशील ना...

275. म्हणून मला

भरभरून जिथे त्याने दिले त्याला ते सपशेल विसरलसे दिसतात...

म्हणून मला ईश्वराचे डोळे भरून आलेले दिसतात..

अमृताहुनी गोड नाम देऊनही ते त्या नसलेल्या मरणाला भिऊन मरतात..

म्हणून मला ईश्वराचे डोळे भरून आलेले दिसतात..

शोधत नाहीत ते त्याला रंजल्या गांजलेल्याच्या हास्यात...

म्हणून मला ईश्वराचे डोळे भरून आलेले दिसतात..

असंख्य भेदाभेद करुनी भ्रमिष्ट होऊनी होलपडतात....

म्हणून मला ईश्वराचे डोळे भरून आलेले दिसतात..

धैर्य स्वरूप जो सीमेवर जागृत ते त्या देवाला कुठे हो जाणतात...

म्हणून मला ईश्वराचे डोळे भरून आलेले दिसतात..

रक्ताचे सिंचन करणाऱ्या शेतकऱ्यांची ते अवहेलना करतात....

म्हणून मला ईश्वराचे डोळे भरून आलेले दिसतात..

निष्पाप प्राण्यांचे बळी देऊन ते त्यांची आसुरी भूक भागवतात ..

म्हणून मला ईश्वराचे डोळे भरून आलेले दिसतात..

आईबाबांच्या संध्याकाळी ते त्यांना बेवारस सोडतात ...

म्हणून मला ईश्वराचे डोळे भरून आलेले दिसतात..

श्रीगुरुग्रंथातील शब्दब्रह्म स्वरूपाला सोडून भोग हव्यास करतात...

म्हणून मला ईश्वराचे डोळे भरून आलेले दिसतात..

276. तुज ठावे

आईबाबा आणि भगवंत यात काहीच फरक नाही .आईची आठवण झाली माता रुक्मिणी कडे पाहिले मन भरून पावले .
होतो असा हा ईश्वर ठायी ठायी आपल्याला सहाय्यभूत .बाबांची आठवण झाली बाप विठ्ठलाकडे पाहिले मन स्थिर झाले
कधी त .बंधू मित्र सगे सोयरे श्रीकृष्णा सारखे सखा होतातो इतका दाटून दिसू लागतो की भान हरपून जावे.

हे असे देव का करतो? याचे कारण काय असावे? तर त्याला माहिती आहे की जी मायावी सृष्टी त्याने निर्माण केली आहे
त्यात आपल्या सारख्या सामान्य माणसाला जगणे कठीण आहेमग अशा कृपाळू देवाचे आभार मानून त्याला हक्काने काही .
मागूया...

तुज ठावे तव माया जिथे ना ठाव ना अंत कशाला॥
म्हणूनी सांभाळीशी नित्य मज तू ईश्वरा परमेशा॥धृ॥

आई होऊनी मज पाठीवरूनी तू हात फिरवताना॥
उणीव तिची भरून काढतोस तू माऊलीहून मवाळा॥1॥

बाप होऊनी धैर्य देशी मज कर्तव्य निभावताना॥
उणीव त्यांची भरून काढतो तू दयाळा पांडुरंगा॥2॥

सावध सतर्क मज सतत ठेविशी हे जीवन झुंजताना॥
बंधू मित्र सगेसोयरे माझे जसे श्रीकृष्ण अर्जुनाचा॥3॥

जे जे पाहू जाता तेथे संग तुझा रे संग तुझा॥
अरे आत्मभान हरपले पाहूनी तुझा परम चैतन्य सोहळा॥4॥

अंतर्यामी दिलीस आंस मज श्रीगुरु चरण शरण जावया॥
तू माझ्या अंतर्बाह्य ही अनुभूती दे रे मजला॥5॥

क्षण शेवटचा ऐसा ईश्वरा परम ऐश्वर्याचा यावा॥
तव हातावर देता टाळी परमानंद हा जीवानंद जुळावा॥

तुज ठावे तव माया जिथे ना ठाव ना अंत कशाला॥
म्हणूनी सांभाळीशी नित्य मज तू ईश्वरा परमेशा॥धृ॥

277. मन निर्मल निर्मल...

मन निर्मल निर्मल
दिसे अनंताचा तळ

मन निर्मल निर्मल

ते सदानंदाचे निधान

मन निर्मल निर्मल
भाव भक्तीचे ते कमळ

मन निर्मल निर्मल
ते सत्य सत्वाचे जल

मन निर्मल निर्मल
श्रीरामनाम नित्य स्मरण

मन निर्मल निर्मल
श्रीगुरुचरणाची धूल

278. प्राण सख्या श्रीरामा

नमस्कार, वृद्धपणी माणसाची परिस्थिती शक्तीहीन होते. सर्व क्षमता क्षीण झालेल्या असतात. मन सैरभैर होते व ते ईश्वराला सतत शरण जाते. पश्चात्तापाने मन उद्विग्न होते कारण काळ हातून निसटलेला असतो. भोगवादी द्वैताने त्या निष्पाप जीवाला सपशेल चकवा दिलेला असतो. आणि आता अशा वेळी तो जीव भानावर येऊन देवाची करुणा भाकतो. ही रचना गुरवाणी मधील "रामराए होवे बैद बनवारी" हे अत्यंत करुण पण अमृतमयी शब्द ऐकून सुचली. त्याचा अनुवाद केलेला नाही. मात्र मांडणी त्यास समांतर आहे.

प्राण सख्या तू माझ्या श्रीरामा
मज समीप यावे वैद होऊनिया ॥
तव नामरूप औषध देऊनि
अद्वय मजला करावयाला ॥ धृ ॥

थकले तन ही निर्बलता
नयनी वाहे अश्रुधारा॥
केस धवल कंठ बैसला
देह पैलतीरी आला राघवा॥१॥

मन वढाय तो चंचल वारा
द्वैताने हा फास आवळला ॥
औषध नाही आत वेदना
धाव धाव आता रघुराया ॥२॥

तव दर्शन आस मज श्रीरामा
आर्त तुझी मी वाट पाहता ॥
प्राण आता कंठाशी आला
तव चरणी दे मज बेअंत विसावा॥ ३॥

प्राण सख्या तू माझ्या श्रीरामा
मज समीप यावे वैद होऊनिया ॥
तव नामरूप औषध देऊनि
अद्वय मजला करावयाला ॥ धृ ॥

अब मै सुख पायो गुरु आगि
त्यजी सियानप, चिंत विसारी,
अहं छोडियो, है तियागि ॥धृ ॥

279. श्रीगुरु सन्मुख होता

अत्यंत विनम्रपणे भाषांतरीत केलेले शब्द...

अब मै सुख पायो गुरु आगि
त्यजी सियानप, चिंत विसारी,

अहं छोडियो, है तियागि ॥धृ॥

श्रीगुरु सन्मुख होता, सुखरूप पावलो मी॥

चतुराई त्यजिली, चिंता मिटली ॥

अहं हा सोडूनिया, तृष्णा त्यागिली ॥धृ॥

जवु देखु तवु सगल मोह मोहीयो,

तवु सरणी परिउ गुर भागि

कर किरपा टहल हरि लाइउ

तवु जम छोडी मोरी लागि ॥१॥

ज्यास मी पाहू जाता

त्यावरी मायेची मोहिनी ॥

धावलो तुझिया चरणी

गुरुभाग्य योग उजळी॥

तव कृपा होई सत्त्वरी

मज घाला हो हरि चरणी।

तेणे मजलागी

यम बाधणार नाही॥१॥

तरिउ सागर पावक को

जवु संत भेटे वड भागि

जन नानक सरब सुख पाए

मोरो हरि चरणी चित लागि ॥२॥

अग्री सागर करण्या पार

भेटे संत मम भाग्य अपार॥

दास नानक सदा सर्व सुखी

मम चित्त लागो हरीचे चरणी ॥२॥

श्री गुरु अर्जुन देव जी

राग जैतश्री

280. स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे

ना कर्ता ना भोक्ता

नाही मालक कोणी

ह्या जाणीवांचा इथे

स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे॥ १॥

वृत्ती प्रवृत्तींचे पीळ पेटले

इच्छा वासनांचा उठला धुराळा

षड्रिपू गेले तपोभूमीत गाडले

स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे ॥२॥

देह केला धारण परि
देहची आता गेला त्यागला
आता मनाला शून्यत्व लाभले
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे ॥3॥

भाव आविर्भाव सर्व निर्भाव
मी निर्गुण निराकार निर्विकार
माझ्यात सगुण विश्व म्या देखिले
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे ॥4॥

सगुण ते भेदूनी विवेकाने
सगुणी निर्गुण ब्रह्म ते आणिले
बिंदू अमृत-सिंधू अद्वयची झाले
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे ॥ 5॥

जाहली श्रीगुरु कृपा अपार
आता नुरला तो मायेचा भार
श्रीगुरु शिष्यासह सर्व भेद निमाले
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे ॥6॥

आता अल्याड पल्याड मायेच्या
खेळ मांडियेला द्वैताद्वैताचा
परमानंद भोगतो अनंताचा तिथे
स्वप्न माझे हे स्वप्न माझे ॥ 7॥

281. मांगन...

तू समरथ दाता अपार पूरण ॥
कुछ नही मै इह देवो दान॥धृ॥

कौन हुं मै इह नहीं सकीए जान॥
इस जीवसे तुम हर लेवो अग्यान ॥1॥

अब नहीं इच्छा कुछ करन भोगन॥
तुमरे इच्छे से सब होवे पूरण॥2॥

बैराग नहीं मांगन, भोग नहीं मांगन ॥
मुक्ती नहीं मांगन, बंधन नहीं मांगन॥3॥

सांस ना मांगन, प्राण ना मांगन ॥
चेतन नहीं मांगन, जीवन नहीं मांगन॥4॥

सगुण नहीं मांगन, निर्गुण नहीं मांगन॥
सांत नहीं मांगन, अनंत नहीं मांगन॥5॥

मन मेरो होवे हरि अमृत दर्पण॥
इस इहलोक से अब कुछ नहीं मांगन॥6॥

बदल देवो हरि सरब विधी-विधान ॥
श्रीगुरु हैं मेरो इक परम निधान॥७॥

हम भगत किंचित किरपा मांगन॥
रहू चरण धूल प्रभू हम तेरो आंगन॥८॥

तू समरथ दाता अपार पूरण ॥
कुछ नही मै इह देवो दान॥९॥

282. क्या गत मिले.. क्या मन पावत...

“अपने करम की गत मै क्या जानू बाबा रे” ही संत श्री गुरु कबीर जी यांची नखशिखांत हादरवून टाकणारी रचना ऐकून त्यावरून ही उत्स्फूर्त काव्य रचना झाली जी त्यांच्या रचनेशी समांतर आहे.

क्या गत मिले.. क्या मन पावत...

क्या गत मिले.. क्या मन पावत॥
अंत समय धुं धुं उठत हैं पावक ॥धृ॥

पावक = अग्नी

कैसी यह काया कौन इसका मालिक ॥
मान अभिमान गरब महापातक॥1॥

गरब = गर्व

माया का जब इह मृगजल मन देखत ॥
सुखदुख आभास उसे सांचा हैं मानत॥2॥

गुरग्यान नहीं पाया नहीं हुआ साधक॥
लोभ अति भोगत जैसे कोई साकत॥3॥

साकत = आधाशी, अविचारी

जम डंडा मुंड पडे ठण ठणक ॥
जनम गवाया अब मन मृत्यू से भागत ॥4॥

जम = यम

डंडा = वृद्धत्व

ठणक = क्षमता कमी होणे

भय भयाण अंध कूप सा अग्यान ॥
प्राण जाई तब मन खुद से हारत ॥5॥

काया जब जाए अगन से जलत ॥
खाक उडे गिरे धरतीपर इतउत॥6॥

उठ अब मन सनेह प्रभु का पावत॥
शरण हरि चरण रहो चिरजीवीत ॥7॥

क्या गत मिले.. क्या मन पावत॥
अंत समय धुं धुं उठत हैं पावक ॥धृ॥

283. सगुण मी ही माया

सगुण मी ही माया जिने
पातले इथे या विश्वाला

चैतन्य घेऊन आधाराला
मीच मांडले या खेळाला

थकले भागले मी नंदलाला
कोण मिटवेल या तृष्णेला

घेऊन निघाले या पंचसखींना
शोधवया परम आनंदाला

श्रीगुरु ज्ञान आता व्हावे मजला
मी प्रसवावे माझ्यातून शून्याला

मुक्तीचा हा महासोहळा
मला पाहू दे याची डोळा

लांगूनी त्या शून्य उंबरठ्याला
भेटेन मी माझ्या विठू सावळ्याला

284. रिक्त रिक्त तुम्ही श्वास हो माझे

हीच ती परम दिव्य शक्ति जी अहं च्या स्वरूपात आणि देहभानाच्या सगुण स्वरूपात प्रत्येक जीवात विराजमान आहे. ती श्वासांत लपलेली आहे. तिची पार्श्वभूमी किंवा मूळ अद्वैत निर्गुणच आहे तिलाच समर्पित होऊया...जेणे करून राहतील शेवटी फक्त श्वास रिक्त रिक्त तिच्या अद्वय अवतरणासाठी...

रिक्त रिक्त तुम्ही श्वास माझे॥
सदा निर्गुणाचे हो तुम्ही गीत गावे ॥1॥

रिक्त रिक्त श्वास माझे॥
तुम्ही प्रेषित हो त्या अद्वैताचे ॥2॥

रिक्त रिक्त तुम्ही श्वास माझे॥
प्रतिक व्हावे वैराग्याचे ॥3॥

रिक्त रिक्त श्वास माझे॥
श्रीगुरु आशिष रुपी सदा वसावे ॥4॥

रिक्त रिक्त तुम्ही श्वास माझे॥
श्रीराम नाम हो तेथूनी उपजावे ॥5॥

रिक्त रिक्त हो श्वास माझे॥
रोमरोमी तुम्ही यावे आनंद रुपे ॥6॥

रिक्त रिक्त या श्वासांनी यावे ऐसे ॥
अमरत्वाचे जगणे व्हावे तेथे ॥7॥

285. श्री गुरु चरण मानस पूजा

श्रीगुरुचरण कमल मी जे ध्यायिले ॥
हृदयी पूजा आसन स्थापन ते केले॥1॥

स्वरुप श्रीगुरुंचे साक्षात हो परब्रह्माचे॥
चरणी वाहतो सुविवेकरुपी सुमने ॥2॥

संसार सोपा झाला श्रीगुरु उपदेशे ॥
चरणी सुगंध गंध लावितो भक्तीचे ॥3॥

श्रीगुरु मातपिता बंधु सखा जाहले ॥
चरणी वंदन करीतो अतिविनम्रभावे ॥4॥

श्रीगुरु मम प्राण आधार आत्म्याचे ॥
तळहाती दाविले मज अद्वैत ईश्वराचे॥5॥

आता कुठे उरले मी मला अन माझे ॥
श्रीगुरु चरणी आर्त...
चुकवा चुकवा जन्ममरणाचे ते फेरे ॥6॥

286. मन सात्विक सात्विक

मन सात्विक सात्विक
जिथे श्रीगुरू वंदन

मन सात्विक सात्विक
ऐकता श्री गुरू उपदेश

मन सात्विक सात्विक
निरपेक्ष जन कर्तव्य सेवेत

मन सात्विक सात्विक
पहाता अद्वैत सगुणात

मन सात्विक सात्विक
होता अन्न ज्ञान दान

मन सात्विक सात्विक
अंतरी षड्रिपु विलय

मन सात्विक सात्विक
श्रीरामनाम बोले मुख

287. संजीवन मज द्यावे

सगुणातील मज निर्गुण दिसावे ॥
श्रीगुरु चरणी मज ब्रह्मांड दिसावे ॥

द्वैतामाजी मज अद्वैत कळावे ॥
श्रीराम नामी मज परब्रह्म उमजावे ॥

श्वासातील ते शून्यत्व मी जाणावे ॥
संसारी माया सर्व बंध हो तुटावे ॥

आता शरण अणू रेणू कणां ते ॥
ब्रह्मांडा पल्याड सं-जीवन मज द्यावे ॥

288. आम्ही परब्रह्माचे हो पुत्र

श्रीगुरु आश्रमी रहात असलेल्या अध्यात्म उन्नत सतशिष्याला आलेला अनुभव...

असो अपूर्णता कायेला ॥
असो अपूर्णता मनाला ॥
आम्ही परब्रह्माचे हो पुत्र ॥
तिथे प्रकाश केवल अद्वैताचा ॥1॥

आमुचे परब्रह्म हो पिता ॥
प्रेमळ मात असे ती उर्जा ॥
जरी लेकरु कवेत त्यांच्या ॥
झाले पोरके मायेच्या गावा ॥2॥

काय गावा श्रीगुरु महिमा ॥
दयाळा कृपाळा श्रीसद्गुरु नाथा ॥
लेकराची आर्त ऐकूनी तू आता ॥
भवबंध सोडावया धावला धावला ॥3॥

हाती देऊनी संतसाहित्याला ॥
कर्णी देऊनी श्रीरामनामाला ॥
बांधिल्या मनोवृत्ती मज श्वासांना ॥
तेव्हा सगुणी पाहीले निर्गुणाला ॥4॥

चुकविला जन्ममरणांचा फेरा ॥
सोडीले आणून घरी या मजला ॥
चिरंतन शिवशक्तीच्या हो गावाला ॥
बाळ भेटे तिथे आईबापाला ॥5॥

जीव ऐसा स्वप्नातूनी जागला जागला ॥
नीजधामी दृढ प्रशांत जाहला ॥
देखिला चिर परमानंद सोहळा ॥
सहजी मी अनंताकार पावला ॥6॥

289. भेटावी तिथे मज श्रीराम रघुराई

ही आर्त असे फार तनमनाची ॥
डोळ्यातून अश्रू अखंड ओघळती॥
व्हावी श्रीगुरुवर कृपा मजवरती॥
शरण शरण मी तुमचे हो चरणी ॥

कृपा मजवर ऐसी व्हावी तुमची॥
अद्वैत दावा मज तुम्ही द्वैतामाजी॥
सगुणांची अती संगत ती तुटावी॥
पिता पारब्रह्माविना पोरका मी ॥

आता माया ती प्रखर भासती ॥
टेकावया मज अद्वैत ना मिळती ॥
द्या दान भक्ती श्रीरामनामाची ॥
द्या वरदान साधिन योगसमाधी ॥

तुम्ही धरा श्रीगुरु हात माझा हाती॥
शून्याचा उंबरा द्यावा ओलांडूनी॥
मज दावा निर्गुण या तळहाती॥
अनाहत ऐकता भेटावी श्रीराम रघुराई॥

290. श्रीमंती हवी

श्रीमंती हवी निरोगीपणाची
श्रीमंती हवी धैर्याची
श्रीमंती हवी निर्व्याज प्रेमाची

श्रीमंती हवी संवेदनशीलतेची
श्रीमंती हवी आदराची
श्रीमंती हवी भक्तीभावाची

श्रीमंती हवी जनसेवेची
श्रीमंती हवी दातृत्वाची
श्रीमंती हवी परोपकाराची

श्रीमंती हवी श्रीसद्गुरु कृपेची
श्रीमंती हवी ज्ञानविज्ञानाची
श्रीमंती हवी विवेकाची

श्रीमंती हवी वैराग्याची
श्रीमंती हवी ध्यानाची
श्रीमंती हवी समर्पणाची

291. शिवकारा

शिव शिव शिव शिवाकारा ॥
त्रिगुणातिता त्रिगुणापारा ॥
निर्विकारा निराकारा निरंकारा॥
नकाराया अरुपाया अद्वया॥
दिग दिग दिग दिगंबराया॥
महा महा महा महादेवाया॥
निर्विकल्पा अनिरुद्धाया॥
नील नील नील नीलकंठाया॥
डम डम डम डमरूधराया॥
हर हर हर हरमहादेवाया॥
फणी फणी फणी फणिंद्रधराया॥
भस्मविभूषितांगा शुर वीरभद्राया॥
आत्मलिङ्गाया परमात्मनाया॥
तड तड तडतांडवनृत्यप्रिया॥
ज्योती ज्योती ज्योतिर्लिङ्गाया॥
अति अतिमनोहरा चंद्रशेखरा॥
अज्ञानहरा भवभयहरा भवहरा॥
सदा सर्व पापशापमुक्ताया॥
अलिप्ता अलेप्या वैराग्या विरक्ता॥
दयाळा कृपाळा श्रीजगद्गुरुनाथा॥
शरणी आलो तव साक्षात दर्शना॥

292. जागर व्हावा माय मराठीचा

जागर व्हावा माय मराठीचा ॥
जागर व्हावा तिच्या शक्तीचा ॥
जागर व्हावा तिच्या गोडीचा ॥
जागर व्हावा तिच्या रांगडेपणाचा ॥
माय मराठीच्या सर्वसमावेशकतेचा ॥
जागर व्हावा तिच्यातून खवणार्या
सृजनशीलतेचा ॥
प्रतिभेला सोनेरी कोंदण देणाऱ्या ॥
माय मराठीचा जागर व्हावा ॥
संतसाहित्यातून संतांचा सहवास घडविणार्या ॥
माझ्या माय मराठीचा जागर व्हावा
जागर व्हावा ॥
जागर व्हावा लोकहो जागर व्हावा ॥

293. आई माझी पार्वती

आईबावांची आठवण शेवटच्या श्वासापर्यंत सतत येतच रहाते. अशा वेळी पार्वती व महादेव आपले मातपिता होतात. ऊर्जा स्वरूप आई जवळच असते पण चैतन्य स्वरूप पिता पारब्रह्म शिव आईसह असूनही दूर असते. जो पर्यंत आईची कृपा होत नाही तोपर्यंत बाप दिसत नाही अशी या सृष्टी संसाराची रचना आहे.

आई माझी पार्वती ॥ बाप शिवा महादेव ॥
एक उर्जा ब्रह्मांडाची ॥ दुजा चैतन्याचा स्रोत ॥

निर्गुणाच्या गर्भी तिने ॥ रुजवला सगुणाचा गर्भ ॥
चैतन्याची छाया त्यात ॥ तेणे उपजला भाव स्वत्व ॥

ब्रह्मांड तिचे महा बुद्धिद्वंत ॥ तयास क्षमतांचे दिधले दान ॥
उपजला तिथे जाणीवांचा अर्थ ॥ त्यासी जीवन माने हा जीव ॥

त्रिगुणांचे हो उठले वादळ ॥ पाठी लागले षड्रिपु सशस्त्र ॥
कर्ता भोक्ता माजला अहंकार ॥ जीव शिणला जाहला समर्पित ॥

उंची तिने अध्यात्माची ॥ आपोआप इथे होती गाठली ॥
श्रीगुरु तत्व तिचे अवतरले ॥ भूवरी हो ठायीठायी ॥

आई पार्वती कृपाळ जाहली ॥ आंस दिली जीवा व्याकुळ करुनी ॥
श्रीगुरु दिशेने सन्मार्गी चालूनी ॥ तिथे जीव भेटावा परब्रह्म पित्यासी ॥

पूर्णत्व पावू दे तव दान सौभाग्या ॥ आई तू आम्हा दाव आमुचा बाप ॥
वैसलो ध्यानासी लेउन वैराग्याला ॥ मिळो आमुचे चैतन्य सदाशिव चैतन्याला ॥

294. हे ईश्वरी प्रकृती गे माये

माऊलींचे अमृतानुभव वाचताना सुचलेली ही रचना...आपल्या जीवनाचे उद्दिष्ट आपण ठरवलेले नाही तर प्रकृतीनेच ते ठरविले आहे. त्याची जाणीव होणे ही तिची कृपा आहे. तिला सहज सर्वस्व स्वाधिन करून त्या जाणीवेचे बंधमुक्तीमध्ये रूपांतर व्हावे ही श्रीगुरु चरणी प्रार्थना आहे.

हे ईश्वरी प्रकृती गे माये ॥ तव स्वरूप मज तू दिधले॥

तो पुरुष अव्यक्त सर्वत्र प्रकाशे ॥ परब्रह्माचे शांत आनंद रूप ते ॥

त्यासी इथे प्रकटवूनी तू स्वये ॥ द्रष्टेपण ते तू मजसी गं दाविले ॥

निर्गुणाचे ठायी ऐसे सगुण पातले ॥ शून्य वेदीवरी तू हे खेळ मांडिले ॥

द्वैतासी भेदूनी ते अद्वैत गं ऐसे ॥ तुझ्या इच्छेने मी ते परब्रह्म पहावे॥

परि म्या विसरलो तव उद्दिष्टा ते ॥ गुंतलो आभासी इथे या मायोद्धावे॥

अज्ञान न जाई अन षड्रिपु माजले॥ तू श्रीगुरु होऊनी ये ये गं माये ॥

तुजला मी सहज सर्वस्व वाहीले ॥ तुझिया इच्छे मी वैराग्य ल्यायले ॥

भक्ती ज्ञानामृत तव दयार्द कृपेने ॥ तू जागव तव या काया मन वाचे ॥

त्या अमृती घालूनी सगुण गुणां ते ॥ हे ईश्वरी प्रकृती गे माये.. ॥

त्यातूनी तू परब्रह्म भोगावे ॥ त्यातूनी तू परब्रह्म भोगावे ॥

295. ग्रंथ साहित्य शब्दामृत

जे जे सुचले संतांना ते दिव्य ते लिहिते जाहले ॥
मोह अनावर होता तिथे ओंजळ धरली श्रीप्रभुने ॥

तेणे सर्व ग्रंथ साहित्य श्रीप्रभू ओंजळी दिधले ॥
शब्दांना त्या ऐसे तिथे दैवी सामर्थ्य हो लाभले ॥

प्रतिभेचे भांडार अवघे अमृताने ओथंबले ॥
ऐसे संतवचनी अमृत अपार ओसंडूनी वाहीले ॥

धन्य जाहले श्रीप्रभू ग्रंथासी पावित्र्य ते लाभले ॥
जन्म आपुला उद्देश की हे शब्दाअमृत हो प्राशावे ॥

होऊनी तृप्त तृप्त आम्ही पूर्णत्वासी पावावे ॥
तिथे श्रीप्रभु चरणी आम्ही सदा लीन लीन व्हावे ॥

296. अपार आधार

वृद्धावस्था ही एक कधीही न चुकवता येणारी आपत्ती असते. कितीही व्यवस्थापन केले तरी शेवटी हाती काही लागत नाही. अगदी जवळचे सुध्दा कामानिमित्त इतरत्र गुंतलेले असतात आणि आपण एकटेच असतो. शरीर थकलेले असले तरी अशा वेळी ईश्वरीय साक्षात्कार होण्यासाठी मन पवित्र व शांत असणे ही खुप मोठी गोष्ट आहे. तोपर्यंत केलेल्या आयुष्यातील सर्व चांगल्या गोष्टी व श्रीराम नाम जप मनाला आधार देतात. अंतःसमयी यम येण्यापूर्वीच मला ईश्वराने बरोबर घेऊन जावे अशी विनवणी इथे केली आहे. ही रचना श्रीगुरुबाणीतील एका शब्द वरून सुचली आहे.

अपार आधार रघुनाथ एक ॥
अपार आधार रघुनाथ ॥
तुम मात पिता हम तेरे पूत ॥
इस भवसागर मे है अनाथ ॥धृ॥

बिन ग्यान ध्यान बिती है उमर ॥
हूं अकेला बिन मितर बिरादर ॥
अब ना कोई मेरे संग ना साथ ॥1॥
अपार आधार रघुनाथ एक ॥
अपार आधार रघुनाथ ॥

कंप पावत है वृद्ध सरीर ॥
दृष्टी कम है कर्ण बधिर ॥
पर मन मे मेरे है रघुवीर ॥2॥
अपार आधार रघुनाथ एक ॥
अपार आधार रघुनाथ ॥

जो जो किया जीवन मे नेक ॥
मन को बस उसकी हो टेक ॥
श्रीरामनाम सुमिरण हो साथ ॥3॥
अपार आधार रघुनाथ एक ॥
अपार आधार रघुनाथ ॥

हो तन खीना पर मन शांत पवित ॥
अंत समय वहा पांऊ श्रीभगवंत ॥
जम आये तो जाए खाली हाथ ॥4॥

अपार आधार रघुनाथ एक ॥ अपार आधार रघुनाथ ॥

297. जाहलो सुखरूप

संत श्री गुरु नामदेव महाराज नेहमी म्हणायचे की आपण दुःखात देवाला आळवतो पण सुखी आनंदी असताना जर आपण देवाला मनातल्या मनात सतत आळवले तर आपणच पूर्ण सुखरूप होऊन जाऊ. □

जाहलो आम्ही सुखरूप॥
पाहुनी तुझे नित निजरूप॥धृ॥

जरी तू विठ्ठला अति सुंदर अनुपा॥
तव सौंदर्यामाजी तू अद्वय अरुपा॥1॥

ब्रह्मांडी घालून हा द्वैताचा मेळ ॥
तू चालविसी हा सगुणाचा खेळ॥2॥

तुझिया कृपेने सर्व होईल विठ्ठल ॥
पाहीन अद्वैत जिथे जाईल मन॥3॥

सुखदुःख सारी गेलो विसरून॥
मी-माझे-मला गेले विरघळून ॥4॥

श्रीगुरु मज नेतील त्या शून्याच्या पार ॥
तिथे माझे मन तव चरणी लीन लीन॥5॥

298. रोज तुझे दर्शन घेता..

एका परम तत्वाच्या शिवाय खरं तर काही सुचलंच नाही पाहिजे पण माया भारी दुस्तर आहे त्यासाठी श्री ईश्वर चरणी ही कळकळीची विनंती आहे.

रोज तुझे दर्शन घेता
नयनी अश्रू ओघळू दे

रोज तुझे दर्शन घेता
मन चरण समर्पित होऊ दे

रोज तुझे दर्शन घेता
पंचप्राण ते उजळू दे

रोज तुझे दर्शन घेता
बुध्दी अद्वय होऊ दे

रोज तुझे दर्शन घेता
भक्ती उचंबळून येऊ दे

रोज तुझे दर्शन घेता
मनी श्रीराम प्रकटू दे

रोज तुझे दर्शन घेता
तुझी अशी कृपा होऊ दे

देवा मला श्रीगुरु भेटू दे
देवा मला श्रीगुरु भेटू दे

299. कोण तू कुठलासा तू...

कोण तू कुठलासा तू
काय तुझे अस्तित्व आहे

काय तुझे स्वतःचे
जे तू इथे आणिले आहे

भाव मी पणाचा पहा
हक्क त्यावर तुझा नाही

शरीराचा कण न कण
तुझ्या मालकीचा नाही

मन अन बुद्धी उर्जा
वैभव आहे विश्वाचे

तू भिकारी कोटी जन्मांचा
काय इथे तुझ्या मालकीचे आहे

तू कुणीच नाही कधीच नाहीस
आभास उठले अस्तित्वाचे

मृत्यू पलिकडे पहा जरा
अमृतमय जग आनंदाचे

शरणी येशील श्रीगुरु चरणी
घे ओंजळीत दान अनंताचे

एक परब्रह्म तू कुणीच नाही
शून्याच्या अंगणी आभास क्षमतांचे

मी पणा चा भाव जाता
स्वस्वरूपी उरेल रुप परब्रह्माचे

300. प्राणांना तळहाती घेऊन

प्राणांना तळहाती घेऊन
टाकुनी सागर सहज पाठीवर
जिद्दीची ती परिसीमा गाठून
पेटविला संग्राम स्वातंत्र्याचा

साखळदंडा पुरते विरघळवून
शौर्य शब्दांची माला गुंफून
भिंतींचा तो कागद करून
आग लावली पारतंत्र्याला

मातृभूमीच्या चरण सेवेत
त्यागिला मान सन्मान संसार
ठेवली ज्याने धगधगती क्रांती ज्वाला
शिरसावंच नमन त्या स्वातंत्र्यवीराला
शिरसावंच नमन त्या स्वातंत्र्यवीराला

301. घर माझे ...

जगात कुठेही गेलो तरी आपल्या घराची आपल्याला सतत ओढ असते. पण हे विटा सिमेंटचे घर आपले मूळ घर नाही असे संत म्हणतात. मग आपले मूळ घर आपण विसरलो तर नाही ना...चला पाहूया...

पैलतीरी निर्गुण निराकार माझे घर॥
अलिकडे विश्व सारे सगुण साकार॥

शून्याच्या पल्याड अनंत निरंजन॥
अलिकडे मायेचे नित्य गुण अवगुण॥

नसे घरी माझ्या इच्छा वासनांचा मल॥
अलिकडे त्याच्या सर्व आकार विकार ॥

घरी माझ्या निश्चित मी हो सदानंद ॥
अलिकडे ममत्व षड्रिपु हो फार॥

घर माझे अवघे परम ज्ञान विज्ञान ॥
तिथे चैतन्य-प्रकाश असे स्वसंवेद्य ॥

घर माझे हृदयी नित्य अमृताचे निधान ॥
मार्ग हा जेथे रुजे श्रीगुरु संताची वचनं॥

घर माझे निकट ते परब्रह्म स्फुरण ॥
माझ्यातची पावले मज पुर्णाचे पुर्णत्व ॥

302. परब्रह्म पिता

आम्ही पुत्र आमुचा परब्रह्म पिता ॥
पिंड हा स्वसंवेद्य खोत चैतन्याचा ॥ ध्रु ॥

वंश आमुचा अद्वय अनंतभावाचा
परि देही इथे हा जीवभाव दाटला ॥ 1 ॥

बंधु आमुचे पंच दूत पंच प्राण
बहीण सदा बुद्धी सदसद्विवेक ॥ 2 ॥

आई आमुची ब्रह्म शक्तीचा पसारा
ओज सगुणाचे दिले तिनं आम्हाला ॥ 3 ॥

प्रसवूनि तिच्या दिव्य क्षमतांंना
ठेविले सदा ब्रह्म सन्मुख आम्हाला ॥ 4 ॥

अद्वयी ती प्रकटली परमानंद जाहला
दाविला बाप अद्वयी ऐसा तिने आम्हाला ॥ 5 ॥

केला तिने अहं आमुच्यातूनी वेगळा
परब्रह्म चरणी तिचा समर्पण सोहळा ॥ 6 ॥

कुठे हो द्वैत सर्व अद्वैताचा हो पसारा
जीवभाव ऐसा या निरंजनी निमाला ॥ 7 ॥

303. याचसाठी केला आहे अट्टहास

याचसाठी केला आहे अट्टहास
म्हणूनी हा मानव देह असा लाभला

याचसाठी केला आहे अट्टहास
राम नाम घोष सदा मुखी यावा

याचसाठी केला आहे अट्टहास
हरीरस तृप्तीने आत्मभाव हरपावा

याचसाठी केला आहे अट्टहास
विश्वार्त ध्वनी हृदयातून उठावा

याचसाठी केला आहे अट्टहास
कीर्तनी पाहु दे संतांचा मेळा

याचसाठी केला आहे अट्टहास
प्रेमाला सुगंध समर्पणाचा यावा

याचसाठी केला आहे अट्टहास
ऐकावे बोलावे श्रीगुरु वचनाला

याचसाठी केला आहे अट्टहास
जीवन मिळावे श्रीगुरु चरणाला

304. होऊ दे प्रेमवर्षाव

होऊ दे प्रेमवर्षाव मेघ मल्हारा
माझा देव मम हृदयी हो प्रकटला

आनंदघन नभ हा मनी दाटला
गोविंद रस अमृत वर्षाव जाहला

निमाली माझी जन्मजन्मांतर तृष्णा
भवसागरी मम ऐसा फेरा चुकविला

शब्द प्रकटले श्रीगुरु प्रसाद मिळाला
श्रीगुरु चरणी माझा हा जीव विसावला

व्हावा ऐसा दिव्य समर्पण सोहळा
कोटी सूर्य प्रकाश ज्योतीस ज्योत मिळता

होऊ दे प्रेमवर्षाव मेघ मल्हारा
माझा देव मम हृदयी हो प्रकटला

305. चैतन्य स्पर्श ...

चैतन्य स्पर्श...एक चिंतनशील वैचारिक प्रयोग...

आपण आपल्यातील चैतन्याला स्पर्श करू शकत नाही कारण ते अद्वैत तत्त्व आहे. पण जेव्हा आपण नमस्कार करण्यासाठी हात जोडतो तेव्हा तळहातांना स्पर्शाची जाणिव होते. त्या जाणिवेची पार्श्वभूमी आपले चैतन्य म्हणजे आपण स्वतः असतो.

स्पर्श शरीरापूतांच मर्यादित आहे पण जाणिव चैतन्याने भरलेल्या आणि भारलेल्या मनाला होते. आपणच आपल्या मनामध्ये चैतन्य रुपाने असतो. जाणिवेच्या पल्याड आपण स्वतः चैतन्य स्वरूप असतो.

आता ज्याच्यामुळे स्पर्श निर्माण झाला ते शरीर आणि स्पर्शाची जाणिव ज्याला झाली ते मन दोघे आपल्याहून वेगळे आहेत असे सुस्पष्ट दिसते अन्यथा हे वर्णन आपण करू शकलो नसतो.

आता उरले चैतन्य म्हणजे आपणच स्वतः. पण आपण तो स्थूल स्पर्श आणि जाणणारे सूक्ष्म मन याहून वेगळे आहोत. आपल्याला वेगळेपणाने जाणण्यासाठी आपल्याकडे माध्यम नाही आणि ते जाणलेही जाणार नाही कारण ते तत्त्व स्वसंवेद्य आहे.

म्हणजे स्थूल स्पर्शाच्या माध्यमातून आपण स्थूल सूक्ष्माच्या पलिकडे स्वसंवेद्य तत्त्वापर्यंत म्हणजे आपल्या स्वरूपापर्यंत विचारांच्या सहाय्याने सहज पोहोचलो.

आता श्रीगुरू कृपेने हा विचार नाहीसा झाला की निव्वळ चैतन्य म्हणजे स्वस्वरूपानुभव येईल. पण त्या दिव्य सोहोळ्याचे निरीक्षण करणारा निरीक्षक अहं तिथे नसेल.

अशा रीतीने गंध, चव, श्रवण, दृश्य, वाचा यांच्या अनुभव क्रियेच्या माध्यमातून आपण आपल्या चैतन्य स्वरूपापर्यंत पोहोचतो.

आता प्रत्येक अनुभवात चैतन्य सुस्पष्ट दिसते आहे. आता गुंतून कुठे रहायचे ते आपणच ठरविले पाहिजे.

मन पंचेंद्रिये तेथे गुढ चैतन्याचे॥

दृश्या माजी चैतन्य पहावे॥

स्पर्शा माजी चैतन्य स्पर्शावे॥

गंधातून ते चैतन्य गंधावे॥

श्रावणात चैतन्य ऐकावे॥

वाचेतूनी चैतन्य बोलावे॥

अणुरेणूच्या उदरी पहावे॥

ते तेथे घर अद्वय ऊर्जेचे॥

परि प्रकृती सजे कोणत्या सगुणे॥

परम पुरुष सदा प्रकृतीसंगे॥
मनातूनी चैतन्य असे हे पसरले॥

कर्ता भोक्ता अहं मनी प्रकटे॥
अद्वयी ब्रह्मांडे द्वैत पहातसे॥

माझिया श्रीगुरु ज्ञानदेवा वचने॥
पासष्ट अनुभवे श्रीचांगदेव व्हावे॥

भेदूनी सगुण सकल प्रकृतीचे॥
अद्वयी अद्वय होऊनी रहावे॥

306. काहीच नाही घडले...

एकदा का जीवाला मुक्ती मिळाली की सर्व काही स्वप्नवत होऊन जन्म जीवन मुक्तीचे प्रयत्न असे काहीही घडलेच नसल्याचे अनुभव येतात व आपण कधीच बंदिस्त नव्हतो असे अनुभव ग्रंथांमध्ये वाचावयास मिळतात. त्यावर आधारित ही रचना...

तपे तापली काया मन केले मोकळे॥
लावूनिया चिताभस्म ॥
राहिलो होऊन चैतन्याचे ॥
जसे इथे काहीच नाही घडले॥

पिंडी ब्रम्हांड ते उमजले॥
देखिल्या त्या अनंत क्षमता॥
पाहतो स्वप्न इथे ॥
जसे इथे काहीच नाही घडले॥

श्रीगुरु कृपे वैराग्य ल्यायले ॥
द्वैती पाहीले अद्वैताला ॥
परि अद्वैताचे गावी ॥
तिथे काहीच नाही घडले॥

काया वाचा बुद्धी मने॥
कोंदणी सजविले सात्विकतेला॥
शून्याच्या उंबरठ्यावर पहा ॥
जसे इथे काहीच नाही घडले॥

आत्म्याचे ते बंध हो तुटले ॥
प्राण वाहीले श्रीरामाला ॥
अहं हा आता गेला कुठे ॥
जसे इथे काहीच नाही घडले॥

तपे जाळूनी काया मन केले मोकळे॥
लावूनिया चिताभस्म ॥
राहिलो होऊन चैतन्याचे ॥
जसे इथे काहीच नाही घडले॥

307. श्रीगुरु माझे पाठीराखे

श्रीगुरु माझे पाठीराखे
ते झाले मायबाप॥

भव सागरी तारले मज
अजाण मी त्यांचा बालक ॥1॥

शून्यातून उपजे हा पिंड
काया सगुणाचा अंगरखा॥

श्रीगुरु वचन जाण
वसे ब्रह्मचैतन्य आत बाहेरा ॥2॥

मज काय हवे
ते त्यांसी हो ठाऊक॥

पुरवितसे भक्तीचा
हट्ट माझा अलोट॥3॥

विज्ञानाचा भरवूनिया घास
देई सवे शबदामृताचे पान ॥

वस्त्र जरतारी कीर्तनाचे
त्यावर समर्पणाचा साज ॥4॥

कृपादृष्टी झाली त्यांची
मज ठेविले चरणांसी॥

काय वर्णू आता
मम हृदयातील श्रीहरि॥5॥

308. चित्त माझे विसरेना तुला...

चित्त माझे विसरेना तुला ॥
का तू विलंब लावितसे देवा ॥ध्रु ॥

निर्गुणाच्या कोऱ्या पाटीवरी॥
सगुण ब्रह्म तू नाहीस का देवा॥1॥

विश्वाच्या महाउर्जेमधला ॥
परम प्रकाश तू नाहीस का देवा ॥2॥

आर्त माझे भाव तव चरणी
भावभुकेला तू नाहीस का देवा ॥3॥

श्रीगुरुवाणीचा तू लावलासि लळा
अमृताहूनी गोड तिथे तू नाहीस का देवा ॥4॥

चरण तुझे उरधार मी जपतो
कोणत्या उपाये शरण येऊ तुजला ॥5॥

मन बुद्धी शरीर प्राण असे तू
तुजवीण आता उरले काय देवा ॥6॥

जातील कधी मम प्राण जरी
तव चरण नाही सोडणार देवा ॥7॥

चित्त माझे विसरेना तुला
का तू विलंब लावितसे देवा॥ ध्रु ॥

309. मातपित्यांचा मिळता आशिष

मात पित्याचा मिळता आशिष
नाम मिळाले हरिचे ॥
झाला कुलोद्धदार जीवनी
ते धरिता चरण जगदिशाचे ॥ ध्रु ॥

वस्त्र दिले मातेने
ती आवड कीर्तनाची ॥
अन्न दिले पित्याने
मुखी नाम हो हरीचे ॥

झाले मायबाप श्रीगुरु
दिला आसरा भक्तीचा ॥
तृष्णा जन्मांतरीची मिटे
पाहिले ब्रह्म ब्रह्माचिया खुणे ॥

मायबाप सदा माझ्या सवे
ते अद्वैत चैतन्य पिंडाचे ॥
हृदयी हरिचरण पाहीन
सफल होतील आशिष तयांचे ॥

310. शक्ति तुझी

शक्ति तुझी
तुझे चैतन्य
मी तुझ्यातून

बुद्धी तुझी
गती तुझी
बाजी अहंची

जीवन तुझे
मानिली मालकी
भ्रांती अशी

सुख दुःखात
धावून पळून
थकला जीव

पीळ हृदयी
अश्रु गंगौघी
टाहो गगनी

विरह चित्ती
माथा चरणी
समर्पण सर्वस्वी

श्रीगुरु भेटता
पाहीन मी
तुज माझ्यातूनी

तुज भेटता
ईश्वरा सखया
होईल मी
स्वस्वरूपी अद्वया

311. तु मेरा प्राण सखा...

कधी कधी गाण्याच्या ओळी सुचण्याआधी संकल्पना अवतरते. यावेळी असेच झाले. त्या संकल्पना आधी लिहील्या आणि नंतर रचना झाली. संकल्पना मातृभाषेत आली आणि दोन दिवसांनी रचना हिंदीतून. मी फक्त टायपींग केले.

तुझ्या प्रती मजला एवढी आर्त ओढ दे ईश्वरा की माझे अश्रु पाहून तू सद्गदित होशील.

दे इतनी आंस तेरी कृष्णकन्हाई ॥
आंसू देख के मेरे तू निहाल हो जाई।1।
तू मेरा प्राण सखा ॥ प्रभू तू अंतर्यामी ॥धृ ॥

माझं तुझ्या प्रति होत असलेले समर्पण इतक सुंदर होऊ दे ईश्वरा की तुझ सौंदर्य त्यापुढे फिके पडेल.

सुंदर मोहन तेरी सुरत सुहानी॥
ऐसे नीव नीव मै लागू तेरे पाई॥
हो सुंदर तुझ से मेरी कुर्बानी।2।
तू मेरा प्राण सखा ॥ प्रभू तू है अंतर्यामी ॥धृ ॥

नीव नीव = अतिशय विनम्रतेने

माझी वाणी व भक्ती इतकी अवीट गोडीची कर ईश्वरा की
तुझ्या अमृताचा तुला विसर पडेल. आणि मी त्यामध्ये सामावून जाईन.

ऐसी बाणी भाव भगत कर मीठी॥
प्रभ तू तेरा अम्रित भूल जाई।3।
तू मेरा प्राण सखा ॥ प्रभू तू है अंतर्यामी ॥धृ ॥

तुला तुझे अनंत तत्व नाही समजणार ईश्वरा.. तू माझ्यामध्ये ये
आणि माझ्या नजरेतून पहा आणि माझं कल्याण कर.

तू ना जाणिया तू है अपार॥
नजर से मेरी देख उस पार॥
गोविंद मेरा कल्याण हो जाई ।4।
तू मेरा प्राण सखा ॥ प्रभू तू है अंतर्यामी ॥धृ ॥

तू करुणेचा कृपेचा अथांग सागर आहेस. ईश्वरा तू या मदस्वरूप लाटेला
तुझ्या सागरात विलीन कर आणि मला तुझे संपूर्ण दर्शन दे..त्यात मी सामावून जाईन.

मैं लहेर, किरपा सागर मुरारी।
जब सागर लहेर मिल जाई।
तेरा दर्श मुझे तुझ मे समाई ।5।
तू मेरा प्राण सखा ॥ प्रभू तू है अंतर्यामी ॥धृ ॥

या मायेत फिरणाऱ्या असंख्य उर्जा कणांनी माझ्या भोवती त्यांच्या
गुण अवगुणांचा जणू फेर धरला आहे आणि तुझ्या चैतन्यरूप प्रकाशात मी ते पहात आहे.
तु माझ्या चैतन्यात अवतरीत हो म्हणजे मी मायेतून तुझ्यासह मुक्त होईन.

यह माया सब तेरे जोरे।
गुण अवगुण के लागे फेरे।।
जब आवे तुम मेरे चित।
ता माया पार हो जाई।6।
तू मेरा प्राण सखा ॥ प्रभू तू है अंतर्यामी ॥धृ ॥

तुझ निर्गुण तत्त्व तू नाही जाणू शकणार ईश्वरा..तू तुझ्या प्रती वेपरवाह आहेस.
तू माझ्या मनाचा शून्य उंबरठा तयार कर आणि तिथून तू तुझे निर्गुण तत्त्व पहा
म्हणजे मी ही पुन्हा तुझ्यासह निर्गुण होऊन जाईन.

तेरे गुण तुझसे है परेहे।
तू बैठ शून्य मन के दहेले।।
हे पारब्रह्म परमेश्वर स्वामी।
तू खुद देखे ता मै समाई जाई ॥
तू मेरा प्राण सखा ॥ प्रभू तू है अंतर्यामी ॥धृ ॥

तू पाहीले पाहीजे. मी काय पहाणार? मी भ्रमांध आहे.

312. कर्म जळाली...

ज्ञानरूपी ज्योतीच्या परम प्रकाशात अज्ञान नेमकं काय, कशाला म्हणतात अन कशातून निपजतं, हे पाहणं झालं की, ते असार म्हणून सहजच बाजूला पडतं आणि मग पुढे होणारी विवेकाधिष्ठीत कर्म बाधत नाहीत. पूर्वीची अज्ञान वश झालेली कर्म व फळे या ज्ञान ज्योत तापाने जळून जाऊ लागतात.

जळाली जळाली
सर्व कर्म जळाली
देखिले अज्ञान
सर्व कर्म जळाली॥ धृ ॥

स्वामी तिन्ही जगाचा
वसे हृदयांतर्यामी
कृपेने तयाच्या
विज्ञान ज्योत उजळली ॥1॥

ब्रह्मात अखंड वाही
महाउर्जा अशी ती
अवस्थांतर तिचे सदा
मज वास्तव भासविती॥2॥

आभास मी पणा चा
जगतो या संसारी
त्याच्या सर्व वृत्तींना
राही ब्रह्म सर्व साक्षी॥3॥

नको पश्चाताप
विसर षड्रिपू फास
ते होते एक दुःस्वप्न
आत्मभानी जाग आली॥4॥

श्रीगुरु चरण कमल
तिथे होई ब्रह्म दर्शन
मायेचे उर्जा वादळ
न आता भिवविती॥ 5॥

आता योग क्षेम
आता कर्म विवेक
आता भक्ती अनन्य
श्रीगुरु चरणांशी॥ 6॥

जळाली जळाली
सर्व कर्म जळाली
देखिले अज्ञान
सर्व कर्म जळाली॥ धृ ॥

313. ਪ੍ਰਭ ਬਿਨ ਨਾਹੀ ਕੋਈ ਦੁਜਾ

ਸਤਨਾਮ ਸ੍ਰੀ ਵਾਹਿਗੁਰੂ॥

ਪ੍ਰਭ ਬਿਨ ਨਾਹੀ ਕੋਈ ਦੁਜਾ॥
ਕਰਤਾ ਧਰਤਾ ਤੂ ਪ੍ਰਭ ਮੇਰਾ॥1॥

ਪ੍ਰਭ ਬਿਨ ਨਾਹੀ ਕੋਈ ਦੁਜਾ॥
ਕਰਤਾ ਧਰਤਾ ਤੂ ਪ੍ਰਭ ਮੇਰਾ॥1॥

ਕਰਤੇ ਕਾ ਹੋਈ ਸਦਾ ਸਹਾਰਾ॥
ਸ਼ਰਣ ਹਰਿ ਚਰਣ ਦੇਵਹੁ ਆਸਰਾ॥2॥

ਕਰਤੇ ਕਾ ਹੋਈ ਸਦਾ ਸਹਾਰਾ ॥
ਸ਼ਰਣ ਹਰਿ ਚਰਣ ਦੇਵੋ ਆਸਰਾ ॥2॥

ਅਦਵੈਤ ਤੂ ਤੇਰੀ ਮਾਇਆ ਦੁਤਿਆ॥
ਮਾਇਆ ਵਿਚ ਖੇਲ ਤੂਨੇ ਰਚਾਇਆ॥3॥

ਅਫ਼ੈਤ ਤੂ ਤੇਰੀ ਮਾਯਾ ਦੁਤਿਆ ॥
ਮਾਯਾ ਵਿਚ ਖੇਲ ਤੁਨੇ ਰਚਾਯਾ ॥3॥

ਮਾਇਆ ਡੋਲੇ ਤੂ ਪਰਮ ਪਰਗਾਸਾ॥
ਕਰਤਾ ਐਸਾ ਹੋਵੇ ਅਕਰਤਾ॥4॥

ਮਾਯਾ ਡੋਲੇ ਤੂ ਪਰਮ ਪਰਗਾਸਾ ॥
ਕਰਤਾ ਏਸਾ ਹੋਵੇ ਅਕਰਤਾ ॥4॥

ਕਰਤਾ ਅਕਰਤਾ ਪ੍ਰਭ ਇਕ ਮੇਰਾ॥
ਦਰਸ਼ ਪਾਇਆ ਨਾਨਕ ਗੁਰ ਪੁਰਾ॥5॥

ਕਰਤਾ ਅਕਰਤਾ ਪ੍ਰਭ ਇਕ ਮੇਰਾ ॥
ਦਰਸ਼ ਪਾਯਾ ਨਾਨਕ ਗੁਰ ਪੁਰਾ ॥5॥

314. ਧਾਰ ਮਿਤਰ

॥੧॥ ਓਮਕਾਰ ਸਤਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦ॥

ਧਾਰ ਮਿਤਰ ਯਹ ਐਸਾ ਜੀਵਨ ਹੈ ਭਾਈ।
ਮਨਮੁੱਖ ਤਰਸੇ ਗੁਰਮੁਖ ਤਰ ਜਾਈ॥
ਧਾਰ ਮਿਤਰ ਧਹੁ ਏਸਾ ਜੀਵਨ ਹੋ ਭਾਈ
ਮਨਸੁਖ ਤਰਸੇ ਗੁਰਮੁਖ ਤਰ ਜਾਈ

ਸੀਰੀ ਰਾਮਨਾਮ ਸਦਾ ਸੁਖਦਾਈ।
ਤਨਮਨ ਪਾਵਨ ਪੁਨਿਤ ਹੋ ਜਾਈ।
ਮਿਲ ਸਤਗੁਰ ਜਾਉ ਸਰਣਾਈ ॥1॥
ਸੀਰੀ ਰਾਮਨਾਮ ਸਦਾ ਸੁਖਦਾਈ
ਤਨਮਨ ਪਾਵਨ ਪੁਨਿਤ ਹੋ ਜਾਈ
ਮਿਲ ਸਤਗੁਰ ਜਾਯੋ ਸਰਨਾਈ

ਆਠ ਪਹਰ ਸੀਰੀ ਰਾਮ ਜਪਾਈ।
ਕਾਜ ਕਰੇ ਰਬੁਰਾਈ ਸਾਈ।
ਮਨ ਮੇਘਾ ਅਮਰਿਤ ਧਾਰ ਬਰਸਾਈ।
ਮੈਂ ਕੋਣ ਕਹਾ ਸਬ ਮਾਇਆ ਬਿਸਰਾਈ॥2॥
ਆਠ ਪਹਰ ਸੀਰੀ ਰਾਮ ਜਪਾਯੋ
ਕਾਜ ਕਰੇ ਰਬੁਰਾਈ ਸਾਈ
ਮਨ ਮੇਘਾ ਅਮਰਿਤ ਧਾਰ ਬਰਸਾਈ
ਮੈਂ ਕੌਨ ਕਹਾ ਸਬ ਮਾਇਆ ਬਿਸਰਾਈ

ਧਾਰ ਮਿਤਰ ਯਹ ਐਸਾ ਜੀਵਨ ਹੈ ਭਾਈ।
ਮਨਮੁੱਖ ਤਰਸੇ ਗੁਰਮੁਖ ਤਰ ਜਾਈ॥

315. भरम सुणिया, भरम बोलिया...

भरम सुणिया, भरम बोलिया ॥
सब किछ जाणिया
पर किछ नही पाया ॥ धृ ॥

वेद कितेब लखलाख पढीया
पंडित मुनी जन विवाद रचाया
तीरथ घुमा करमकांड कराया॥1॥

रोज भुलावत मोहिनी माया
भरम करत सुखदुख को पाया
मालिक बन के अहं रचाया॥ 2 ॥

जब तक हमने आम नही खाया
उचार उसका काम नही आया
वैसे प्रभ जाणे तो कैसे जाई पाया॥3॥

जब गुर सुणाई तब ही सुणिया
जब गुर बोले तब ही बोलिया
गुरप्रसादी जब रामनाम मन बसिया
तब माया भूलिया गुंगा होइ जाईया॥4॥

भरम सुणिया, भरम बोलिया ॥
सब किछ जाणिया
पर किछ नही पाईया ॥ धृ ॥

316. कित्येक जन्मी तो मी जाळला...

कित्येक जन्मी तो मी जाळला
राखच झाली ती नाही आली कामा

जळणार आता या जन्मीही मी
तो मी एक भास हे कळणार कधी

हा खेळ फसवा केवळ स्वप्नांचा
याचा आरंभ अंत फक्त शून्याचा

मनाला जे जे सत्य वाटे
ते ते सर्व आभास असे

इथे जरी सर्व काही घडते
परि बाकी शून्यची उरते

मी ना गर्भी ना मी जन्मी
मी ना जीवनी ना मी मरणी

मी कोण कोण मजला पुसता
कळे श्रीगुरु चरणीचा धुरळा

317. शेवटच्याच चार पायऱ्या...

चाल रे गड्या शेवटच्याच या चार पायऱ्या
संत म्हणती आता त्या राहील्या रे इतुक्या

ग्रंथ म्हणती लक्ष चौऱ्यांशी होत्या तिथे पायऱ्या
बघू नकोस माघारी ना दिसतील आता तुला त्या

पुढेही न दिसे काही, जाता तिथे पाहण्या
परि चाल पुढे श्रद्धेच्या, या चारच उरल्या पायऱ्या

पहिली पायरी संसाराची नको चुकूस कर्तव्या
देव देश अन धर्मासाठी झोकून दे तू सर्वस्वा

उपासनेसह साधू योग पायरीवर या दुसऱ्या
जा पार पल्याड सर्व श्रद्धा अश्रद्धांच्या

तिसरी पायरी जीवनाची बैस सवे तू संतांच्या
कर दृष्टी विकसित ऐकून कथा स्वस्वरूपाच्या

आता पायरी चवथी, धारण कर त्या वैराग्या...
श्रीगुरु सहाय्य मिळे तिथे, तू लांघ असे त्या शून्याला

संत म्हणती आता ना कुठे असे रे त्या पायऱ्या
परमानंद परमशांती तू पलिकडे विश्वस्वप्नांच्या

318. बसावे सुखासनी...

“ध्यान करताना काहीच करू नये आणि फक्त आत्मभानी सावध असावे” असे अनेक ग्रंथ साहित्यात नमूद केले आहे व यातील अनेक तज्ज्ञ असेच काही सांगतात. पण सतत काही तरी करत असणाऱ्या मनाला एकदम थांबविणे शक्य होत नाही. म्हणून त्याला असे काही तरी विशेष करावयास लावणे की जे विज्ञान आणि अध्यात्म यांना अनुसरून असेल. आपण सर्वच या स्वशोधार्थ निघालेल्या मार्गाचे पांथस्थ आहोत. त्यामुळे हे प्रयत्न व युक्त्या सर्वांच्या उपयोगात येतील व त्यामध्ये बदल करून आपण आपली पांथस्थ प्रणाली तयार करू शकू. ही प्रांजळ आशा मनी बाळगून इथे ही ईशकृपेने झालेली रचना देत आहे...

बसावे सुखासनी...

॥ बसावे सुखासनी होऊन शुचिर्भूत ॥
॥ ना पाळावे कोणते ते दिशांचे बंधन ॥

॥ घ्यावे नाम श्री प्रथमेशाचे ॥
॥ शुभ चिंतावे सकल विश्वाचे ॥

॥ आशिर्वाद घ्यावे सकल कुलदेवतांचे ॥
॥ आभार मानावे पूर्वजांचे अन पंचतत्वांचे ॥

॥ नयन मिटुनी जावे आराध्या शरण ॥
॥ घट्ट धरुनी श्रीसद्गुरूंचे चरण ॥

॥ आता मानावे आजूबाजूस शून्य ॥
॥ त्यात आपण केवळ ना कोणी अन्य ॥

॥ शून्यात असती विश्वाच्या क्षमता ॥
॥ सिद्धांत सत्य हा विज्ञान-वेदांताचा ॥

॥ मानावी आपुली मन-अहं-काया ॥
॥ जणू विश्वक्षमता त्या इथे प्रकटल्या ॥

॥ पंचसंवेदना अन अस्तित्वाच्या जाणीवा ॥
॥ घ्यावे दर्शन तयांचे त्या विश्वाच्या क्षमता ॥

॥ डोळयासमोर अंधार जाणीवेने पहावा ॥

॥ त्यात शून्यत्वाचा वेध तो साधावा ॥

॥ आता व्हावे सावध येथे ॥
॥ परि राहावे निश्चिंत तटस्थ ते तिथे ॥

॥ मनातील आंदोलन अन चाले स्मृतीशी ॥
॥ तीसुद्धा मानावी क्षमता त्या सृष्टीची ॥

॥ साधुनी अभाव भाव-प्रतिसादांचा ॥
॥ व्हावे अथर्व साक्षी त्या विश्वक्षमतांचा ॥
(अथर्व = स्थिर चित्त)

॥ मानावा शून्यत्वात पुंज स्वयं-क्षमतांचा ॥
॥ अदृश्य सर्वत्र परि अविष्कार जाणिवांचा ॥

॥ होता होईल तेवढे ते साधावे ॥
॥ शून्यावरुनी हळूहळू श्वासावरी यावे ॥

॥ जरी का तेथे वाटे कधी अस्वस्थ ॥
॥ ऐकावा सोहम होऊन आतून तटस्थ ॥

॥ ऐसा एकांत प्रशांत साधता ॥
॥ मंत्रोच्चारण करुनी साधावी विशुद्धता ॥

॥ मंत्रोच्चारण एक महाविश्वक्षमता ॥
॥ विश्वक्षमतांना प्राप्त होते तिथे ती शून्यता ॥

॥ मंत्रोच्चारण होता भोगावी ती प्रशांतता ॥
॥ तोच जाणावा साक्षात्कार आपुल्या आराध्याचा ॥

॥ ऐसे ते शून्य मानावे स्वस्वरूप ॥
॥ पल्याड वसती आपुले आराध्य निर्गुण ॥

॥ वाट पहावी तिथे आर्त हाक द्यावी ॥
॥ श्रद्धेच्या पलीकडे दृष्टी कायम ठेवावी ॥

॥ येईल वेळ निश्चित दृढ करावी भक्ती ॥
॥ दावील निर्गुण स्वरूप ती श्रीजगद्गुरु महाशक्ती ॥

या आधीच्या रचनेतील चार पायऱ्या “ऊर्ध्व मूल अधःशाखा...” प्रमाणे वरून खाली वाढत्या क्रमाने आहेत. सर्व संत ऋषी मुनी हे एक पायरी खाली आले आणि आपल्याला मार्गदर्शन करून गेले. संत तुकारामांसारखे काही संत गृहस्थाश्रमाच्या चौथ्या पायरीवर आले. पायरी ४ गृहस्थाश्रम, पायरी ३ व २ वानप्रस्थाश्रम आणि पहिली पायरी संन्यासाश्रम. तिसरी पायरी हा मनाचा orientation program आहे. त्यामुळे शक्य असल्यास ही पायरी गृहस्थाश्रमातही समाविष्ट होऊ शकते.

ज्यावेळेस आपल्या धर्माचे पतन होत होते. “ब्रह्म सत्यं जगद मिथ्या” मधील मिथ्या (असत्य नव्हे अनिर्वचनीय) शब्दाच्या विपरीत अर्थामुळे जेव्हा प्रयत्नवाद संपुष्टात येऊ लागला होता आणि इतर धर्मीय प्रखर टीका करत होते, तेव्हा श्रीजगद्गुरु शंकराचार्य यांनी असंख्य मुनींना एकत्र करून सनातन धर्माची संहिता तयार केली आणि सर्व ग्रंथसाहित्याचा एक आकृतिबंध तयार केला. त्याचे Cementing & Bonding होण्यासाठी स्वतः असंख्य रचना लिहिल्या. सनातन धर्माला पुन्हा अढळ स्थान प्राप्त करून दिले. या आकृतीबंधात प्रस्थान त्रयी अत्यंत महत्वाची मानली गेली आहे. वरीलप्रमाणे शेवटच्या तीन पायऱ्या म्हणजे या प्रस्थान त्रयीचा अभ्यास करणे आणि त्याचा अनुभव घेणे होय. मानव अवतारातून आपल्या मूळ स्वरूपाकडे प्रस्थान ठेवण्यासाठी ही प्रस्थान त्रयी साधकांना श्रीमदशंकराचार्यांनी सांगितलेली आहे. यामध्ये उपनिषदे हे श्रुती प्रस्थान, श्रीमदभगवद्गीता हे स्मृती प्रस्थान आणि ब्रह्मसूत्रे हे न्याय प्रस्थान असे भाग करण्यात आले आहेत.

प्रस्थान त्रयी...

परब्रह्म परमात्म ग्राम असे अद्वैताचे
करूया महाप्रस्थान तोडूनिया भवबंधने ॥१॥
कैसे सांगावे स्वस्वरूप साधकाशी ते आपुले
पडला प्रश्न ऐसा कित्येक मुनिजनां ते ॥१॥
सनातनधर्मा विरुद्ध उभे परधर्म ठाकले
श्रीजगद्गुरु शंकराचार्य तेथे ऐसे धावले ॥२॥
रचिली मुनिजनांनी एकशे आठ उपनिषदे
त्यास म्हणती साधका हे श्रुती प्रस्थान पहिले ॥३॥

भगवद्गीता लिहिली जी वदिली श्रीनारायणे

लिहिले स्मृती प्रस्थान दुसरे ऐसे हे साधकाचे ॥४॥

बादरायणे रचिली पाचशे पंचावन्न ब्रह्मसूत्रे

न्याय प्रस्थान ऐसे तयास मुनींनी संबोधिले ॥५॥

अनन्यसाधारण महत्व असे हे प्रस्थान त्रयीचे

तात्त्विक विवेचन तयात प्रवृत्ती अन निवृत्तीचे ॥६॥

सनातन धर्म झाला अद्वितीय अढळ ऐसे

प्रस्थान त्रयी ऐशी जणू मुक्तीद्वार ते साधकाचे ॥७॥

परब्रह्म परमात्म ग्राम असे अद्वैताचे

करूया महाप्रस्थान तोडूनिया भवबंधने ॥८॥

320. सोहळा मिलनाचा...

गातो गीत आपुल्या या अपूर्व विवाहाचे
आज सोहळा मिलनाचा, प्रभू तुज मी भेटे ॥धृ॥

उभा मंडप विवेकाचा माझे अंतर्यामी पहा तेथे
सजविला त्याला किती साधू संतांच्या त्या वचने -१

माझे वस्त्र वैराग्याचे तेज अनोखे अनोखे
माझे दागिने त्यागाचे किती तेजाने चमके -२

माझे यौवन ते ध्यान धीर गंभीर ते असे
निर्मल सौंदर्य पहा तू मन शून्यात ते वसे -३

मेंदी लावली रंगडून दया करुणेची पाने
रंग माझा हा उजळे सत्वगुणांच्या रे संगे -४

माझे शरीर असे हे प्रभू मंदिर प्रेमाचे
भेटता करीन अर्पण तुझिया चरणी ते -५

आज मंगल दिनी हात माझा श्रीगुरू हाती
देऊनिया दिव्य दृष्टी मज चालविती सप्तपदी -६

पेटविता यज्ञवेदी अग्नी द्वंद्वाचा हा उठे
अद्वैतस्पर्श होता तुझा, तव पूर्णत्व मी भोगे -७

अनंतमय होता आता माझे माझ्यात काही नसे,
सोहळा हा मिलनाचा जसे कधी झालाची नसे -८

गातो गीत आपुल्या या अपूर्व विवाहाचे
आज सोहळा मिलनाचा, प्रभू तुज मी भेटे ॥धृ॥

321. अंतरानुभूती प्रार्थना

निर्गुण रुपिणी तू परमात्मतत्त्व धारिणी
महाउर्जा महाशक्ती तू ब्रह्मांडोदरधारीणी
महाशून्या महातारा तू सकल विश्वतारीणी
सगुण रुप तू घेतले तव क्षमतांना प्रसवूनि
जीवांमाजी असे तू शिवचैतन्यधारिणी
प्रकटे रोमरोमातून तू सत्वरुप घेऊनी
अ-मनक्षेत्र स्थापिनी तू अहं-शवारूढिनी
षड्रिपु निर्दालिनी वासनेच्छा विनाशिनी
भवभ्रम तू हारिणि समत्वदृष्टी प्रदायिनी
आरोग्यशक्तीदायिनी तू मनोबुद्धीनिवासिनी
भुक्तीमुक्तीदायिनी अद्वैत तत्त्व विलासिनी
श्रीगुरुशक्ती साक्षात तू जागृत कुंडलिनी
श्वासात तू असे माझ्या स्वस्वरुपदर्शिनी
समर्पित सर्वस्व तुज, दे मज अंतरानुभूति
प्रणाम महामायाविनी तूज, प्रणाम महामायाविनी

322. आनंद

आनंद घन ॥ आनंद वनी ॥
आनंद बरसे ॥१॥

आनंद तन ॥ आनंद मन ॥
आनंदी भिजले ॥२॥

आनंद आत्मा ॥ आनंद सुखे ॥
अनादी आनंद जाहला ॥३॥

श्रीगुरु चरण आनंद ॥
श्रीगुरु सेवा आनंद ॥४॥

श्रीगुरु वचन आनंद ॥
श्रीगुरु आशिष आनंद ॥५॥

अल्याड आनंद ॥
आनंद पल्याड पावला ॥६॥

323. या झोळीचा संग सुटू दे...

या झोळीचा संग सुटू दे, संग सुटू दे रे, का कोंडीले अनंत इथे ॥
मज अथांग होऊ दे, अथांग होऊ दे, अथांग होऊ दे रे... ॥ध्रु॥

किती कष्टिली किती झिजविली संसारी काया रे... ॥
परि हात रिकामे रिक्त असा मी भक्त अभागी रे...११॥

तुटले बंध नाती तुटली दूर जाहले सगेसोयरे ॥
तूच बंधू सखा मात पिता अन तूचि श्रीगुरु रे ॥२॥

द्वंद्वाच्या या भांडवली हा विठ्ठल नामाचा व्यापार रे ॥
विठ्ठल घ्या हो विठ्ठल द्या हो तव नामाची ही वखार रे ॥३॥

324. श्रावण आला ग सखी हा...

श्रीगुरुबाणी मधील “सावन आया हे सखी” या राग मल्हार मधील रचनेवर आधारित त्याच राग मल्हार मध्ये सुचलेली ही मराठी रचना ...

श्रावण आला ग सखी हा ॥
हरि नामामृत आनंदघन बरसे ॥ध्रु॥

मन तन तृष्णा मिटे ग साजणी ॥
हरपले भान हरि प्रेमाने ॥१॥

श्रीगुरू प्रसाद मिळे या जीवनी ॥
अमृतधारा मनी बरसल्या ॥२॥

शिर उतरवूनी ठेविले ग चरणी ॥
अद्वय दाटले परमानंदे ॥३॥

325. जाळले जाळले...

जाळले जाळले अहंकाराला जाळले ॥१॥

आकाराला जाळले विकाराला जाळले ॥
मीपणा ला जाळले माझे पणाला जाळले ॥१॥

मनाच्या स्मशानी त्याच्याच इच्छा वासनांना जाळले ॥
त्याच्या वृत्ती प्रवृत्तीला जाळले मालकीच्या भावालाही जाळले ॥२॥

द्वैताला जाळूनिया अद्वैत भस्म अंगी लाविले ॥
श्री गुरू चरणी आता सर्व शून्य होऊनिया राहिले ॥३॥

326. दीनानाथा नारायणा

दीनानाथा नारायणा ॥
दीनानाथा नारायणा ॥ध्रु॥

रश्मी तव तेजःपुंज ॥
सकल ब्रह्मांड नायका ॥१॥

अन्नदाता अग्निदेवा ॥
भानू तू आदित्यनाथा ॥२॥

दया करा प्राणनाथा ॥
ममात्म तेज प्रकाशा ॥३॥

327. अनंत संत अवस्था...

संत श्री कबीरजी यांची निर्गुण भजने खुप भावतात, ज्यात त्यांनी त्यांच्या बंधमुक्त अवस्थेचं अतिशय सुंदर वर्णन केलं आहे. जसे “युगन युगन हम योगी..., सखिया वा घर सबसे प्यारा..., निर्भय निर्गुण गुण रे गाउंगा...” इत्यादी... त्यावर कळस म्हणजे पंडित कुमारजी गंधर्व आणि विदुषी कोमकली यांची सर्वोच्च दर्जाची गायकी... संत श्री गोरखनाथ यांची “शून्य गढ शहर, शहर घर बस्ती...” ही संत-अवस्थेचे यथार्थ वर्णन करणारी रचना पंडित कुमारजींनी अतिशय खुबीने गायली आहे. त्यांची गायकी आणि या संतांचे अमृतमय शब्द आपल्या मनाला एका वेगळ्याच जाणीवेपर्यंत घेऊन जातात. गुरुबाणीमध्ये तर ही मुक्तावस्था त्या संतांनी त्यांच्या आईला समर्पित करून लिहीली असल्याने अंतर्मनाला खोलवर स्पर्शून जाते. अशा या संत स्वरूपाच्या दिव्य वर्णनातून त्या संत स्वरूपाला प्रतीत करणारे काही शब्द सुचले. त्याचे सारभूत संक्षिप्तपणे इथे देत आहे.

अनंत संत अवस्था...

जे जाणायाचे ते जाणले गं माये,
आता अंतर्बाह्य श्रीराम पाहीले गं माये,

महाकारण ते होऊनी ब्रह्म स्वेच्छे पातले,
आपुल्याच शोधार्थ ते आपणची निघाले,

घेतली त्याने हाती पंचतत्वांची झोळी,
जाणीवांची त्याने मांडीयली गं खेळी,

निमित्त केवळ केले ऐसे सगुण स्वस्वरूपाचे,
पडिपु अन वासनांचे सोबत पेव जणू ते फुटले,

आपणची होऊनी श्रीगुरु अन ईश्वर आपणची,
आपणची आपणात जागवी शिष्यत्व जन्मोजन्मी,

श्रीगुरु-कृपे जाणियले ते जाळे हो आभासांचे,
स्थिर केले आत्मभान सगुणातून शून्यामध्ये,

मुक्तीचा हा योगमार्ग संत प्रशस्त करिती,

दोष सर्व दुर्लक्षुनी स्व-आत्मभान जागविती,

आता काया-मन-बुद्धी ते नसे संतांचे सामान,
होते केवळ ते निमित्त जागविण्या स्व-आत्मभान,

अनोळखी झाले भाव मी-माझे अन मला,
जाणीवा त्यागिल्या तिथे, नसे तू-तुझे अन तुला,

बांधियली मोट ऐसी आम्ही आमुच्या जीवपणाची,
रचूनिया सरण तिचे तिज आग लावली वैराग्याची,

साधनेत लोपली सिद्धी, साध्य एकत्वाचे साधले,
ब्रह्म देखिले, ब्रह्म ऐकिले, ब्रह्मस्वरूप होऊनी राहीले,

संता नाही त्याग अन नसे कुठे कुणाचा स्वीकार,
संता नाही द्वंद्व कुठे, अद्वयची ते जाहले प्रखर,

संता नुरला काळ, ना आदी, ना अंत,
आता रुप अरुपाच्या पल्याड संत होती दिगंत,

सहज सुलभ इथे योगी नांदती परमानंदे,
कोटी सूर्य तेज प्रशांत संत-हृदयी ते प्रकाशे,

मुक्त केले सुखे संतांनी त्या मुक्तीला,
निर्गुणाकडे नेती ते हा अनिर्वचनियतेचा हिंदोळा.

एखादं नातं असं असतं ना की फक्त त्या व्यक्तीचे कुठे तरी पृथ्वीवर असणं सुध्दा परिपूर्णत्व आणते. मन प्रशांत होते. मनात अपरिमित निरपेक्षता भरून रहाते. मग असे हे चैतन्यमय नातं ईश्वरीय आनंद निर्माण करते. जिथे सर्व निःशब्द होऊन रहाते. पण ही निःशब्दता कळविण्यासाठी आपल्याकडे कवितेशिवाय काय असू शकेल का?

निरपेक्ष तुझे नी माझे ॥
जुळले निःशब्द ऋणानुबंध ॥ ध्रु ॥

निःशब्दाची ही माझी खुण ॥
काव्यसुमनास ह्या माझ्या ॥
आहे तुझाच भावगंध ॥

निरपेक्ष तुझे नी माझे ॥
जुळले निःशब्द ऋणानुबंध ॥ 1 ॥

चैतन्याचे नाते आपुले ॥
अमृताहूनी गोड असे हे ॥
जणू श्रीकृष्णाचे हास्य मंद ॥

निरपेक्ष तुझे नी माझे ॥
जुळले निःशब्द ऋणानुबंध ॥ 2 ॥

नाते आपुले अनंताचे ॥
अद्वैताचे गं लेणे असुनही ॥
द्वैताचा का हा लागला छंद ॥

निरपेक्ष तुझे नी माझे ॥
जुळले निःशब्द ऋणानुबंध ॥ 3 ॥

चल श्रीगुरू चरणी ॥
वाहू सर्वस्व तिथे झडकरी ॥
भेटावया निर्गुण आत्मभान ॥

निरपेक्ष तुझे नी माझे ॥
जुळले निःशब्द ऋणानुबंध ॥ 3 ॥

329. अस्पर्शित मी

अस्पर्शित मी जीवांतील मी पणाने ...
Untouchable I am by the Self in all animates.

अस्पर्शित मी काया मन बुद्धीने...
Untouchable I am by body mind and intellect.

अस्पर्शित मी ज्ञानाज्ञानाने..
Untouchable I am by knowledge and ignorance.

अस्पर्शित मी भूजलाग्निवायूने...
Untouchable I am by earth water fire and air.

अस्पर्शित मी शून्य अवकाशाने...
Untouchable I am by the space

अस्पर्शित मी पंचप्राणाने...
Untouchable I am by five pranas

अस्पर्शित मी उर्मी वासना इच्छा भाव वृत्तीने...
Untouchable I am by instinct, desire, emotion and tendency

अस्पर्शित मी सकल वस्तूविषयाने...
Untouchable I am by all subjects and objects..

अस्पर्शित मी स्थळ काळ वेगाने...
Untouchable I am by position time and speed

अस्पर्शित मी जन्म जीवन जरा मृत्यूने
Untouchable I am by birth life and death

अस्पर्शित मी द्वैताद्वैताने...
Untouchable I am by duality and non-duality

अस्पर्शित मी परि आहे सर्वातर्यामी...
Untouchable I am but abode in every mind.

अस्पर्शित मी परि आहे जीवचैतन्याच्या कोशी...
Untouchable I am but reside in every conscious being.

कूटस्थ मी, परि आहे अनंताहूनी अनंत मी...
I am kutastha but infinite beyond infinity.

330. फरकाच्या पलिकडे

ना मज चिंता जग चांगले की वाईट ॥
का हा मी खेळ निवडीचा हो खेळ ॥

श्री गुरू माझी माय दिव्य ज्ञान तेज॥
सगुणी मज दावा हो अद्वैत नितळ॥

फरकाच्या पलिकडे माझिया गावांत॥
अद्वैताचा नी माझा होईल बा मेळ॥

जगदमाया ऐसी ती उर्जा ब्रह्मांडाची॥
भ्रान्ति विसंवादी माघारी घे माई सकल॥

त्यागुनी सर्वस्व इथे भोगितो जीवन ॥
भौतिकाचा संसार व्हावे स्वप्न ते केवळ ॥

331. काय सांगू खुण सखे ...

तुझे चैतन्य माझे चैतन्य सर्व जीवांचे चैतन्य ॥
याहून परमेश्वर नसे कुणी अन्य...॥

तुझा आनंद माझा आनंद सर्व जीवांचा आनंद ॥
असा हा परमेश्वर जणू आनंदाचा कंद...॥

काय सांगू खुण सखे तुझ्या माझ्या गं ईश्वराची..॥
लक्ष लक्ष सूर्य तेज प्रकाश परि छाया शीतलतेची॥

काय सांगू खुण सखे तुझ्या माझ्या गं ईश्वराची..॥
मनतनबुद्धी कणकण लखलखती..॥

काय सांगू खुण सखे तुझ्या माझ्या गं ईश्वराची..॥
मायबाप होउन तिथे खुण तयाने पटविली..॥

काय सांगू खुण सखे तुझ्या माझ्या गं ईश्वराची..॥
श्रीगुरु वचनी प्रकटे तो अमृतरस होऊनी..॥

काय सांगू खुण सखे तुझ्या माझ्या गं ईश्वराची..॥
दाटे ओतप्रोत प्रेम हृदयी सर्व जीवांप्रती..॥

काय सांगू खुण सखे तुझ्या माझ्या गं ईश्वराची..॥
निर्भय निःशंक मन समर्पित सदा ईश चरणांसी ॥

काय सांगू खुण सखे तुझ्या माझ्या गं ईश्वराची..॥
सर्व क्षमतांचा दाता सर्व जीवांत सर्वसाक्षी ॥

काय सांगू खुण सखे तुझ्या माझ्या गं ईश्वराची..॥
त्यानेच त्याचे नाव दिले आपुल्या गं ओठी..॥

काय सांगू खुण सखे तुझ्या माझ्या गं ईश्वराची..॥
चरणी मस्तक नयनी अखंड पाणी ॥

चात्रिक म्हणजे चातक पक्षी.

मै चात्रिक हरि होवे जलबुंद ॥
तृष्णा यह जाए कृपा करो हे गोविंद॥

जिह्वा होई श्रीहरि॥
नाम आए तेरा तुम हो बखसिंद॥
मै चात्रिक हरि होवे जलबुंद॥1॥

बखसिंद म्हणजे दाता.

आंखे होई श्रीहरि ॥
देखत जगत मे सभ सुख परमानंद ॥
मै चात्रिक हरि होवे जलबुंद॥2॥

ऐसो सभ मनतन जो होई हरि हरि ॥
हृद मे प्रभू कमलचरण पांऊ बिगसिंद ॥
मै चात्रिक हरि होवे जलबुंद ॥3॥

बिगसिंद म्हणजे उमललेले

सुनत कीर्तन मन लागो हरिछंद ॥
समाऊ मै हो जाऊ हरिअमृतगंध ॥
मै चात्रिक हरि होवे जलबुंद॥4॥

नासे किलविख तूटे सब भवबंध ॥
सुंदर माधव अलख अपार अनंत ॥
मै चात्रिक हरि होवे जलबुंद॥
तृष्णा यह जाए कृपा करो हे गोविंद॥5॥

333. प्रज्ञा दीपावली

देहाच्या कुडीत गं सखी,
पंचप्राणांचा हा सुगंध ॥

मनतनी दाटले चैतन्य
सदा ते परब्रह्म प्रकट ॥

मनरंगी रंगली रांगोळी
विचार सुंदर सात्विक ॥

पंच पक्वान्न गं मांडले
जणू हरी कीर्तन अखंड ॥

नव वस्त्र ते ल्यायले
श्रीगुरु संत शब्द नित्य ॥

लक्ष लक्ष प्रज्ञादीप ग्रंथी,
सखी दिव्य ज्ञानाचे ते तेज ॥

तेजःपुंज प्रकाशात गं सखी
माझा ज्ञानदेव समाधिस्थ ॥

प्रातःसमयी श्रीमुखी ॥
लावियले नवनीत ॥
महाआनंद ॥

काकड्याच्या प्राणज्योती ॥
ओवाळिला विठ्ठल ॥
महाआनंद ॥

कीर्तनाचा गजर ॥
पाझरे हरि नामामृत ॥
महाआनंद ॥

अभ्यंगस्नान देवांचे ॥
दहीदूध मध जलोष्ण ॥
महाआनंद ॥

वैराग्याचा कुंकुम तिलक ॥
नववस्त्रे सत्वगुण संपन्न ॥
महाआनंद ॥

त्रिकाळाचे काजळ ॥
चरणी भक्ती रुप चंदन ॥
महाआनंद ॥

सोळा विद्या चौसष्ट कलाहार ॥
परम ज्ञानयोग समाधी नैवेद्य ॥
महाआनंद ॥

पाहता रुक्मिणीसह पांडुरंग ॥
भरुनी वाहीले हृदयांतर ॥
महाआनंद ॥

हे मना...

राधेसम प्रेम कर
श्रीकृष्ण प्रकट होतील ॥
जे जे येईल ध्यानी तुझ्या
ते ते पवित्र होईल ॥

हे मना...

सीतेसम समर्पण कर
श्रीराम दर्शन होईल ॥
जीवन होईल सहज सुलभ
भवसागर तरून जाईल ॥

हे मना...

संतांसारखी भक्ती कर
ईशचरणी मस्तक राहील ॥
अमृत वचनांच्या धारेमध्ये
सदा तृप्त होऊन जाईल ॥

हे मना...

डोळ्यातून अश्रू यावे
आर्त अनंता पार जावे ॥
श्रद्धेच्या पलिकडे मना
देवानेच हाती हात घ्यावे ॥

आत्महत्येच्या अनेक बातम्या आपण ऐकतो. इतक्या टोकाला ह्या व्यक्ति का जातात. कारण पराकोटीचा अहंकार हेच खरे कारण आहे असे मला वाटते. हा अहंकाराचा अडथळाच काढून टाकला तर अपमान व नुकसान व अन्न नुकसान इत्यादी गोष्टी येऊन कुणाला धडकणार? नैराश्य येण्यासाठी तिथे कुणीतरी हवे ना! तिथे त्या मनात जर कुणी नसेलच तर नैराश्य कुणाला येणार?

तिथे त्या मनात कुणीही नसण्यासाठी मी माझे व मला यांना श्रीहरी चरणी समर्पित करून देवाचा विनम्र सेवक म्हणून आपण जीवन जगलो पाहिजे.

प्रत्येक दिवसाचा श्री गणेशा हा मी श्रीहरी चा सेवक आहे या भावनेतून झाला तर कितीही कठीण परिस्थितीत हातून चूक होणार नाही आणि आत्महत्येचा विचार सुद्धा मनात येणार नाही. मुळात कठीण परिस्थिती ही कठीण आहे असे वाटणार सुद्धा नाही कारण श्रीहरी सतत आपल्या निकट असणार आहे.

कोणत्याही विचारांची मालकी आपल्याकडे घेऊ नये. जशी ईश्वराची इच्छा असेल ते समजून आपण उत्कृष्ट योगदान द्यावे. मुळात श्रीहरीचे सेवक हा विचारच आपल्याला सर्व मानसिक दोष पासून सदा मुक्त ठेवतो.

श्रीहरि...

जयाचे मस्तक सदा श्रीहरी चरणी ॥
तयासि कष्ट ना कधी पडती जीवनी ॥

होता अश्रू अभिषेक सदा हरी चरणी ॥
तयाचे हृदयी नित्य वास करी श्रीहरी ॥

ऐसा दयेचा महासागर माधव मुरारी ॥
बोलवतो बोल हरी हरी तोची मज मुखी ॥

तयाच्या खेळाचा तोचि एक जाणता ॥
परम पुरुष तू अलख अपार विधाता ॥

स्वामी समर्थ तू जगाची गं माऊली ॥
आदी अंत तू आमुचा हात हाती धरी ॥

337. मेरे मन जप...

मेरे मन जप राम राम श्रीकृष्ण
जप राम राम श्रीकृष्ण ॥
माधव मुरारी मित
तेरे माधव मुरारी मित ॥

लख लख बार नित नित
लख लख बार नित नित ॥
जप राम राम श्रीकृष्ण ॥
तेरे माधव मुरारी मित ॥

मंगल मंगल सब जगत
जपत मदन मोहन गोपाल
जप राम राम श्रीकृष्ण ॥
तेरे माधव मुरारी मित ॥

आदी पुरख अलख अमित
सच सच सच साचा साहेब
जप राम राम श्रीकृष्ण ॥
तेरे माधव मुरारी मित ॥

आपले शरीर म्हणजे अर्जुनाचा रथ, अर्जुन म्हणजे आपण आणि चैतन्य म्हणजे श्रीकृष्ण होय. चैतन्याचे तेज आपले अनेक शत्रूंपासून रक्षण करत असते. युद्धभूमीवर श्रीकृष्ण अर्जुनाचा रथ बरोबर अशा ठिकाणी उभा करायचा की शत्रूसंघ अर्जुनाच्या प्रभावाखाली सहज यायचा. तसे श्रीकृष्ण रूपी चैतन्य आपल्याला जीवनात प्रत्येक विवेकपूर्ण गोष्टीची जाणीव करून देत असते.

जेव्हा श्रीकृष्ण रूपी चैतन्य तेज जाते तेव्हा हा काया रूपी रथ राख होतो. अगदी तसेच जसे अर्जुनाच्या रथातून श्रीकृष्ण उतरले आणि रथाची राख झाली.

आता एवढेच करायचे की माऊलींचा ग्रंथ वाचून त्या तेजाची पुन्हा स्थापना करायची आणि श्रीहरीला म्हणायचे जाताना मला या कायारूपी रथात ठेऊ नकोस अर्जुनाप्रमाणे मला आधी तुझ्या हाताने खाली उतरव.

पैलतीर...

काया जणू हा रथ त्यात मी अर्जुन ॥
तेजाचे तेज चैतन्य सारथी हरी साक्षात ॥

काय या जीवनी माझे मानू कर्म कर्तुत्व ॥
मी कठपुतळी माझा चालक हो श्रीकृष्ण ॥

किती वेळा हे षड्रिपू मजवर साधतात डाव ॥
संघर्षात या श्रीहरि परतवून लावतसे सर्व
घाव ॥

रथ अर्जुनाचा तेव्हा कोसळला क्षणात ॥
माधव मुरारी जेव्हा तिथे झाले पायउतार ॥

होण्यापूर्वी गतप्राण तैसे हे शरीर ॥
मज हाती धरुनिया श्रीहरि उतरवा पैलतीर ॥.

339. Oh my God

Let there be life Or Let there be a death...

I have been watching a movie that is rolling ahead...ll1ll

Incomprehensibility is an experience of this movie...

In the hurricane of duality, HE kept me towards lee...ll2ll

I surrender to my Guru staying in his abode....

Let the dream dissolve in your bliss oh my God...ll3ll

340. Listen to me I pray

Oh my beloved God,
Please listen to me, I pray...ll1ll

You are the saviour that
Shri Guru describe you and say...ll2ll

Your praises, verses and
Compositions always...ll3ll

Let it appear the supreme most frequency,
And Let my mind dissolve in it easily...ll4ll

I pray you not waiting for the next breath...
Let mayik vibe disappear whelming me with bliss and peace ...ll5ll

Let this prayer absorb my individuality,
So that let me escape to be your eternity...ll6ll

341. माया

मन म्हणजेच मायावी शक्ती तिच स्वतःचा अहं निर्माण करून तिचे स्वतःचे जीवन जगण्याचा प्रखर अनुभव निर्माण करते. वस्तुतः सर्व काही कर्तृत्व तिचेच आहे आणि आपण मी माझे मालकीचे म्हणून त्याचे नियोजन करण्यात जीवनाची इतिश्री मानतो. तिचा सेवक या नात्याने या कठपुतळीच्या खेळातून बाहेर पडण्यासाठी त्या महामायावी शक्तीच्या भक्तीमय क्षमतांचे दान तिलाच मागावे आणि तिला शरण जावे. ज्या श्री गुरू यांनी ही माया लांघिली त्यांना शरण जावे. सर्व रहस्य मायेने उलगडून दाखवावे आणि आपण सहजी महाकारणाच्या पार जावे. हीच प्रार्थना आहे.

वस्तू विषय शरीर मन अन बुद्धी ॥
त्यांची ती तुटावी आभासी गुलामी ॥

असे जोर अहं वासना इच्छा आसक्ती ॥
तरी बंध सारे ते सहजी पडावे तुटूनी ॥

षड्रिपु ते ऐसे व्हावे निष्प्रभ सहजी ॥
द्रष्टा दृष्य दर्शनाची संपू दे त्रिपुटी ॥

देखावा हा ऐसा मी पहावा दुरूनी ॥
डाव संपला जाहली निःस्तब्ध कठपुतळी ॥

पाप पुण्याची ती कल्पना विरावी ॥
सत्य असत्य द्वैत आता कुठे शोधू पाही ॥

कोण जन्मला हा कुठल्या जीवनी ॥
इथे कुणास रे बाधा असे त्या मृत्यूची ॥

अद्वैताचा अवघा पसारा मांडूनी ॥
परब्रह्म एक सजले जळीस्थळी काष्ठी ॥

आस होऊन राहू दे श्रीगुरू चरणांची ॥
माया ही ज्यांनी सहजी लांघियेली ॥

माया आता कृपाळू व्हावी जी ऐसी ॥
दाखवावा तिने भगवंत तिच्याच हृदयी ॥

अकारणे आता ते ऐसे हो करुनी ॥
राहू दे या जनसेवेत होऊनी अकर्मि ॥

342. कशी लाज ना आली...

कशी लाज ना आली मजला ॥
सुखलोलुप सत्ते मत्तेत जीव गुंतला ॥

मातीची घेऊन इंद्रिये अन मन उर्जा ॥
कोणत्या गर्वाने हा जीव इथे जन्मला ॥

जगावर स्व वासना इच्छा त्या लादल्या ॥
मी माझे म्हणूनी घोर अभिमान पोशिला ॥

अस्तित्व घेण्याचीही क्षमता नसताना ॥
मालकीचा भाव निर्मूनी जाहलो कर्ता ॥

षड्रिपुं सह सदा हा करूनी दोस्ताना ॥
वर्चस्वासाठी सतत पेटविले संघर्षाला ॥

तेव्हाच सत्य जेव्हाही माझी क्षमता ॥
बाकी मी धिक्कारीले ज्ञानविज्ञानाला ॥

मीच मोठा थोर अति हा पहा शहाणा ॥
मान अपमान जपतो प्रती क्षणाक्षणाला ॥

मायेने नागविले परि मद काही जाईना ॥
इतुके अज्ञान भरले ना जाणले मृत्यूला ॥

ऐसे मज नरासी मिळो सद्बुद्धी सत्वर ॥
श्रीगुरु चरणी हा जीव सहजी समर्पित व्हावा ॥

343. परब्रह्म प्रकटले

मनुष्याचे शरीर, मन आणि विवेकबुद्धी याशिवाय ईश्वर समजत नाही आणि ईश्वराला समजून त्याचेकडे जाताना त्या शरीर, मन आणि विवेकबुद्धीचा त्याग झाल्याशिवाय ईश्वराशी मिलन होत नाही. म्हणजे मायेच्या व्यक्त स्वरूपात येऊन तिच्यापासूनच तिने तिला सहजी सोडविता येणे हीच ती साधना झाली असे दिसून येते.

तिढा घालून गं मायेचा मायेने ॥
गुंतली स्वतःत ती ही अशी स्वेच्छेने ॥

स्वतःला करूनी व्यक्त इथे ॥
सगुणांचे ब्रह्मांड स्थापिले ॥

मनाच्या आभासी सत्यतेचे ॥
ठायी ठायी हो ठेले मांडिले ॥

तिज चैतन्य ते सहजी नाकळे ॥
परि फुलली त्यासह अंगांगाने ॥

जीवजंतूपासूनी अति बहु कष्टे ॥
मानवपण ते तिने प्रकटविले ॥

बुद्धीचे तिथे शिखर गाठले ॥
उत्सव केले सकल जाणीवांचे ॥

द्वैतावर डोलताना त्या कठपुतळीने ॥
जीवनातील ते अपूर्णत्व जाणिले ॥

श्रीगुरु ध्यायिता अति विवेके ॥
मुक्तीचे सदा मंगल गीत गायिले ॥

ऐसे मायाचि गिळता मायेने ॥
द्वैत तिचे त्या अद्वैती निमाले ॥

सोडूनी देता मीपण ते तिने ॥
तिच्यातूनी परब्रह्म प्रकटले ॥
तिच्यातूनी परब्रह्म प्रकटले ॥

344. गीत मुक्तीचे

चला मुक्तीचे हो गाऊ गीत ॥
राहू श्री गुरू चरणी समर्पित ॥

तृष्णा शमवू रामनाम जप ॥
भूक भागवू करु संकीर्तन ॥

कापड लेवू आपुले सुकर्म ॥
घेऊ आसरा श्रीसंत वचन ॥

वाणीतून प्रशांती प्रसवून ॥
ऐकू नाद हो दिव्य अनाहत ॥

त्यागातून ते भोग भोगून ॥
वैराग्य मन तनाचे साधून ॥

मालवू ते द्रष्टा दृष्य दर्शन ॥
ब्रह्मरंध्रि ती त्रिपुटी सांडून ॥

ऐसे करूया मुक्तीचा जागर ॥
सहजी पार करू भवसागर ॥

345. श्री गुरु ग्रंथ साहेब जी महिमा

सतशिष्यांच्या हृदयी तू वसे निरंतर ॥
श्रीगुरु सिध्द हस्ते लिहती दिव्य शब्द ॥

रचिता श्रीगुरु शब्द प्रभुवाणी महाग्रंथ ॥
गोडवा इतुका की तिथे फिके जाहले अमृत ॥

दिव्य ती श्रीगुरु वाणी श्रुती जाहल्या प्रसन्न ॥
सुरलयताल सुस्वरे प्रकटे श्रीगुरुमत संगीत ॥

भक्तीचे दाटले ऐसे श्रीगुरु महामहातेज ॥
कोटी सूर्य प्रभा तिथे होतसे निष्प्रभ ॥

ओवाळून टाकू ग्रंथी अवघे ते ब्रह्मांड ॥
अपार प्रेम बेअंत शब्दी सीमित जाहले अनंत ॥

काय वर्णू श्रीगुरु माझे दयाळ दयाळ ॥
प्रकटले साक्षात शब्द किर्तनी पारब्रह्म ॥

तुज गाता ऐकता ध्यायिता अष्टौप्रहर ॥
झाला जीवभावाचा क्षणात हा कल्लोळ ॥

ना शब्द आता ना फुटे रे आवाज ॥
कसे भाव सांगू तुज वर्णू दाटला हा कंठ ॥

सहजी श्रीगुरु चरणी होता नित्य समर्पण ॥
हरले संपले ते माझे थोटे मीपण ॥

संतांचिया खुणे दाव दाव मज हे विश्व ॥
दूजा भाव जाऊनिया मनी पाहू दे निरंजन ॥

346. घे परतुनी घे

तूझ्यातून तू केले निर्माण स्वतःला ॥
क्षमतांचा कल्लोळ खेळ संघर्षाचा ॥

निर्गुण तू परि ते पातले सगुणाला ॥
आता दाव दाव निर्गुण या डोळ्यांना ॥

अद्वैताच्या आकाशी डाव हा रंगला ॥
द्वैताचे वन उठले त्यात जीव हरवला ॥

घे परतूनि घे या तुझ्या जाणीवांना ॥
श्रीगुरुकृपे त्याग साधिन क्षमतांचा ॥

कणाकणात अद्वैत पाहू दे द्वैताच्या ॥
श्रीगुरु कृपे दिव्य दृष्टी प्रसाद मिळावा ॥

347. त्रिगुणातित ईश मेरा

त्रिगुणातित ईश मेरा हरि हरि गोविंद गोपाला ॥

हम त्रिगुणी के फास कठपुतली जिसे नचाए माया ॥

जाना हमने जाना हरी सब खेल तुमारा जाना ॥

तुम भुखे भावभगत कै हम तुम्हे पुकारे बिरहा बिरहा ॥

बुझावो जी भगवंत अब तुमरी यह संसार माया ॥

हम तेरे बारीक तुज पहे हम बली बली जांवा ॥

तुज पहे हम बली बली जांवा ॥

348. श्री गुरु महिमा

अंगावर शहारे डोळ्यात पाणी ॥
कंठ दाटून येतो श्री गुरु ॥
पाहता तुमची आत्मरस भक्ती ॥

आर्त तुमची ऐकून प्रकटले ॥
साक्षात परब्रह्म तुमचे हृदयी ॥
रचिले अभंग जैसे प्रकटे ईश्वर वाणी ॥

शब्द सामर्थ्य इतुके की स्वये ॥
धन्य धन्य जाहली श्री मां सरस्वती ॥
होऊन राहिली परम दिव्यार्थ प्रवाही ॥

जे ब्रह्म सदा अकर्ता अकर्मि ॥
तुमचेसाठी हो श्रीगुरु ॥
तुमचे हात तयाने स्वयं धरिले हाती ॥

सप्तसुर होऊनिया परब्रह्म ॥
संगीतमय घन अभंग बरसती ॥
सर्व जीव तृष्णेची क्षणात होते तृप्ती ॥

संतसाहित्य सारे साक्षात श्रीगुरु रूपी ॥
जे श्री अनंत निरंजन दर्शन सदा देती ॥
सदा वसो मम हृदयी ते
सदा वसो मम हृदयी ॥

349. मायेच्या कळा

संवेदना आणि अर्थ यांचा मेळ लागता ॥
क्षणार्धात हा मी मुकला आत्मभानाला ॥

साद प्रतिसादांमध्ये हा जीव असा गुंतला ॥
प्रत्येक वेळी जीवाला अहं गर्वाने पकडला ॥

का जाणवे प्रखर अनुभव ऐसे या जीवाला ॥
संत म्हणती जरी जीवन स्वप्नांचा हा सोहळा ॥

षड्रिपुंचे पेय पाजते माया क्षणाक्षणाला ॥
झिंगले मायेत जीव अज्ञानासी ठेचा लागल्या ॥

ब्रह्मानंद तिथे जाणिता मायेस या सकळा ॥
तिच हाती धरून हात दाविल त्या परब्रह्माला ॥

ऐसेची केले संतांनी जाणिल्या मायेच्या हो कळा ॥
द्वैत लोपून तिथे सगुणी जाहला ब्रह्मानंद मेळा ॥

350. ध्यास लागला

अखंड असा तो जणू ध्यास लागला ॥
हे विश्व साक्षात विज्ञान तेणै सजविले अध्यात्माला ॥
विज्ञानातून हा जीव पाही विश्व क्षणाक्षणाला ॥
अगम्य रहस्य जगदंबे तुझे ग असे महा ॥
मी शरण शरण सदा श्रीगुरु चरणाला ॥
विश्वखेळ खेळतो सदा हा हरि आपुला पहा ॥
निर्गुण उर्जेतून त्याने जुंपले विश्व सगुणाला ॥
परि संत म्हणती अजून विश्वची ना आले गा प्रत्ययाला ॥
देवाने ऐसे शून्यातून स्वप्नी सजविले त्या मायेला ॥
तिला देऊन असंख्य रुपे निर्मिले ज्ञान अज्ञानाला ॥
अणू गर्भात असे निर्गुण अद्वैत परि सगुण केले समुच्चयाला ॥
आता विज्ञान दावि सगुण सत्य ते उरले आभासाला ॥
देव तोच भक्त तोच गुरु तोच असे चेला ॥
सर्व अद्वैत निरंकार निरंजन हरि हरि हरि व्यापून उरला ॥

351. आत्मानंदी

कसे हे दाटले आर्त कवितेच्या मनी ॥
संग हा सोडून ती कुठे गेली अशी ॥

का तू धुंद ज्ञानेश्वरीच्या अमृतगंधात ॥
का श्रीकृष्णा संगे रासनृत्यी रंगली वृंदावनात ॥

का झालीस समाधिस्थ पैठणी नाथांच्या गाभाऱ्यात ॥
का भान हरपले देहूत तुझे तुकोबांच्या अभंगात ॥

का सिध्द पायरीवरी बैसलीस नामदेव हरीपाठी ॥
का हरवलीस जनी घरी संतांच्या मांदियाळी ॥

श्रीविठ्ठल दर्शनी तुझी खुण गं पटली ॥
चरणी त्यांच्या तुझी काव्यसुमने स्पर्शिली ॥

स्पर्शिता ती फुले तु गवसलीस गं अशी ॥
मम हृदयी तू मग्न तुझ्यातच तू आत्मानंदी ॥

352. दाव दाव नीजधाम

भक्तीमार्गावर चालताना मित्र कसा असावा आणि त्या मित्राकडून कोणती अपेक्षा ठेवावी यावर श्रीगुरूबाणी मध्ये अतिशय हृदयस्पर्शी शब्द आहेत. त्यावरून सुचलेली ही कविता. (अनुवाद नाही फक्त संकल्पना घेतली आहे)

दाव दाव नीजधाम...

आर्त घे मित्रा माझी तू समजूनी एक ॥
तुझ्या चरणी माझे मी वाहिले रे मस्तक ॥1॥

तू प्रिय सखा माझा थोरला गुरू बंधू ॥
बाप आपुला एक तो परब्रह्म परमेश्वर ॥2॥

मस्तकी मी लाविली तुझी चरणधुळ ॥
बली बली जातो तुझे हृदय अतिनितळ ॥3॥

आशिष मज दे श्रीगुरूकृपा व्हावी ऐसी ॥
हरिनामामृत ऐसे सदा यावे मज ओठी ॥4॥

तुज भेटले राघव ते प्रसन्न राजाराम ॥
मज ऐकव त्यांचे वैभव ॥
दाव दाव नीजधाम ॥5॥

353. कर माधव मजला

माधवा कृपाळा कर माधव मजला॥
ऐक विनंती माझ्या श्रीहरि गोपाला ॥

भवभय तृष्णा दुःख जाई लयाला ॥
माधव मुरारी जीव सन्मुख जाहला ॥

केलासि तू हा व्यवहार उधारीचा ॥
मज तुझा लडिवाळ ऐसा रे लाविला ॥

नामामृती न्हाऊनि म्या फेडले उधारीला ॥
द्वैतामाजी आता पाहतो अद्वैताला ॥

श्रीगुरु चरणीची धूळ मस्तकाला ॥
वैराग्य लेवूनी देह अवघा सजला ॥

माधवा कृपाळा कर माधव मजला॥
ऐक विनंती माझ्या श्रीहरि गोपाला ॥

354. भाग्य असे आमुचे

भाग्य असे हे आमुचे॥

माध्यम होऊ भगवंताचे ॥

जे जे तयास आवडीचे ॥

तेच असे जीवन कार्य आमुचे ॥

सत्कार्यातूनी मन निर्मळ व्हावे ॥

मनो आकाशी ब्रह्म तेज उजळावे ॥

लय व्हावे अस्तित्व अहंपणाचे ॥

समर्पण व्हावे श्रीगुरु कृपेने ॥

ईशचरणी सदा मम मस्तक झुकावे ॥

355. माधव मुरारी कृष्ण सखा

माधव मुरारी कृष्ण सखा ॥
वाहतो मस्तक तव चरणा ॥ धृपद ॥

मज हात हाती धरूनिया ॥
तोडीशी मम भवबंधना ॥1॥

तू दयाळा हरी तू कृपाळा ॥
मम जीवन प्राणाधारा ॥2॥

गोविंदा गोपाळा गोविंदा गोपाळा ॥
तुझा लडिवाळ मज लागला लागला ॥3॥

356. श्री कुण्डलिनी माता

मूलाधारी वसे श्रीकुण्डलिनी माता ॥
चैतन्याची साम्राज्ञी आई श्री जगदंबा ॥

ईडा पिंगला विशुद्ध होता सुषुम्ना ॥
सप्त चक्रांतूनी जाई ऊर्ध्व मार्ग तिचा ॥

महायोग श्रीगुरु कृपे लाभतो जेव्हा ॥
गाढ समाधी तिथे परम जागृत अवस्था ॥

आहे परब्रह्माची सदा आस तिला ॥
मिलनाशी धावे सहस्रदल कमला ॥

सिद्ध तो ब्रह्मानंदी प्रशांत जाहला ॥
शक्ति भेटे तिथे जेव्हा त्या शिवाला ॥

ऐसा तो सिद्ध सदा पावे निर्वाणाला ॥
मुक्तीचा जणू तो चिरंतन महासोहळा ॥

म्हणूनिया सत्त्वरी श्रीगुरु चरणी धावा ॥
लडिवाळ रामनामाचा सदा हा लागावा ॥

357. मीच माझे चैतन्य

माझाच मी मला अखंड आहे जवळ
परि ना कळे कसा हे नवल

मीच माझे चैतन्य मीच की हो जाणीव
माझ्याच प्रकाशी उजळी जीवन अनुभव

ब्रह्म मायेने सजवूनी
वसविला सगुणाच्या कोंदणी

पारब्रह्म पिता माझा
आमुचा वंश हो निर्गुणी

358. मज पाहुण आले

मम हृदयी घन आर्त हा बरसे ॥
श्रीगुरु अमलानंद मज पाहुण आले ॥

चरण रज तयांचे म्या मस्तकी लाविले॥
ना मागता मज ज्ञानभक्ती दान हो दिले॥

पाहुण माझे साक्षात श्री परब्रह्म स्वरूप ते॥
किती गुण गाऊ तिथे शब्दवाणी ही संपते॥

आता करा श्रीगुरू ह्या हृदयी तव कृपाघन बरसे॥
मज वैराग्य द्यावे हो मज हरी नाम द्यावे ॥

मज वैराग्य द्यावे हो मज हरी नाम द्यावे ॥
हे अंतःकरणीचे तुजपाशी बोलिजत असे ॥

धीर धरवेना ज्याच्याविन हो मजला॥
तो माझ्या सद्गुरुंचा श्रीराम मज भेटला ॥धृ॥

सद्गुरुंची वाणी ठेवा नामामृताचा ॥
अमृतात त्या श्रीराम मज भेटला भेटला ॥1॥

सद्गुरुंचे जीवन आदर्श श्रीरामाचा ॥
चरणारविंदी मी श्रीराम वंदिला वंदिला ॥2॥

सद्गुरुंचा कटाक्ष कल्लोळ बेअंत प्रेमाचा ॥
दृष्टादृष्ट होता अंतर्बाह्य जीव विशुद्ध जाहला जाहला ॥3॥

गहीर गंभिरा श्रीराम सद्गुणांचा पुतळा ॥
सद्गुरुविन कोण जाणे हो या अनादी अनंताला ॥4॥

श्रीरामाविन मी होतो कासावीस अधुरा ॥
नित्य मज स्मरण तयाचे आता झाली सद्गुरु कृपा ॥
श्रीराममय मम जिव्हा आता झाली सद्गुरु कृपा ॥5॥

360. श्री गुरुत्व

जयाचे वर्णना अपुरे शब्द भांडार ॥

प्राणाची शाई जरी करुनिया सकल ॥

श्वासांनी लिहायचा केलासी जरी प्रयत्न ॥

न लिहवे ते कुणा श्रीगुरुत्व महान ॥

जो शब्दांच्या पलिकडे भावांचा अतिभाव ॥

तिथेच श्रीगुरु हृदयाची आहे खरी जाण ॥

परि ना होई श्रीगुरु कृपा जोवर ॥

नाही नाही हो श्री प्रभू कृपा तोवर ॥

आता नाही इथे कोणताही तरणोपाय ॥

श्री गुरुवचन आपुला प्राण आहे केवळ ॥

नित्य श्री गुरुवचन गायन नित्य श्री गुरुवचन कीर्तन ॥

नित्य श्री गुरु वचन प्रार्थना नित्य श्री गुरु वचन नामस्मरण ॥

361. धन्य जाहला जीव

श्री प्रभू कृपेने श्री गुरु कृपेने आता आपले जीवन स्थिर स्थावर झाले आहे. असे का झाले तर तो विधात्याचा एक संकेत असतो की बुवा जा आता तू श्री गुरु चरणी जा.. नको करू जीवाची उलघाल आणि नसते उपद्र्याप.

तुम्ही दिले मज आरोग्य खान पान मुबलक ॥

राहण्या घर आणि अंगी उत्तम वस्त्र ॥

स्वकष्टार्जित गरजेपुरती सदा लक्ष्मी प्रसन्न ॥

कुटुंबिय कर्तव्यदक्ष सर्व असे भक्तीमार्ग समर्पित ॥

श्री गुरु कृपेने आता नाही उलघाल सहजी टाळले नसते उपद्र्याप ॥

ऐसे आपुलिया कृपे मजला संसारी करूनिया निश्चित ॥

तुम्हीच हो श्रीगुरु माझे चालविता सकल जीवन ॥

आता हृदयात प्रसाद दिला ती श्री गुरु चरणांची आर्त ॥

मज भेटा भेटा हो सत्वर काढा हा दुर्गुणांचा मल ॥

धन्य जाहला जीव ऐसा पडला तव चरणी सदा सदा हो वंदन ॥

362. आओ आओ जी मेरे पीर

पीर म्हणजे श्रीगुरु किंवा ईश्वरीय अवतरण झालेले महान संत ऋषी मुनी.

आओ आओ जी मेरे पीर ॥
जाणियो मन की मेरे पीड ॥धृ ॥

श्रीगुरु है आप ईश्वर हो जी॥
हृद वैकुंठ है विलसत चिर ॥1॥

पंच दूत है बांधियो मुझ को ॥
जुग जुग गये है यहा बीत ॥2॥

मायाजाल बिख सागर जीवन ॥
आप बिना कैसे पाऊ भव तीर॥3॥

अब ना रहू बिन अपने प्रभू के ॥
बह गया नयनों से सब नीर ॥4॥

समरथ पूरण आप है सतगुरु॥
हाथ पर राखे मिले मन धीर॥ 5॥

नवाजो मुझ को मिल मेरे गोबिंद ॥
नीव नीव रखू जी चरणी सीर ॥
भगवन ॥
नीव नीव रखू जी चरणी सीर ॥6॥

आओ आओ जी मेरे पीर ॥
जाणियो मन की मेरे पीड ॥धृ ॥

363. कोइ न आयेगा साथ तुम्हारे

कोई न आएगा साथ तुम्हारे ॥
तू है अकेला पथ पर तेरे ॥धृ॥

तेरी चाली गोविंद की ओर ॥
तू समझ यह उस का ही जोर ॥
श्रीगुरु है पलपल साथ तुम्हारे ॥1॥

काम क्रोध तुम्हे बहु डरावे ॥
पवन माया का बेधुंद करावे ॥
तुम ना छोडो चरण हरि के ॥2॥

अहंभाव सुख दुख पहुंचाए ॥
दारा धन मोहजाल अटकावे ॥
रहो पथ क्रमित श्रीगुरु इशारे ॥3॥

वैकुंठ धाम घट घट तू देखे ॥
वेणू बाजत तू सदा धुन सुणे॥
हरि हरि हरि तेरी जिह्वा बोले ॥4॥

तेरा पथ जाई तेरे अंतर्दामी ॥
सत्व शिखर पर शून्य कमानि॥
श्रीगुरु किरपा ते हरि को पावे ॥5॥

कोई न आएगा साथ तुम्हारे ॥
तू है अकेला पथ पर तेरे ॥धृ॥

364. सोडून दे रे...

सोडून दे रे सोडून दे ॥
श्वासावर त्याला सोडून दे ॥

नादी नको लागूस त्याच्या अरे ॥
त्याचे जग आहे आभासी सत्याचे ॥
स्वप्नालाच मानतो की सत्य आहे ॥

जीवन तो म्हणतो सदा माझे माझे ॥
परि ते आहे सशाच्या शिंगासारखे ॥
आभासी जसे वंध्यापुत्रासारखे ॥

नाही काही सुख दुख इथे ॥
नाही वासना इच्छांचे मेळे ॥
नाही षड्रिपू नाही मी पण अहंकाराचे ॥

नाही काही मालकीच्या भावाचे ॥
नाही भय जन्म जीवन मरणाचे ॥
खेळ इथले सर्व केवळ रिक्तपणाचे ॥

अरे तू सदा द्वैताच्या पलिकडे ॥
तूझे पद अढळ निर्वाणाचे ॥
तुझे स्वरूप परम आनंदाचे ॥

तिथे मंगल स्वर अनाहताचे ॥
तिथे अनंत पर्व तुझ्या शांतीचे ॥
मुक्ती धाम ते श्रीगुरु शरणागतीचे ॥
श्रीगुरु शरणागतीचे ॥

365. मायेच्या या मिथ्या दरबारी...

आपले दैनंदिन जीवनाचे व्यवस्थापन करायला अत्यंत विनम्रतेच्या कोंदणात अगदी थोडासा कामापुरता मी हा भाव लागतो पण अंतर्मनात मात्र त्याला क्षणाक्षणाला शून्य करण्याशिवाय पर्याय नाही. नाहीतर तो अहं भ्रमिष्ट करतो माणसाला. येथे मायेचा सीमित मी आणि आत्मा म्हणून आपला विश्व व्यापक मी असे दोन मी मांडणीसाठी विचारात घेतले आहेत.

(मायेचा मी)

मायेच्या या मिथ्या दरबारी ॥
आभासी आसनी बैसोनि मी ॥
अहंपणाने सारे विश्व पाहती ॥

जे जे म्या पाहतो या विश्वी ॥
अंतर्बाह्य अनुभव ते माझे होती ॥
ते माझेच या भावे मालकीचे होती ॥

ऐसे हे माया ममत्व अति प्रभावी ॥
आहेनाही पणाची जणू चुंबकीय शक्ती ॥
ऐसे भोग या जीवा भ्रमिष्ट करिती ॥

(विश्वात्मक मी)

पाहून न पहाणे जेव्हा श्रीगुरु ऐसे सांगति ॥
आसन सोडून उभा दूर मी हात जोडूनी ॥
आता मायेचे पहाणे ते मी दूरून न्याहळी ॥

तेन तक्त्येन भुंजिथा या सिद्ध वचनी ॥
तटस्थ पणा सदा तेथे मी अनुभवति ॥
ना अहं ना देहभाव ना स्वप्न ना सुषुप्ती ॥

ना भोगी ना योगी ना कुठली मालकी ॥
ना तृष्णा ना भूक ना भय उरे या जीवनी ॥
ना आहे ना नाही अलेप्य मी अलिप्त मी ॥

366. मागतो जोगवा ...

भंडारा उधळून तव क्षमतांचा ॥
मागतो जोगवा ज्ञान विज्ञानाचा ॥

विज्ञान दीपांकुरी तू महाअद्वया ॥
त्रिगुणातित तू सदा महाशून्या ॥

कुलस्वामिनी तू महमहा अकुला ॥
(अकुल = नित्य अखंडिता)
उदरी तव प्रसविले तू अनंत ब्रह्मांडा ॥

तू शक्ती तू भक्ती तूचि अपरंपारा ॥
तू संसारी माया परि सदा निर्वाणरूपा ॥

मन बुद्धी प्रकाशक तू सर्वार्थबोधा ॥
अस्तिभाति जीवनाधार तू मनःप्रिया ॥

सर्वेश्वरी तू सर्वाची श्रीगुरू मातपिता ॥
तव कृपे तव चरणी माथा हा टेकला ॥
तव कृपे तव चरणी माथा हा टेकला ॥

भंडारा उधळून तव क्षमतांचा ॥
मागतो जोगवा ज्ञान विज्ञानाचा ॥

367. तिथे तुला ईश्वरा...

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे सरहद्दीवर माझ्या वीरांनी सांडिले रक्त॥1॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
ज्यांनी भागविली भूक शेतात उपाशी रावून॥2॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे विद्यामंदिरी घुमती ज्ञान विज्ञान विवेक॥3॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे हृदयी प्रेम निःस्वार्थ व नसे अहंकार॥4॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
बुद्धी माझी जिथे होईल रे कुंठित॥5॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे निःशब्द होतील वाणी अन शब्द॥6॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे श्रीगुरुवचन ऐकता हरवेल माझे मन॥7॥

तिथे तुला ईश्वरा सदा मी शोधेन॥
जिथे वदिता श्रीगुरुवाणी अश्रु अनाहूत वाहतिल॥8॥

368. मना तू ऐसा बाहेर ये ...

मना तू असा बाहेर ये मित्रा ॥
अन आत तू तुलाच निरखून पहा ॥
मायेच्या कोंदणी खेळ हा मांडला॥
खेळ मांडला कुणी हा खेळ मांडला॥

प्रकाशात या कोटी सूर्य तेजाच्या ॥
पसारा हा सारा विश्वाच्या क्षमतांचा ॥
वस्तू विषय अन असंख्य जीवांचा ॥
खेळ मांडला कुणी हा खेळ मांडला॥

आकाश माझ्यात अंत नाही मला ॥
माझ्या हाती तुझा हात देऊनिया॥
मदस्वरूप होऊन तूच तुला पहा ऐसा॥
खेळ मांडला कुणी हा खेळ मांडला॥

तुझ्यामध्ये ब्रह्मांड अवघे तू पहा ॥
तरीही तू आहेस अस्पर्शित सदा ॥
ती तुझी बुद्धी अन ती तुझी काया ॥
खेळ मांडला कुणी हा खेळ मांडला॥

हे मना तुझ्या बुद्धी अन कायेला ॥
प्रकाश मिळता परम चैतन्याचा ॥
आभासी खेळ चाले वृत्ती वासनं॥
खेळ मांडला कुणी हा खेळ मांडला॥

तू स्वसंवेद्य निरंजन चैतन्याचा ॥
अनंत निर्गुण निराकार ब्रह्माचा ॥
असे अंश माझा परि जीवभावी पातला॥
खेळ मांडला कुणी हा खेळ मांडला॥

हे मना ह्या तुझ्या जीवनी तुझ्या संसारा॥
नको राहूस धरुनी आता तिथे त्यांना ॥
बाहेर बैस ये इथे मज साथीला ॥
खेळ मांडला कुणी हा खेळ मांडला॥

राहूनी बाहेर सदा अलिप्त ऐसा ॥
होऊनी जा अद्वय अकर्मि अकर्ता ॥
चूकव तो फेरा तुझ्या जन्म मृत्यूचा ॥
अनुभव तो स्वप्नखेळ ऐसा संपला संपला...॥

एखादं नातं असं असतं ना की फक्त त्या व्यक्तीचे कुठे तरी पृथ्वीवर असणं सुध्दा परिपूर्णत्व आणते. मन प्रशांत होते. मनात अपरिमित निरपेक्षता भरून रहाते. मग असे हे चैतन्यमय नातं ईश्वरीय आनंद निर्माण करते. जिथे सर्व निःशब्द होऊन रहाते. पण त्या व्यक्तीला ही निःशब्दता कळविण्यासाठी आपल्याकडे कवितेशिवाय काय असू शकेल का?

निरपेक्ष तुझे नी माझे ॥
जुळले निःशब्द ऋणानुबंध ॥ ध्रु ॥

निःशब्दाची ही माझी खुण ॥
काव्यसुमनास ह्या माझ्या ॥
आहे तुझाच भावगंध ॥

निरपेक्ष तुझे नी माझे ॥
जुळले निःशब्द ऋणानुबंध ॥ 1 ॥

चैतन्याचे नाते आपुले ॥
अमृताहूनी गोड असे हे ॥
जणू श्रीकृष्णाचे हास्य मंद ॥

निरपेक्ष तुझे नी माझे ॥
जुळले निःशब्द ऋणानुबंध ॥ 2 ॥

नाते आपुले अनंताचे ॥
अद्वैताचे गं लेणे असुनही ॥
द्वैताचा का हा लागला छंद ॥

निरपेक्ष तुझे नी माझे ॥
जुळले निःशब्द ऋणानुबंध ॥ 3 ॥

चल श्रीगुरू चरणी ॥
वाहू सर्वस्व तिथे झडकरी ॥
भेटावया निर्गुण आत्मभान ॥

निरपेक्ष तुझे नी माझे ॥
जुळले निःशब्द ऋणानुबंध ॥ 4 ॥

370. शरण गहि...

शरण गही प्रभ हम शरण गही
तुम बिन तारणहार कौन नाही
सुपना संसार क्यु यह सांचा लागि
तुम हरो हमरी यह दुविधा रघुराई
शरण गही प्रभ हम शरण गही ॥1॥

हरि नाम दिया श्रीगुरु किरपा निधि
अब हरि हरि धिआऊं हरि हाथ थमाई
दुनिया देख सकूं जब श्रीगुरु के सैनि
हरि मन हरि तन हरि संसार हो जाई
शरण गही प्रभ हम शरण गही ॥2॥

371. श्री गुरुदत्ता...

तुजसम निर्गुण होईल ही इच्छा ॥
पूर्ण कर श्री गुरुदत्ता ॥

हे जीवन तू दिलेस त्याची ॥
ओळख जनसेवा श्री गुरुदत्ता ॥

तुझिया कृपे ऐहिक मिळाले ॥
अन्य काय मागावे श्री गुरुदत्ता ॥

उकल उकल द्वैताचे हे कोडे ॥
अद्वैताचा गाव दाव श्रीगुरुदत्ता ॥

तुझे चरण धरिले अगा श्री गुरुदत्ता ॥
अनन्य भक्ती प्रकटू दे मम चित्ता ॥

पूर्णत्वाचे परम निधान तू ॥
पूर्णत्वात लोपू दे श्री गुरुदत्ता ॥

आता नको जन्म जीवन अन मृत्यू ॥
निरंजनी अनंती विलीन कर श्री गुरुदत्ता ॥

372. माये ग माये...

माये गं माये कशी जीवरुप घेऊन
तृष्णा शमविते ब्रह्मांड साकारून ॥

आधाराला स्वतः पावली भूमीस
वायू होऊन जीवाचा श्वास झालीस ॥

तहानलेला जीव पाहून
स्वतः जल झालीस...॥

भुकेलेला अग्नी पाहून
तू अन्न होऊन प्रकटलीस...॥

सर्व सृष्टी सामावून घेताना
अनंत आकाश झालीस...
मनामध्ये तू तुला बुद्धीरुप झालीस ॥

तृष्णा तुला नाही तूच तृप्ती आहेस
अविद्येचे आवरण असे की....
तू स्वसंवेद्य ब्रह्म पाहिले नाहीस ॥

नाही बंध नाही मुक्ती नाही जन्म मरण
संसार हा स्वप्न तुझे...
तू स्वतः आहेस निर्वाण ॥

नको विसरू श्रीसंत साहित्य अपार ॥
केवळ ब्रह्म सत्य बाकी मिथ्या मान ॥

श्रीगुरू तुजसाठी होऊन कृपाल ॥
वाट पाहताहेत तू येशील मार्गात ॥
वाट पाहताहेत तू येशील मार्गात ॥

373. श्री विठ्ठल स्वगत...

मी कसा आहे याची मुळी मला नव्हतीच काही कल्पना...

ओमकार नाद प्रसवूनि एक केली मी ही ईषणा...

असंख्य जीव निर्माण करून मी जाणू लागलो माझ्या क्षमतांना...

पण काही केल्या माझे वर्णन करण्या कोणा शब्द काही गवसेना...

माझ्याच पंचदूतांनी मला अविद्येचा असा घातला बुरखा....

माझा शोध घेण्या गेलो तिथे माझ्या मायेनेच द्वैती भूलविले मजला....

इच्छा वासना वृत्ती रुपी जाळ्यात पकडूनी मज भोळ्याभावझाला...

करूनी कठपुतळी मज बांधले जन्म मरणाच्या जात्याला...

क्षमतांचा परमोच्च विकास होता होता मानव प्राणी अवतरला...

श्रीगुरु आदेश पाळून विज्ञान खड्ग्याने बुरखा फाडला माया अविद्येचा...

वैराग्य लेवूनी हा प्रबुध मानव योगसिद्ध आसनी जाऊन बैसला...

मला त्याने जाणले खरे पण तो ही शेवटी मुकाच झाला...

नेती नेती म्हणून अखेर ब्रह्मांडी थकला भागला...

समाधीच्या परमोच्च अवस्थेत अखेर माझ्यातच विलीन झाला...

अजुनही इथे मी असा परकाच राहीलो मजला...

मग एक साधक संतांचा मेळा राहूनी सदा मम भक्तीचा भुकेला...

श्रीगुरु शब्दी अभंगात सदा कीर्तन सोहळी रंगला...

दिव्य परम अर्थ समजूनी हृदयी अनहद नाद ऐकिला....

माझ्या सवे त्याने भक्ती प्रेम रंगाचा खेळ अनुपम खेळला...

सेवा त्याग प्रेम आदर समर्पणाचे अगणित धागे गुंफूनीया...

असे त्याने सजविले दिव्य नववस्त्रांनी हो मजला...

त्या संतांच्या हृदयी श्रीगुरु कृपे करूनी मग पाहिले मी मजला...

ओळख सारी माझीच त्यांनी अशी पटविली ती मजला...

निराकार निर्विकार निरंकार, अनंत असा अचूक तो मी वर्णिला...

धन्य धन्य केले मज असा दिव्य संतांचा हा मेळा...

प्रकटता अद्वैत आम्ही दोघे जाहलो विलीन स्वसंवेद्या...

374. मस्तक भाग लिखिया...

मस्तक भाग लिखिया है आप भागवंत ॥
मेरे प्यारे श्री गुरू आप महामहंत संत ॥

मिले आप को प्रभू है जो अनादी अनंत ॥
कीरतन मे भाव विभोर हुए श्री गोविंद ॥

हृद अंदर आनंद है बाहर भी आनंद ॥
घट घट मे बसा है श्री हरि हरि मुकुंद ॥

राखा हमारा स्वामी दयाळ श्री भगवंत ॥
कोट सूर्य दिव्य तेज है आप शांत प्रशांत ॥

श्री गुरू हृदय कंद साक्षात हरि बेअंत ॥
आप की किरपा सुखी है सब जीअ जंत ॥

375. तू निष्कलंक निर्भय निर्वैर ...

घेऊनी अवघे त्या ब्रह्मांडा तळहाती ॥
आत्म अनात्म द्वैत श्रीगुरु दाविती ॥

तत्त्व पारब्रह्म परम स्वसंवेद्य सांगती ॥
सवे त्याच्या मन भवसंसारी नांदती ॥

देहमनी मिथ्या आविर्भाव आणति ॥
अहंपणाने आली जीवन संघर्ष भ्रांती ॥

पहीला देहबुद्धी त्याग श्रीगुरु सांगती ॥
अलिसपणे पहावी श्वासमनाची गती ॥

किती षड्रिपु इच्छा वासना अन वृत्ती ॥
अरे तुझा कधीच संबंध यांसी नसती ॥

तू ना कधी केलेस पाप तू पुण्यराशी ॥
अकर्मि अकर्ता तू तू ना कर्मफल बंदी ॥

ऐसे सांगुनिया श्रीगुरु पुन्हा म्हणती ॥
तू निष्कलंक निर्भय निर्वैर असशी ॥

तू विशुद्ध निर्विकार सदा गुणातिती ॥
अरे तुझा ठाव नाही तू अनंत असशी ॥

तू पूर्णातिपूर्ण अमर सदा परमानंदी ॥
तू असे खोत चैतन्य मूळ साक्षात प्रशांती ॥

समर्पित सदा ऐशा श्रीगुरु महावचनांसी ॥
जीवन उद्दिष्ट ज्यामुळे सफल होई सहजी॥

376. तू पूर्णाति पूर्ण...

तू पूर्णातिपूर्ण
पूर्णत्वाचे निधान ॥
आमच्या अतृप्तीचे
चोख प्रमाण ॥

अंतर्बाह्य तू सदा
सर्व चैतन्यमय ॥
तुझिया प्रकाशे
प्रकाशती बुद्धी मन ॥

ऐसे परम ज्ञान
श्री गुरु वचन महान ॥
आम्ही तुझे अंश
कधी ना जडले बंध ॥

देही असे परि
देहगतीपासून अलिप्त ॥
मनोबुद्धीचा नाही
नाही आता कुणी दास ॥

आता कुठले षड्विपू
लोभादी काम क्रोध ॥
आता कुठली वृत्ती
वासना इच्छा दोष ॥

आता श्री हरिचे नाव
अनुदिनी एकमेव ॥
समर्पण प्रभू चरणी
सहजी अद्वैत भाव ॥

आता माया गाते
श्रीगुरु शब्द अभंग ॥
आत्मभान हरपले
मन श्री गुरु चरण धूल ॥

377. ऐक सखी...

सहज मन तन हरि कीर्तनी हो सजले ॥
श्रीगुरुवाणी अमृत शब्द हो प्रकटले ॥

ऐक सखी हृदयी हरिनाम गं उपजले ॥
मन शांत सहज नितळ श्रीगुरु कृपेने ॥

गोपाळ सदा हा घेता कायावाचा मने ॥
आस लागली व्हावे दर्शन माधवाचे ॥

श्रीगुरु चरणी हे मन धावा करितसे ॥
जेथे जाईल तिथे केवळ हरिहर दिसू दे ॥

केवळ हरिहर दिसू दे ॥
केवळ हरिहर दिसू दे ॥

378. तू अद्वैत अन मी अद्वैत

आपल्या शरीरातील हाडे हा बऱ्या पैकी अंतर्गत भाग असतो. डोळे मिटून या हाडांच्या मध्यात मन एकाग्र करून पाया कडून डोक्यापर्यंत हळू हळू यायला लागले की असे अनुभवास येते की तिथे तो शरीराचा भाग आहे पण जाणीव काहीच नाही. म्हणजे अस्तित्व आहे पण जाणिवेच्या कक्षेत मात्र काहीही नाही. तेथील अणुरेणू मध्ये ऊर्जा तिथे संघटीत आहे पण ती जाणवत नाही. जे असूनही जाणवत नाही हे आपल्यासाठी अद्वैत आहे. असेच आपल्या शरीरात प्रत्येक अणूच्या गर्भात अद्वैत आहे. अहो शरीरात चैतन्य असूनही त्याचे गुण अनुभवाच्या कक्षेत येत नाही. असे हे चैतन्य अद्वैत आहे.

आपले मन तर वैश्विक ऊर्जेचा पुंज आहे. त्याचे मूळ स्वरूप निर्गुण आहे. ते विचारा शिवाय निर्गुण असते. इच्छा वृत्ती वासना षड्रिपू ही सर्व मानसिक ऊर्जेची रूपे असून त्यांचे मूळ निर्गुण अद्वैत आहे.

ही ऊर्जेची विविध रूपे जेव्हा संवेदनांना वाहून नेऊ लागतात तेव्हा त्यातून सगुण प्रतीत होते असे दिसून येते. जसे विचार ही मनाची व्यक्त होणारी संवेदना आहे. संवेदना सुद्धा ऊर्जेचे स्वरूप आहे. तिचेही मूळ निर्गुण हेच आहे. पण जेव्हा वेगवेगळ्या स्वरूपातील ऊर्जा वाहू लागते तेव्हा तिथे सगुण साकार होते आणि जाणिवेच्या कक्षेत येते. त्याचा अर्थ एका अद्वैता शिवाय तर इथे काहीही दिसून येत नाही. जे जे सगुण आहे त्याचे मूळ निर्गुण अद्वैत आहे हे स्वयमेव स्पष्ट आहे.

मग आता कसली इच्छा, भीती कसली, क्रोध कोण कुठला, वासना कोण कुणाची, कुठले हे षड्रिपू अन कसले हो जीवन सांगा...कुठे आहे तो मृत्यू.

मी पणा चा भाव त्याचे मूळ कूटस्थ ब्रह्म संपूर्ण निर्गुण निराकार निर्विकार आहे. मग हा आपला मी मलीन झाल्यासारखं वाटते तो निव्वळ भास आहे. जे जे अनुभव इथे सत्य वाटतात ती आभासी सत्यता आहे. परम सत्यता नाही. तथापि त्या आभासी सत्यतेचे मूळ आपलेच निर्गुण स्वरूप आहे ह्यावर निश्चय पक्का झाला पाहिजे.

परम सत्य एकच एक म्हणजे अद्वैत परब्रह्म. गड्ड भरलेले अहो मनाला त्याचे अस्तित्व प्रदान करणारे अद्वैत तत्त्व मनाच्या वेगाहून आणि त्याच्या व्याप्ती पेक्षा परम आहे. आणि हे सर्व आपण आता जाणतो आहोत. हे जाणणे आपल्याला आपल्या मनाच्या खेळातून सहज बाजूला घेऊन जाईल. हे जाणणे आपल्याला आपल्या शरीरा पासून अलिप्त राहण्यास मदत करेल.

अद्वैत हीच आपली परम सत्य ओळख आहे. जिथे जन्म जीवन मृत्यू अस्तित्वात नाही ते आपण अनादी अनंत काळा पासून आहोत. केवळ होणारा मी पणाचा आभास आपल्याला मायेत बध्द करतो. त्याचे मूळ म्हणजे आपण स्वतः आहोत. इथे पक्क राहिले की पुन्हा जन्माला यावयाची गरजच नाही. सगुणाचा हा भ्रम संपुष्टात आला की स्वसंवेद्य अद्वैताशी जाणवा सम्मिलीत होणारच यात शंका नाही.

तू अद्वैत अन मी अद्वैत...

कोण इथे जीवित ॥

होईल कोण मृत ॥

तू अमृत मी अमृत...
कोण इथे सगुण ॥
सर्व निर्गुण निराकार ॥

अद्वैताचा लागला लळा ॥
जीव कासावीस जाहला ॥
आस प्राणांना लागली ॥
चैतन्याचा हा ब्रह्ममेळा...

देऊनी मनतन जाणीवांचा मेळा
ईश्वरा स्वये तू राहूनी बाजूला
घेतोस का ही आमुची सत्व परीक्षा

संगे तव आम्ही आता करतो तंटा
आस तव चरणांची लावूनिया
द्वैताच्या वनी आम्हा का दिलास चकवा

अरे तू आमुचे हृदयी अकर्मि अकर्ता
तू वेपरवाह इथे आम्ही मायेचा बाहुला
जन्म मृत्यूचा असा कसा उठला धुराळा

तू जगत कारण तूचि परम समर्था
पोटी घाल आमुच्या असतील काही चुका
तुजवीण नाही आम्हा कुणी रे त्राता

तुझिया कृपे लागे तुझी आस मनाला
तूचि मार्ग प्रशस्त करशील दयाळा
तूचि होऊन श्रीगुरु सदा धरती हाताला

तू पाहतोस आमुची ऐसी जीवदशा
नको राहूस अलिप्त ये धावून आता
तनमनधन सर्वस्व वाहीले तव चरणाला

गोविंदा गोपाळा मुरलीधरा माधवा
गोविंदा गोपाळा मुरलीधरा माधवा

380. ओळख तुझी आणि माझी

तुझी चेतना माझी चेतना एकच आहे ती ॥
तुझे माझे मी पण एक सर्वोच्च भावना ती ॥

परि आपल्या ह्या वेगळेपणाची ॥
सांग कोटून आली ही दुर्बुद्धी ॥

तुझ्या माझ्या पंचदूतांची एकच मोट बांधलेली ॥
एकच तहान एकच भूक तुझी अन माझी ॥

परि आपल्या ह्या वेगळेपणाची ॥
सांग कोटून आली ही दुर्बुद्धी ॥

एकच हवा जमीन आकाश आणि पाणी ॥
एकच अग्नी जाळतो सर्वाना स्मशानी ॥

परि आपल्या ह्या वेगळेपणाची ॥
सांग कोटून आली ही दुर्बुद्धी ॥

ये कापून टाकू विषवल्ली या अभद्र भेदाभेदाची ॥
एकच ओळख सांगू आपुल्या विशुद्ध चेतनेची ॥

नकोस करू अपमान कुणाचा लेखू नकोस कमी ॥
एकच ओळख सांगू आपुल्या विशुद्ध चेतनेची ॥

भेट होईल जीवाशिवाची ये ना ये श्रीगुरू चरणी ॥
एकच ओळख सांगू आपुल्या विशुद्ध चेतनेची ॥

381. श्री गुरु प्रसादी...

श्रीगुरु प्रसादी प्राप्त जाहली
ज्ञानाग्निची शिखा ॥
पेटवूनी त्या जीवभावा
भस्म लावूया सर्वांगाला ॥

श्रीगुरु दाविती पंथ हरिचा
ना हा कधी परतीचा ॥
उल्हास सदा मनतनी असा
श्रीहरि दर्शनाचा ॥

वैराग्याची वस्त्रे देऊनी
श्रीगुरु सांगती उपासना ॥
म्हणे भूक भागव किर्तनी
अन भागव नामामृती तृष्णा ॥

श्रीगुरु उपदेशी महावाक्य ते दृढ
"तत्त्वमसि" मनी करुया ॥
जीवन जगुया ऐसे आता
सर्व "तेन त्यक्तेन भुजीथा" ॥

श्रीगुरु कृपेने आसन मिळता
बसू तिथे ध्यानाला ॥
अधःस्थानी मूलबंध साधूनी
वर लावू जालंधर बंधाला ॥

श्वास श्वास करुनी तो परका
शून्य मंडळी स्थिर होऊया ॥
श्रीगुरु कृपे ऐकू अनहद वाणी सहजी भवपार जाऊया ॥

382. नको देऊ विश्वा ...

नको देऊ विश्वा आता तुझा अहंभाव,
इथे आभासी सत्य घेते जीवनाचा ठाव ॥

रचना तुझी जसे वाळवंटी मृगजळ,
मनतन बेफाम परि अंती रिक्तपण ॥

आवर घालता मन गेले रे दमून,
हरि माझा हरवला गळा येतसे दाटून ॥

नको तुझे मोठेपण अन मान अपमान,
नको मालकीचा भाव ममत्व ते संपव ॥

आता नाही हसायचं आता नाही रडायचं,
सुखदुःखाच्या लाटेवर नाही नाही रे डोलायाचं ॥

नको ती आव्हाने नको षड्रिपूंचा संघर्ष,
नको मज मन बुद्धी नको काही देहसंग ॥

नको काही कौतुक नको स्तुतीचे ते बोल,
इच्छा वासना वृत्ती घे साऱ्या साऱ्या त्या परतून ॥

माया तुझी दूस्तर...कर्म संचिताचा खेळ,
दे आता माझी सर्व कर्मफळे तू पेटवून ॥

श्रीगुरु कृपे मज माझी पटली ओळख,
व्याकुळला जीव हरि मायबाप भेटव ॥

तुझ्या जन्म मरणाच्या चक्रातून,
मज आता तरी सोडव मज आता तरी सोडव ॥

383. सद्गुरु मूर्ती परम दिव्यत्वाची

श्री गुरू ग्रंथ साहेब जी मधील हे एक अतिशय सुंदर शब्द किर्तन आहे त्याचा मराठी अनुवाद आहे.
शब्दशः अनुवाद नाही. भावार्थ घेऊन अनुवाद प्रयत्न आहे.

इह निसाणी साध की जिसु भेटत तरिए ॥

श्री सद्गुरु मूर्ती परम दिव्यत्वाची ॥
घेता दर्शन झाली पायवाट सोपी ॥

जमकंकरु नेडि न आवई फिर बहुडी न मरिए ॥

यमदूत तयांना थरथर हो कापिती ॥
मृत्युंजय ते अखंड चैतन्य वसे पिंडी ॥

भव सागरु संसारु बिखु जो पार उतरिए ॥

भवसागर दुस्तर असला जरी ॥
सहजी साधका ते पार उतरविती ॥

हरी गुण गुंफहु मनि माल हरि सभ मलु परहरिए ॥

हरि गुण निर्मल मनी माळ गुंफती ॥
जिथे हरि मायेला स्वतः दूर सारिती ॥

नानक प्रीतम मिली रहे पारब्रह्म नरहरिए ॥

सद्गुरु माझा एकजीव श्रीहरीशी ॥
पाहता भेटती साक्षात परब्रह्म नरहरी ॥

384. सद्गुरु कारुण्य मूर्ती

सद्गुरु कारुण्य मूर्ती ॥
दर्शनी प्रेमाची भरती ॥

सद्गुरु परम ज्ञान विज्ञान ॥
विश्व प्रजेचे ते निधान ॥

सद्गुरु अथर्व निष्कल ॥
परम शांती आनंद कंद ॥

सद्गुरु चरण शरण ॥
सद्गुरु भवसागर तारण ॥

सद्गुरुंचे महावचन ॥
बंधमुक्तीचे महा द्वार ॥

सद्गुरु सदा कृपाल ॥
विश्व मातृत्व भाव ॥

सद्गुरु ईश्वर प्रतीत ॥
नित नित चरणी वंदन ॥

385. हरी मंगल गा ग सखी

एकचि माझा हा नाथ श्रीहरी ॥
जो ना कधी मज विसरी ॥
भानावर गं मी येता अशी ॥
माझा हात दिसे त्याच्या हाती ॥

स्वाधीन मी होते मायेच्या जरी ॥
सुख दुःखाच्या या हिंदोळी ॥
होते गुंतली जरी मी ही अशी ॥
सावध केले त्याने श्रीगुरुरूपे येऊनी ॥

श्री गुरुकृपे मज ओळख पटली ॥
श्रीहरी आला गं मम हृद अंतरी ॥
संसार माया गेली सहजी हरवुनी ॥
हरी मंगल गा गं सखी ॥
हरी मंगल गा गं नित सखी ॥

हरी मंगल गा गं सखी ॥
हरी मंगल गा गं नित सखी ॥

386. जयाच्या मुख दर्शनी

तिळगूळ घ्या आणि गोड गोड बोला असे इथे आपल्याला करावे लागते पण ईश्वर तर सतत आपल्याशी गोडच आहे. नुसता गोड नाही तर अमृताहुनि गोड नाम रुपाने तो आपल्यातच आहे.

जयाच्या मुखदर्शनी सदा गोडी अमृताची ॥
तो माझा सखा श्री पांडुरंग हरी ॥

षट्पिंपूची मज होतसे बाधा जरी ॥
मनतन माझे हे माखले जरी ॥

सहजी हा मल स्वच्छ करूनी ॥
स्व हृदयाशी मज सदा तो कवटाळी ॥

साक्षात ब्रह्म वसे जयाचे अंतरी ॥
सदसदविवेक मज दावी जे उजळूनी ॥

ते श्री सद्गुरू मजला नित्य हो दर्शनी ॥
देतसे ते ब्रह्मज्ञानरूप तिळगूळ प्रसादी ॥

हरि नामामृत अनुग्रह श्रीगुरु मज देती ॥
मनतन गोड सदा अमृतरस पाझरती ॥

हात माझा सदा धरूनी स्वहाती ॥
मुक्त दिशेने होतसे सहजी संक्रांती ॥
मुक्त दिशेने होतसे सहजी संक्रांती ॥

(मुक्तीच्या दिशेने सतत संक्रमण)

387. धीर धरवेना...

धीर धरवेना धरवेना ज्याच्याविन हो मजला॥
तो माझ्या सद्गुरुंचा श्रीराम मज भेटला ॥धृ॥

सद्गुरुंची वाणी जणू ठेवा नामामृताचा ॥
अमृतात त्या श्रीराम मज भेटला भेटला ॥1॥

सद्गुरुंचे जीवन आदर्श श्रीरामाचा ॥
चरणारविंदी मी श्रीराम वंदिला वंदिला ॥2॥

सद्गुरुंचा कटाक्ष कल्लोळ बेअंत प्रेमाचा ॥
दृष्टादृष्ट होता जीव विशुद्ध जाहला जाहला ॥3॥

गहीर गंभिर श्रीराम सद्गुणांचा पुतळा ॥
सद्गुरुविन कोण जाणे हो या अनादी अनंताला ॥4॥

श्रीरामाविन जीव कासावीस हा माझा सदा ॥
नित्य मज स्मरण त्याचे झाली झाली हो सद्गुरु कृपा ॥
श्रीराममय मम जिव्हा झाली झाली हो सद्गुरु कृपा ॥5॥

388. परम सुखदायी...

पूजेच्या वेळी आपल्या सर्वानाच हा अनुभव येतो. हरी चरणी मन मुग्ध झाले की सर्व आपोआप होते.

परम सुखदायी परम सुखदायी॥
देवपूजा गुरू पूजा परम सुखदायी ॥१॥

साक्षात चैतन्य सोहळा हा मी पाही॥
जळी स्थळी सर्वत्र देव ठायी ठायी॥ 1॥

ऐकुनी अमृतमयी श्री गुरुंची वाणी॥
देव आले हो आले आज या हृद-गृही ॥2॥

स्वतः येती इथे स्नान स्वतः देव करीती ॥
पूजा आसन स्थापन स्वतः देव होती॥3॥

स्वतः लावून चंदन गंध टिळा मस्तकी॥
पवित्रतेची मंगल रुपडी साजरी गोजिरी ॥4॥

पाने फुले वस्त्रे आवडीची स्वतः देव ल्यायती ॥
सुगंधी ईष-सौंदर्य माझे मन मोहविती ॥5॥

मी निहाल निहाल ती ईष शोभा पाहुनी॥
काय वर्णावे सौंदर्य येते रोज नवे खुलूनी॥6॥

श्री गुरू कृपे देवपूजनी मम भाग्य उजळती॥
वाहतो देवा तव चरणी फुले ममाश्रूंची॥7॥

389. जा बाबा जा ...

जा बाबा जा मना तू दूरदेशी जा॥
मी पूर्णातिपूर्ण इथे अलिप्त अनंत असा॥

मना तू विश्वाची मूळ निर्गुण ऊर्जा॥
परि शरीरात झालास कर्ता सगुण मायेचा॥

तुझ्यामधून पातला प्रखर द्वैताचा पसारा॥
द्वैतामाजी लपला तो मायेचा आभासीपणा॥

मना तूझे आभास ते सहजी तोडावया॥
घे भक्तीची मशाल हाती ज्ञान विज्ञान खडगा ॥

कठपुतळी होऊन स्वतःची नको करुस दशा॥
मना तू जा बाबा झडकरी तुझ्या दूरदेशा॥

मी अलिप्त अलेप्य ब्रह्म माझा पिता॥
आई माझी श्रीसद्गुरु माऊली॥
मी शरण तयांच्या चरणारविंदा ।
मी शरण तयांच्या चरणारविंदा ।

390. लीन आम्ही सद्गुरु चरणी

लीन लीन आम्ही श्री सद्गुरु चरणी ॥

माध्यम झालो श्रीहरी सृजनाचे जरी ॥

अहंकार आमुचा सहजी जाऊदे विरुनी ॥

आम्ही कुणीच नाही कुणीच नाही ॥

अशी जाणिव जागव रे श्रीहरी ॥

अशी जाणिव जागव रे श्रीहरी ॥

391. गुरुबंधू

उसळणारं तरुणपण, जगण्याचा आवेग आणि मी म्हणून माझे स्वतःचे वेगळे status व style सांभाळण्याच्या नादात जगातील आपल्या सर्वोच्च अध्यात्मिक वारशाकडे आतापर्यंत खुप दुर्लक्ष झाले. म्हणून किमान आता वय वर्षे 50 नंतर तरी जीवनात असा मित्र-सखा हवाय (जो एखादा अध्यात्मिक ग्रंथ सुद्धा असू शकतो) जो श्रीगुरू होऊन आपल्याला पैलतीर सुखरूप दाखवेल...त्यासाठी प्रयत्न व्हायला हवेत...ती ही प्रार्थना.

ज्याचे मुखी सदा श्रीहरीकृष्ण नाम ॥
तयाचे पाऊले चालीन श्रीहरि धाम ॥

जयाच्या अंगी नित्यानित्य विवेक ॥
तयाची संगती मना तू ना सोडी एक ॥

ज्याने ल्यायिले वैराग्य वस्त्र सहज ॥
तयाचे सान्निध्यात मी राहीन गा सतत ॥

शम दम उपरती तितिक्षा सद्गुण ॥
श्रद्धा समाधान जो याने श्रीमंत ॥
ऐशा मुमुक्षाचे धरीन उरी मी चरण ॥

जो श्रीहरिचा दास सदा श्रीगुरुमुख ॥
तयाची चरणधुळ माथी मी लावीन ॥

तोचि मज दाविल माया उंबरठा शून्य ॥
ऐसा श्रीगुरुबंधु मज उतरविल पैलतीर ॥

392. श्वासांकडे पहाणे

श्वासासह ईश्वर जातो
आपुल्या हृदयाशी ॥
हृदयी शोधतो निवास
परि जागा न त्यास मिळती ॥

श्वासाची न जीवाला जाणीव
त्याला द्वैताची भ्रांती ॥
त्या मायेच्या प्रभावाने
त्याचे श्वास फुकटच जाती ॥

मनात भरला अहं अन गर्व,
त्याला सामिष कर्माची जोडी ॥
संवेदना गेल्या हरवून,
शुष्क राहिला हृदयातूनी ॥

ज्यास श्रीगुरू कृपा होईल,
गती निरखेल तो श्वास श्वास ॥
ब्रह्मांड ओसंडेल हृदयातून,
होईल तिथे श्रीहरीचा निवास ॥

नशीबवान हा ऐसा जीव,
भवबंधातून सुटेल अलगद ॥
पुन्हा न जन्म मरण त्यास,
होईल आनंदरूप तो सदा प्रशांत ॥

393. सखी (जीवरूप वधु)

सखी एक ते साम्य तुझ्या माझ्यातील ॥
अव्यक्त भाव तू केवळ "मी" पाहशील ॥

(अव्यक्त मी भाव म्हणजे कूटस्थ ब्रह्माचे
एक अंतस्थ स्फुरण)

सखी हे आभासी गं बाकी सर्व फरक ॥
भ्रांत आहे जाण आपल्यातील वेगळेपण ॥

सखी हे आपुले बुद्धी मन अन तन ॥
इथे भासती चेतन ते एक निमित्त मात्र ॥

सखी इथे काळ नाही अस्तित्वात ॥
अग इथे काहीच गं नाही नाही घडत ॥

सखी इथे आहे हा संसार मृगजळ ॥
हे जीवन जणू ते स्वप्नची पळभर ॥

सखी तुझा पती एक तो परमेश्वर ॥
तुझ्यात असूनही तुज का होई विरह ॥

सखी जा जा श्रीगुरू चरण शरण ॥
आपुल्या पतीमध्ये जाशील सामावून ॥

394. मायाजाल

धमाल येते अंगात आहे जोम मस्ती भरूनी ॥
सौंदर्य सत्ता स्टेटस पैसा मित्र नातीगोती ॥
अहंकार माझा सांभाळून देतात हातावर टाळी ॥

का मला आसक्ती माझ्या शरीराची ॥
का मला ओढ माझ्याच वेड्या मनाची ॥
का हा गुलाम माझ्याच बुद्धीचा मी ॥

नेहमीच हुकुमत माझ्यावर असे या तिघांची ॥
का हा असा झालो यांचे बुजगावणे मी ॥
खेळच मांडला माझा यांनी ह्या त्यांच्या जीवनी ॥

जातील जेव्हा मज सोडून तिघे ती ॥
साक्षात मृत्यू येईल माझ्या वाट्यासी ॥
का ना मला हे सत्वर शहाणपण इथे येई ॥

आता वाटे फिरून विचार हा मी करी ॥
पुन्हा पुन्हा वाचीन श्रीज्ञानेश्वरमाऊली ॥
घालीन त्या तिघांना संतांच्या चरणी ॥

करतो प्रार्थना देवाला यावा की हा योग जुळूनी ॥
गळून जाऊ दे झडकरी दंभ अहंकार मस्ती ॥
माया जाल ह्या तिघांचे जाऊ दे अदृश्य होऊनी ॥

395. सद्गुरु माझा

सद्गुरू माझा
तुझे रूप साक्षी
चैतन्याचा पुतळा
स्वसंवेद्याच्या राशी

श्रीगुरू वचनी
लीला श्रीकृष्णाची
श्रीगुरु उपदेशी
भक्ती माधवाची

श्रीगुरू दर्शनी
पाहतो आम्ही श्रीहरी
करता श्रीगुरू सेवा
हात आमुचा धरी मुरारी

श्रीगुरू आशिर्वचनी
मन अनहद नाद ऐकती
रमता श्रीगुरु किर्तनी
तुझ्याहून आम्ही वेगळे नाही

वाहीले ते मीपण
अर्पियली मनतन बुद्धी
सत्ता धन मान सन्मान
समर्पित केली सर्व इच्छा वृत्ती

श्रीगुरू जप करता
प्राण ऐसे एकवटती
जीव आत्म प्रकाशी
आत्माकार होती

रिक्त झालो ईश्वरा
आम्ही ऐसे श्रीगुरु चरणी
काही न उरले आता
देण्या तुजसाठी

396. अगा विठुला

अगा विठुला पांडुरंगा ॥
सवे राणी रखुमाई लक्ष्मी माता ॥

कार्तिक पहाटे काकड आरतीने ॥
प्रेमभावे आम्ही ओवाळितो तुजला ॥
अगा विठुला पांडुरंगा ॥
सवे राणी रखुमाई लक्ष्मी माता ॥

काकड्यात जळू दे गर्व अहंकार ॥
जळो ते ममत्व अन इच्छा वासनांना ॥
अगा विठुला पांडुरंगा ॥
सवे राणी रखुमाई लक्ष्मी माता ॥

काकड प्रकाशी तव श्रीमुख दर्शन ॥
श्रीगुरु चरण आसरा नित्य मज द्यावा ॥
श्रीगुरु चरण आसरा नित्य मज द्यावा ॥

अगा विठुला पांडुरंगा ॥
सवे राणी रखुमाई लक्ष्मी माता ॥

397. ये पांडुरंगा

ये पांडुरंगा माझ्या सखया ॥
माझी लाज राखावया तूच ये ईश्वरा ॥

ना योग ना ध्यान-साधन ॥
ना जाणिले तुझे सार-घन ॥
दे ज्ञान प्रज्ञा तुज जाणावया ॥1॥

ये पांडुरंगा माझ्या सखया ॥
माझी लाज राखावया तूच ये ईश्वरा ॥

भवाच्या या निविड अरण्यात ॥
षड्रिपू ते नागवून करीती रे घात ॥
दे जाण ब्रह्म सत्य जगद मिथ्या ॥2॥
(मिथ्या=incomprehensible)

ये पांडुरंगा माझ्या सखया ॥
माझी लाज राखावया तूच ये ईश्वरा ॥

तू माझे गुरू मात अन तात ॥
सदा तुझ्या हाती राहू दे माझा हात ॥
तव चरणी विसावा सदा मिळावया ॥3॥

ये पांडुरंगा माझ्या सखया ॥
माझी लाज राखावया तूच ये ईश्वरा ॥

398. सोडून दे रे मी पणा

सोडून दे रे मी पणा सोडून दे ॥
तुझ्या श्वासावर त्याला सोडून दे ॥

नादी नको लागूस त्याच्या अरे ॥
त्याचे जग आहे आभासी सत्याचे ॥
स्वप्नालाच मानतो की सत्य आहे ॥

जीवन तो म्हणतो सदा माझे माझे ॥
परि ते आहे सशाच्या शिंगासारखे ॥
आभासी जसे वंध्यापुत्रासारखे ॥

नाही काही सुख दुख इथे ॥
नाही वासना इच्छांचे मेळे ॥
नाही षड्रिपू नाही मी पण अहंकाराचे ॥

नाही काही मालकीच्या भावाचे ॥
नाही भय जन्म जीवन मरणाचे ॥
खेळ इथले सर्व केवळ रिक्तपणाचे ॥

अरे तू सदा द्वैताच्या पलिकडे ॥
तूझे पद अढळ निर्वाणाचे ॥
तुझे स्वरूप परम आनंदाचे ॥

तिथे मंगल स्वर अनाहताचे ॥
तिथे अनंत पर्व तुझ्या शांतीचे ॥
मुक्ती धाम ते श्रीगुरु शरणागतीचे ॥
श्रीगुरु शरणागतीचे ॥

399. आगमन होता वर्षा ऋतूचे...

आगमन हे होता वर्षा ऋतूचे ॥
मल्हार स्वर मनी आर्त उमटले ॥1॥

कित्येक जन्म व्याकुळ तृषेने ॥
तुजवीण मन तन तप्त राहीले ॥2॥

पवन वाहीला श्रीगुरु भक्ती रूपाने ॥
नभ कृपेचे अति दाटूनी आले ॥3॥

प्रेमजल ह्या वर्षाव रूपाने ॥
हृदयी गोविंद नित्य हा बरसे ॥4॥

रिमझिम हरिजल शीतल आले ॥
मम चातक तनमन तृप्त जाहले ॥5॥

400. अस्तित्वाचे कर्ज

अस्तित्वाचे कर्ज घेतले ॥
परि काय ठेवले गहाण ॥
नाही ठाऊक मजला काही ॥
अहं भरला मनी जड अज्ञान ॥

वस्त्र ऊर्जेचे जोडले देवाने ॥
पिशवीत ओतला पंचप्राण ॥
पंच दूतांची पिशवी ती ॥
तनमन बुद्धी सर्व ऊर्जा समान ॥

आवेग ना आवरे मनाचा ॥
सुटला अहं अति बेफाम ॥
कर्जाऊ जन्मोजन्मीचा मी भिकारी ॥
परि नसे ही मनाला जाण ॥

अज्ञानात जगतो मरतो ॥
हसतो रडतो करतो संघर्ष ॥
ठेवले गहाण आत्मभान ॥
कसे फेडू मी व्याजासह कर्ज ॥

जाता श्री गुरू चरणी ही उपरती ॥
होईल दूर अज्ञान अंधकार ॥
फिटेल कर्ज व्याजासह ते ॥
मुद्दल जन्मोजन्मीची होईल ब्रह्माकार ॥

401. उंबरा करून श्वासांचा

उंबरा करून आपल्या श्वासांचा
मन हे रोखूया त्या श्वासांवरती

एक पाउल विचाराचे पुढे जरी पडता
श्वास पुढचा मनाला तो ओढेल माघारी

आता ऐसे मनाचे नियंत्रण साधूया
होईल मनाला मनाचीच ओळख नवी

श्री गुरू कृपे नित्य सातत्य ठेऊया
जे अनादी अनंत सदानंद अविनाशी

सुखदुःख भय भवबंध श्वासांनी तोडूया
आनंद रुप होऊ सदा त्या अमनी

402. श्री हरी लक्ष्मी

श्री लक्ष्मी अनेक स्वरूपात आपल्या जीवनात आपली साथ देत असते. तिच्या शिवाय जीवनच जगणे अशक्य आहे. कठीण परिस्थितीत देवाचे नाव ओठावर येणे आणि देवाने मदत करणे हे ओघाने घडते. पण कठीण परिस्थिती नसेल तर? अशा वेळी श्री लक्ष्मी आपली परीक्षा पहात असते अशी की आता या ऐश्वर्यात तो श्रीहरीचे नाव कळकळीने घेतो का? पण माणसाची तृष्णा काही संपत नाही आणि शेवटी तो परीक्षेत अनुत्तीर्ण होतो. म्हणून आपल्याला जीवनात जे काही सुख दुःख प्राप्त होते ते केवळ आणि केवळ श्रीहरीचे स्मरण सातत्य राहावे म्हणून.

श्रीहरीलक्ष्मी

ज्याच्या घरी विपुल अन्न धान्य पाणी ॥
तिथे नांदते साक्षात श्री लक्ष्मी ॥

ज्याच्या घरी आरोग्य शांती समृद्धी ॥
तिथे नांदते साक्षात श्री लक्ष्मी ॥

सर्व सगेसोयरे प्रेमादरे ज्यास मानति ॥
तिथे नांदते साक्षात श्री लक्ष्मी ॥

ईश्वरेच्छेने ज्याचे हृदयी श्रीलक्ष्मीचा पती ॥
साक्षात नारायण सर्वत्र श्रीहरी हरि ॥

ऐसे क्षेमकुशल त्याचे पाहतो श्रीहरी ॥
कारण त्यास आवडे त्याची निर्मल भक्ती ॥

नारायणासी काळजी हो त्याची ॥
श्रीहरीने मांडले सर्व त्याच्या संसारी ॥

श्रीहरी चालवितो संसार त्याचा ॥
सवे त्याची पत्नी तिथे श्री लक्ष्मी ॥

त्याला केले देवाने मोकळे मोकळे ॥
जेणे करून गावे श्रीहरी नाम त्याने ॥

महात्म्य गावे श्रीहरीलक्ष्मीचे ॥
करावी भक्ती श्रीहरीलक्ष्मीची ॥

भोगावे ते सुख, अंतर्बाह्य श्रीहरिलक्ष्मी ॥
ऐसे संगे त्याच्या साक्षात श्रीहरीलक्ष्मी ॥

403. जो गुण गाईल

जो गुण गाईल श्रीहरीचे नाम ॥
त्याचे चरणी माझे विनम्र वंदन ॥

जो सांगेन मज श्रीहरी कथेचे सार॥
तोच माझा बंधू तोच माझा मित्र ॥

जो सदा उदास..., आहे भक्तीत लीन ॥
त्याचे पायीची धूळ मस्तकी मी लावीन ॥

ऐशा संतांचे व्हावे नित्य दर्शन ॥
जिथे व्हावे माझे सर्वस्व अर्पण ॥

404. पाहता श्री गोविन्द रूप

पाहता श्री हरी गोविंद रूप ॥
ना आवडे दुसरे काही ॥
प्यायले हरी नामामृत ॥
तृष्णा आता नाही नाही ॥

देखिले श्रीहरी कमलचरण ॥
मनरूप अलि मकरंद चाखी ॥
श्रीहरि प्रेमी चित्त ऐसे रममाण ॥
प्रेम करण्या नुरले अन्य काही ॥

तुटले सर्व पाश तुटले भवबंध ॥
अंतर्बाह्य श्रीहरी हरी श्रीहरी हरी ॥
श्री गुरू कृपे भेटला माधव ॥
माया निमाली संसाराच्या उदरी ॥

अन्न, पाणी, निवारा, वस्त्र, उच्च शिक्षण, सत्ता, संपत्ती, प्रसिद्धी, नातीगोती, कला, सौंदर्य आणि आता नवीन आलेली आभासी status ची लाट हे आता अगदीच सर्व सामान्य झाले आहे. त्यात अजिबातच काही विशेष नाहीये. या सर्वांहून अधिक पुरुषार्थ जे प्राप्त करण्यात आहे व जे आपल्या प्राणांहून अधिक महत्वाचे आहे ते म्हणजे देवाच्या नावातील अमृत. हे हरी नामातील अमृत आपण मानव आहोत म्हणून समजून घेणे व त्याने अनुभावित होणे तसेच देवाच्या प्रत्येक नावात अमृताचा वेगवेगळा स्वाद दडला आहे हे अनुभवणे यातच मानव जन्माचे सार्थक आहे असे मला वाटते. त्यासाठी श्री संत वाणी सातत्याने वाचून, ऐकून त्यावर चिंतन मनन व्हायला हवे. श्री गुरू मार्गदर्शनाने सातत्याने मनाची शुद्धी व्हावयास हवी.

श्रीरंग पावला गं सखी,
मुकुंद मज पावला ॥
नाव त्याचे सदा ओठी,
बरसे हृदयी अमृतधारा ॥

श्रीहरी नाम गोड अवीट अति ॥
हरी हरी जयघोष मनी चालला ॥
तस्करी पंचधातूंची आता गेली गेली ॥
झाली झाली हो श्री सदगुरू कृपा ॥

माधव मुरारी श्रीकृष्ण गोविंद ॥
हे सारंगपाणि हे श्रीनिवासा ॥
कान्हा गिरीधर यशोदानंदन ॥
हे परब्रह्म परम आदी पुरुषा ॥

बुद्धी मती पावली विशुद्धतेला ॥
मनीतनी पवित्रता स्थिरावली ॥
देवाने जणू आमुचा हात धरला ॥
झाली झाली जीवनाची इतिश्री ॥

श्रीरंग पावला गं सखी,
मुकुंद मज पावला ॥
नाव त्याचे सदा ओठी,
बरसे हृदयी अमृतधारा ॥

406. परब्रह्म बोले...

परब्रह्माशी संवाद साधता येत नाही. तरी कल्पनेने संवाद साधला तर ते परब्रह्म आपल्याला काय उत्तर देईल ती ही रचना.

शरीर मन आणि बुद्धी आले इथे जन्माला,
पण मी अजून कधीच जन्मलो नाही ॥

शरीर मन आणि बुद्धी जगताहेत जीवन,
परि अजून अलेपित मी या जीवनी ॥

शरीर मन आणि बुद्धी पावतील मृत्यूला,
मी पाहीन त्यांचा मृत्यू ऐसी माझी आहे दृष्टी ॥

माझिया स्वरूपी मी आहे तेजःपुंज,
कोटी सूर्य तिथे सारे निष्प्रभ होती ॥

माया माझी सावली सत्यता ती आभासी,
मी अंतर्बाह्य अनंत अपार अविनाशी ॥

मी साक्षात चैतन्य आहे सकल जीवांचे ॥
माझ्यातून तुझा जन्मला तो भाव मी ॥

सदसदविवेक कर तू सदा रामदासी ॥
तोच एक दुवा आहे तुझा माझ्याशी ॥

तुझे श्रीगुरू पारब्रह्म परमेश्वर सद्गुरू ॥
मी त्यांच्या जवळ सदा, आहे त्यांचे हृदयी ॥

जे आहे नाही त्याच्या मी पलीकडे ॥

अस्पर्शित मी परि माझ्यात सर्व आहे ॥
म्हणूनी उदासीन आहे असा मी इथे ॥

प्रकाशात माझ्या सर्व अर्थबोधने ॥
प्रकाशात माझ्या सर्व आकळणे ॥

अन्यथा इथे कुठे काहीच नसणे ॥
म्हणूनी उदासीन आहे असा मी इथे ॥

कुणी सुखाच्या मागे लागणे ॥
कुणी दुःखाने उसासे टाकणे ॥

प्रकाशक मी त्यांचा अलेप्य आहे ॥
म्हणूनी उदासीन आहे असा मी इथे ॥

सदा वृत्ती निवृत्तीच्या पलिकडे ॥
पूर्णातिपूर्णाच्या सीमा ना मज ठावे ॥

मी स्वसंवेद्य, ती माया जड अलिकडे ॥
म्हणूनी उदासीन आहे असा मी इथे ॥

स्थिर-वेगादी द्वैत सारे राहिले ते मागे ॥
मन आणि बुद्धी मज जाणण्या कुंठले ॥

इथे अद्वैतावर ते द्वैत अति नटले ॥
म्हणूनी उदासीन आहे असा मी इथे ॥

जन्म जीवन मृत्यू मज ते मुळी नसे ॥

कठपुतली जीव हा मायेचा खेळ चाले ॥

क्षराक्षरापासून माझे तत्त्व आगळे ॥

म्हणूनी उदासीन आहे असा मी इथे ॥

मज जाणून घेण्या श्रीगुरू शरणी जाणे ॥

क्षणोक्षणी निरास त्या मायेचा करणे ॥

दृष्यादृष्य पल्याड तिथे मज श्रीगुरुदृष्टीने पहावे ॥

संसारात मायेच्या आधीन होऊन सर्व काही करावे लागते त्याला इलाज नाही. अज्ञान आभासी आहे पण जे आहे त्याला तोंड देत बसावे लागते. साधना सुरू असली तरी अज्ञान काही लगेचच जात नाही. पिंजरा समजून येतो आणि त्यात अडकून पडलेल्या पक्षासारखे होते आणि अशा वेळी देवाची तीव्र आठवण येते. ती ही विरहणी.

हे लडिवाळा माझ्या श्रीहरि प्रियतमा ॥
 विरहात तुझ्या अखंड अश्रूंच्या धारा ॥
 क्षणाचाही विसर ना पडो या जीवा ॥
 तळमळ तळमळ होतसे रे गोविंदा ॥

संतावर तुझी झाली नितांत कृपा ॥
 दिसलास त्यांना सर्वत्र अंतरी बाहेरा ॥
 अवगुणी मतीमंद मी कैसे जाणू तुजला ॥
 ना भक्ती ना वैराग्य मी मार्ग चुकलेला ॥

एक मज ठावे तुझ्या नामाचा महिमा ॥
 श्वास पुढचा येतो हरिनामात भिजलेला ॥
 तिच तुझी कृपा नाही माझी ही पात्रता ॥
 तुझ्या विरहाग्नीत या लोटले मन बुद्धी शरीरा ॥

408. माई मज पाहू दे ते श्रीहरी मुख

माई मज पाहू दे ते श्रीहरी मुख लडिवाळ ॥
परम पुरुष आदि निरंजन आहे गं तुझा बाळ ॥

काय सांगू माझ्या अंतरीची अशी ही घालमेल ॥
देव माझा इथे आला सोडून आपुले निजधाम ॥

बालरूप श्री नारायण अति अति मनोहर ॥
ओवाळून टाकला ऐसा त्यावरून माझा जीव ॥

श्रीहरी विना मज हृदयी होताहे असह्य विरह ॥
एक नजर पाहू दे होऊ दे मज तृप्त तृप्त ॥

पाहुनी साक्षात श्रीमहादेव उभे हरी समोर ॥
काय पाहावे आश्चर्य कान्हा जोडतो त्यांसी हात ॥

तू धन्य धन्य माता तुझ्या कवेत गं वैकुंठनाथ ॥
माथी लावले चरण हरीचे सकलांचा तो दीनानाथ ॥

ब्रह्मा विष्णू महेशांची झाली अनसूया आई ॥
सत्व पाहुनी अनसूयेचे तिज नमन करिती त्रिदेवी ॥

पुण्य आत्मा अनसूया अति पवित्रतेची मूर्ती ॥
पातिव्रत्य अपार पाहुनी परीक्षा घेती त्रिमूर्ती ॥

आले द्वारी तिच्या आले ऋषी अत्रींच्या आश्रमी ॥
म्हणे तिजला वाढ अन्न तू होऊनी निर्वस्त्री ॥

क्षणात ओळखले तिने ती साक्षात ब्रह्मत्रय वाणी ॥
सत्व एकवटून घातले त्यांना तान्ह्या बाळरूपी ॥

त्रिदेवांचे बालरूप अति प्रखर प्रखर तेजाळती ॥
परि पडे फिके ते अनसूयेच्या त्या अपार सत्वाशी ॥

पाहुनी हा चमत्कार अचंबित झाल्या त्रिदेवी ॥
विनम्र भावे तिजला विनवती दे आम्हा आमुचे श्री पति ॥

आता अनसूयेची आस ना जाई ती ओढ मातृत्वाची ॥
म्हणाली वाढविन त्यांना मी होऊन त्यांची आई ॥

परि केल्या वारंवार विनंत्या पडल्या शरणी तिच्या देवी ॥
सिध्द पावले अनसूयेचे परम सत्व या जगामाजी ॥

चरण बाळांचे लावले माथी भावव्याकूळ अत्री ऋषी ॥
त्रिदेवांचे तत्व एकवटून दत्त समोर ते उभे ठाकती ॥

ऐसी केली कृपा आईबापांवर अपार त्या त्रिदेवांनी ॥
घेऊनी बालरूप श्रीदत्तात्रयाचे केली मनोभावे सेवा त्यांची ॥

ऐसा हा अत्रीनंदन ऐसा हा अनसूयानंदन नांदे दिगंबरी ॥
साक्षात श्री गुरुदेव दत्त सदसदा कृपाळू सर्व भक्तांवरती ॥

410. सुदामा श्रीकृष्ण भेट

सुदामा आणि श्रीकृष्ण यांची भेट अतिशयच सद्गदित करून जाते. तो दिव्य प्रसंग डोळ्यासमोर उभा राहतो
अन आनंदाश्रू आपोआप वाहतात. अशाच साश्रु नयनांनी झालेली ही रचना

महाद्वारी धावले श्रीकृष्ण महाराज सोडून सिंहासन ॥
पाहून दूरून सुदामास घालती आदराने दंडवत ॥ धृपद ॥

पत्नी सुदामाची झाली दारिद्र्य दुःखाने हैराण ॥
म्हणाली पतीस मागा श्रीहरी महाराजांस काही दान ॥1॥
श्रीकृष्ण माझा प्राण माझा सखा अति प्रिय प्रिय तो दीनानाथ ॥
ओळखेल का तो मजला काय देऊ गं मी त्याला भेट ॥2॥

घेऊन निघाला पोह्याची पुरचुंडी त्यात कालवून भक्ती अपार ॥
एक मन आकसे आत परि एक मन श्रीहरीसाठी उचंबळे ते फार ॥3॥
पाहून सुदामा अचंबित ते सुवर्णजडीत द्वारिका नगर ॥
हा फाटका तुटका उपाशी ह्याचे पायी नसे वहाण ॥4॥

भक्त सखा थकला भागला सावकाश पोहोचला महाद्वार ॥
निरोप त्याचा पोहोचविण्या धावले महाली द्वारपाल ॥5॥
श्रीकृष्ण महाराज मंद स्मित गुज करत होते राणी रुक्मिणी संग ॥
ऐकून नाव सुदामाचे ना मावेना त्यांच्या मनी तो आनंद अपार ॥6॥

महाद्वारी धावले श्रीकृष्ण महाराज सोडून सिंहासन ॥
पाहून दूरून सुदामास घालती आदराने दंडवत ॥7॥
हाती धरुनी सुदामाच्या बसविले स्व सिंहासनी तयास ॥
चरणोदक घेऊन हरिने धुतले पुसले सखा अतिथीचे पाय ॥8॥

सांग सुदामा सांग मजसाठी वहिनींनी ते दिले काय ॥
थरथरत्या हाताने दिली पोह्याची पुरचुंडी श्रीहरी घेतसे ते भक्तीचे दान ॥9॥

प्रेम भावाचा भुकेला हा मुरारी सेविले पोह्याचे ते कण न कण ॥
रुक्मिणीस विसरले द्यायचे पोहे माधव झाले भावविभोर ॥10॥

पंचपक्वान्न भरविती सख्यास साक्षात परब्रह्म नारायण ॥
बालपणीच्या आठवणीने दोघे झाले तयात अति रममाण ॥11॥
सुदामाचे केले आदरातिथ्य महाली तो राहीला चार दिवस ॥
परि स्वतः साठी काही मागण्याचा कधी ना त्याला झाला धीर ॥12॥

निरोप देती सारंगपाणि पुन्हा पुन्हा घेती गळा भेट ॥
श्रीकृष्ण अमृत प्रेमाने सुदामा भारला निःशब्द ओतप्रोत ॥13॥
काय सांगू आता पत्नीस काहीच ना मागितले दान ॥
का असेच आपुल्या जीवनी भरले सदा दुःख दारिद्र्य ॥14॥

पहाटे पहाटे आला नगरास परि गेला भांबावून ॥
पाहून सगळी नगरी सजलेली सोने आणि चांदीनं ॥15॥
हां हां झाले चंद्रमौळी घर झाले सुवर्ण महाल ॥
पत्नी मुले सजली घालून भरजरी नवे पोषाख ॥16॥

डोळ्यातून अश्रूंच्या धारा ना आवारे हुंदका सुदामास ॥
हे सख्या मनमोहना किती किती कृपा केलीस तू आज मजवर ॥17॥
ऐसा हा जीव होवो सुदामा त्यास भेटावे पारब्रह्म वैकुंठनाथ ॥
घेऊन कवेत भक्ताला द्यावे चिरंतन आनंद अद्वैत ऐश्वर्य अमाप ॥18॥

411. तुझा तुलाच पत्ता नसेल...

देहांती तू तो कोठे कसा असशील ॥

तुला तुझा काही पत्ताच नसेल ॥

इथे असताना तुझी सत्ता जरी असेल ॥

देह पडता तू कुठेही नसशील ॥

कितीही जरी भोगले सोसले तू असशील ॥

सर्व गेलेले काळाच्या गर्भात असेल ॥

कितीही हुकुमत तू गाजविली जरी असशील ॥

परि शून्यात ती मिळालेली असेल ॥

किती इच्छा वासना हा जीव रे पोसेल ॥

अंती मृत्यू त्याचा तृष्णेतची होईल ॥

असे कित्येक आले गेले ते अजाण ॥

काल गर्भि त्यांचे नुरले नामोनिशाण ॥

जीवासह जातसे केवळ ते संस्कार ॥

म्हणूनी श्रीगुरु चरणी जावे रे शरण ॥

विदेही रहावे इथे मृत्युंजय होऊन ॥

जन्म जीवन मृत्यू स्वतःचेच पहावे ते दूरुन ॥

देखणे रूप देवाचे ॥
पाहुनी मन अचंबिले ॥
आत्मभान हरपले ॥
देखता मार्तंड मल्हार ॥

देव माझ्या मनाचा आधार ॥
परम सत्याचा तो प्रकाश ॥
गेले अंतर्बाह्य तेजाळून ॥
भवभय ते सर्व निमाले ॥

हा म्हाळसाईचा कांत ॥
जीव टाकला ओवाळून ॥
चरण धरले बानाईनं ॥
दयाळ कृपाल माझा शंभू ॥

हा सकल जन कैवारी ॥
मणी-मल्ल धाडीले यमद्वारी ॥
परि हा भोळा सांब सदाशिव ॥
कुलाधिपती शिव परम पुरुष ॥

व्हावा या जीवनाचा येळकोट ॥
व्हावा या जीवनाचा येळकोट ॥

413. हरी हरी हरी हरी

साधने दरम्यान आपण इथे कुणीच नाही हे कळते, पण मायेचा आभास लगेचच जात नाही. ती दुस्तर वाटते. तेव्हा त्या श्रीहरीला कळवळून हाक मारावी वाटे. बाबा अरे किती घनदाट रे तुझी ही माया.

हरि हरि हरि तू माझा माधव हरि ॥
जगद्गुरू नारायण नरहरि ॥

हरि हरि हरि हरि तू माझा मुरारी ॥
तू भवभय दुःख निवारी ॥

हरि हरि हरि हरि तू माझी कृष्णार्ई ॥
तू श्रीगुरू तू माझी मात पिताई ॥

हरि हरि हरि तू माझा मुकुंद हरि ॥
तू परम पुरुष अनंत अनादी ॥

हरि हरि हरि तू माझा गोपाल हरि ॥
रोम रोम हरि हरि उचारी ॥

हरि हरि हरि तू माझा दामोदर हरि ॥
धाव धाव आता तू सत्त्वरी ॥

हरि हरि हरि तू माझा सारंगपाणि ॥
वाहीले हे शिर कापूनी तव चरणी ॥

हरि हरि हरि तू माझा गोविंद हरि ॥
निर्वाणी आलो इथे हरिद्वारी ॥

आधी शरीर पडते मग मन जाते. यामुळे मन पुन्हा नवीन शरीर शोधते आणि त्याचा खेळ ते आपल्या मुसक्या बांधुन आपल्याकडून खेळून घेते. त्यापेक्षा त्याला आधी या शरीरातून अदृश्य करणे आवश्यक आहे जेणे करून शरीर पडल्या नंतर पुन्हा आपण आपल्या ब्रह्म अवस्थेत कायमचे स्थिर होऊन राहूया. आपल्या मुसक्या बांधायला व जन्म जीवन मृत्यू रुपी भोग द्यायला कुणी जवळ येणार नाही.

मुसक्या बांधुन मज मनाने खेळविले
अहंकार गर्वात मज ऐसे अडकविले

पाच संवेदना दोराने मज बांधिलीले
मज मनाने त्याचा ऐसा गुलाम केले

प्रतिष्ठा पत टिकेचे भय मज घातले
त्याचे हक्क हौस लादून मज नाचवले

द्वैताच्या संसारी त्याने आभास निर्मिले
स्वप्न सर्व सत्यची आहे ऐसे भासविले

मालकीचा भाव देऊनी संघर्षास जुंपले
षड्रिपुंच्या आश्रयाने मज भ्रमिष्ट केले

जेव्हा शरीर पडले मजला एकटे सोडले
पाच संवेदना मन बुद्धी स्मृती पळून गेले

देवाच्या दरबारी उभे मजला केले
पापपुण्याच्या हिशेबी मज शासन झाले

पुन्हा मज मनाने इथेच हो पकडले
नवीन जन्मी मज पुन्हा कठपुतळी केले

आता ना व्हावे जी पुन्हा ऐसे ऐसे
म्हणूनी श्रीगुरू चरणी सर्वस्व वाहिले

श्रीगुरूवचने मनासी ब्रह्म समजाविले
त्यास श्वासांच्या अनुसंधानी सहजी निवविले

415. तूच शोध देवा आता...

तूच शोध आता देवा
हृदयी रे माझ्या तुला ॥धृ॥

नाद तू लावला मज हा ऐसा ॥
निघालो शोधण्या मम हृदयातून तुजला ॥

ओलांडीता त्या पंचकोष क्षेत्रा ॥
विसर कसा हा मज माझा पडला ॥

आता कुठे कसा शोधू मी तुजला ॥
शोधणारा सांग कुठे तो उरला ॥

तू लावूनिया छंद तुज शोधण्याचा देवा ॥
का आता केलास हा आपल्यात दुरावा ॥

विनवितो तुजला देवा आता ॥
मी नाही कोठे तूच शोध तुजला ॥

परि मी तुज देतो मम विरहाश्रुंची ग्वाही ॥
तू भेटशील तुजला निश्चित मम हृदयी ॥

416. जे जे तू कराविसी हरी

जे जे तू करविसी हरि ॥

ते ते आम्ही वाहू तव चरणी ॥

तुझे शरीर तुझे मन तुझी बुद्धीमती ॥

धर्म कारणे माध्यम केलेस तू आम्हांसी ॥

लीला तुझी अगम्य अति अति भारी ॥

तू माझ्यात मी तुला शोधतो रे हरि ॥

ऐसे धरूनी हात सहज भवपार करी ॥

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरि ॥

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरि ॥

417. ना पाही परीक्षा...

श्रीहरी अतिशयच दयाळू आहेनियंत्रणात गेलेली अवस्था कारण श्रीहरीला आपली या मनाच्या .अशी भक्तांची धारणा आहे . आपला जीव या मनाच्या मायावी संसारात .माहिती आहेश्रीहरी शिवाय घुसमटत आहे हे पण श्रीहरीला सर्व माहितीच आहेम्हणून अशा बिकट परिस्थितीत सुद्धा जर एखादा भक्त निष्ठेने हरीवर जीवापाड प्रेम करत असेल तर श्रीहरी काय . उलट माझा भक्त श्री सद्गुरूंच्या .नाही नाही मुळीच नाही .परीक्षा घेईल का त्याला अजून संकटात टाकूनवाटेवरून चालत माझ्या पर्यन्त कधी येईल याचीच प्रतीक्षा श्रीहरी करत असतो.त्यालाही भक्ताची आस असते असे नेहमीच वाटत राहते .

ना पाही परीक्षा ना हा पाही सत्व ॥
श्रीहरी आतुरलेला भेटण्या हा भक्त ॥

जो हरिचरणी कायम टेकवितो कपाळ ॥
लाखो गुन्हे करी माफ हरी आहे कृपाळ ॥

पूर्वसंचित कर्मांची होते खाक जळून ॥
जो दिनरात करितो श्रीहरीनामस्मरण ॥

ना चाले तिथे कर्म भौतिकातील नियम ॥
सर्व ईश्वरीय केवळ चाले दृढ प्रेमभाव ॥

एक पाउल हरिनामाचे पडता ज्याचे प्रथम ॥
त्याचा योग हरिशी जुळे आजन्मोजन्म ॥

भक्तांविण श्रीहरी आहे सदा अपूर्ण ॥
तो इतका दयाळू की त्यास नाही नाही रे अंत ॥

चला देऊन टाकू श्रीहरीसी आपुले ते सर्वस्व ॥
हरीभक्तीत होऊ लीन तो पाहील संसार ॥

श्रीसद्गुरूंचा मार्ग दावे श्रीहरिचा स्वर्ग ॥
हा मार्ग ना सोडीन कधी दृढ हा निश्चय ॥

418. अमृताची वृष्टी

ग्रंथ साहित्यात काही रचना अशा असतात की स्थायी व अंतरा बदलून त्याच रचनेत दोन विरुद्ध गोष्टी मांडलेल्या दिसून येतात. तसेच इथे जीवाला प्रश्न विचारून दोन मुद्दे रचनेत मांडले आहेत. इथे सखे हे आपल्यातील जीव स्वरूप वृत्तीला संबोधले आहे.

अमृताची वृष्टी परमानंदाचा विलास ॥
तळहाती ब्रह्म तुझ्या तुला का मायेची गं आस ॥
सखे का मायेची गं आस ॥

वस्तू आणि विषयासक्ती ते करतील घात ॥
षड्रिपूने मग वाढेल हा अहंकार खास ॥
तळहाती ब्रह्म तुझ्या तुला का मायेची गं आस ॥

ना स्पर्शिले तू कधी काया मन बुद्धीस ॥
वासना इच्छा वृत्ती आहे मायेचे आभास ॥
तळहाती ब्रह्म तुझ्या तुला का मायेची गं आस ॥

कर्ता आणि भोक्ता कठपुतलीचा गं नाच ॥
इथे काय गुंतलीस हा मायेचा गं फास ॥
तळहाती ब्रह्म तुझ्या तुला का मायेची गं आस ॥

(आता खाली प्रश्न नाहीत)

ये गं ये श्री सद्गुरू चरणी समर्पणास ॥
श्रीहरी नामाचा हा मिळेल तिथे प्रसाद ॥
अमृताची वृष्टी परमानंदाचा विलास ॥
तळहाती ब्रह्म तुझ्या जणू हरी अनंत आकाश ॥

जागरूकतेने घे हरिनामासह श्वास ॥
क्षणाक्षणाला होईल माया तत्वाचा गं त्रास ॥
अमृताची वृष्टी परमानंदाचा विलास ॥
तळहाती ब्रह्म तुझ्या जणू हरी अनंत आकाश ॥

जीवदशा जाऊन उरेल परब्रह्माचा प्रकाश ॥
तूच ब्रह्म तूच चैतन्य कर निर्वाणी सदा वास ॥
अमृताची वृष्टी परमानंदाचा विलास ॥
तळहाती ब्रह्म तुझ्या जणू हरी अनंत आकाश ॥

दूस्तर है भाई दूस्तर है ॥
यह माया भारी दूस्तर है ॥

रंगो ढंगो सभ शृंगार मे है ॥
मान अपमान सत्कार मे है ॥
दूस्तर है भाई दूस्तर है ॥
यह माया भारी दूस्तर है ॥

फकीर की फकीरी मे है ॥
पंड्या की पूजाविध मे है ॥
दूस्तर है भाई दूस्तर है ॥
यह माया भारी दूस्तर है ॥

साक्षात है सपनो मे भी है ॥
सुखदूख के आभास मे है ॥
दूस्तर है भाई दूस्तर है ॥
यह माया भारी दूस्तर है ॥

नेतृत्व उसका अंधा अहं है ॥
विपरीत सब कुछ देखता है ॥
दूस्तर है भाई दूस्तर है ॥
यह माया भारी दूस्तर है ॥

मन मे स्वयं से बाते करती है ॥
उलटा अगिआन वहा बढाती है ॥
दूस्तर है भाई दूस्तर है ॥
यह माया भारी दूस्तर है ॥

वह कर्ता है वह भोक्ता है ॥
समाधान उसका झूटा ही है ॥
दूस्तर है भाई दूस्तर है ॥
यह माया भारी दूस्तर है ॥

सभी जीव उस की कठपुतली है ॥
काम क्रोध लोभ पर नचाती है ॥
दूस्तर है भाई दूस्तर है ॥
यह माया भारी दूस्तर है ॥

अलगाव उसकी पेहचान है ॥
मृत्यू उपरांत भी उसका कब्जा है ॥
दूस्तर है भाई दूस्तर है ॥
यह माया भारी दूस्तर है ॥

सद्गुरु के चरण जो सदा शरण है ॥

माया उस से कोसो दूर दूर है ॥
मुक्ती है भाई यह मुक्ती है ॥
हरि नाम सिमरन ही मुक्ती है ॥

420. स्वतः श्रीहरी नाम घेई

स्वतः श्रीहरी नाम घेई हरी हरी ॥

श्रवण करी तोच अंतस्थ मुरारी ॥

बैसला ऋषिकेश ऐसा हा हृदयी ॥

सर्व काही तोच चालवितो या संसारी ॥

मीपणाचे संकर्षण करून मोकळा मज करी ॥

कृपाळू मायाळू तू तव चरणी मम अश्रूंच्या सरी ॥

421. माधव मुरारी

हे माधव मुरारी श्रीहरी पांडुरंगा ॥
माझिया चित्ता तुझा रंग श्रीरंगा ॥ ध्रु ॥

जगदाधिपति श्री नरहरि नारायणा ॥
सारंगपाणि हे मधुसूदना दातारा ॥1॥

मनमोहना हे परमादि पुरुषा ॥
हे गोपाळ स्वामी हे नंदलाला ॥2॥

श्रीगुरू उपदेशी जो चालतो ही वाट ॥
नामस्मरणी त्यांच्या तू आहे अंगसंगा ॥3॥

सदा सर्वदा जो आहे तुझी चरणधूळ ॥
उराउरी भेटतो तू त्याच निष्ठावंता ॥4॥

मम सर्वापराधांचा केला तू निरास ॥
दयाळू कृपाळू तू आहे भगवंता ॥6॥

आता तुझी आस सदा माझ्या हृदयात ॥
तुझ्यात मी सामावून राहू दे प्राणनाथा ॥7॥

हे दीनानाथा श्रीकृष्णा मुरलीधरा ॥
कृष्णकन्हैया हरी जय जय श्री गोविंदा ॥8॥

निकट निकट निकट है हरी ॥
हरी बिन निकट अवर नही कोई ॥

सुख संपत्ति दारा सुत ना भाई ॥
रण मृगजल की सब है यह छाई ॥

विसरै देह ता पांऊ हरि राई ॥
यह बाणी संतन की है सांची ॥

सतगुर देई ता नाम धियाई ॥
रिद अंतर नित रघुराई पाई ॥

जनम मरण सब भरम भुलाई ॥
हरि हरि हरि मेरा चित हराई ॥

रे मना रे मना देऊन बघ देऊन बघ ॥
श्रीहरीच्या हाती हात देऊनच तर बघ ॥

ज्या ज्या वेळी तुझा होईल मान अपमान ॥
त्या त्या वेळी स्थिर चित्ताने श्रीहरी जवळी आहे ते जाण ॥

काम क्रोध मोह तुझ्यावर इच्छा वासना पडू दे तुहून ॥
बाल ना बाका होईल श्रीहरी सांभाळेल हाती हात धरून ॥

त्रिविध तापाचे भोग आणि शरीराला येणारे वृद्धत्व ॥
चिंतू पण नकोस मरण दुःख ॥
तुझ्यातच चिंतन हरीनाम अमृत तत्त्व ॥

होतील रे अदृश्य तुझे अहं गर्व अभिमान ॥
श्रीहरीची तुझ्यावर नजर नको सोडूस सावध आत्मभान ॥

विहीत कर्मे कर धर्म-विवेकाने तू सदा ॥
नैष्कर्म्यसिद्धीचा श्रीहरी आहे एक दाता ॥

अपूर्ण सर्व शरीर मन बुद्धी अपूर्ण सर्व वस्तू आणि विषय ॥
सद्गुरू सांगती तुझी परब्रह्म ओळख पूर्णातिपूर्ण एक निरामय ॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी ऐसे श्रीगुरू तुज हृदयी नाम देती ॥
तू लक्ष देऊन ऐक आपोआप ते अखंड मनी येती ॥

ऐसे हे आपुले श्री सद्गुरू दास श्रीहरीचे ॥
चरण धूळ होऊन त्यांची मना राहशील ना तू तिथे ॥

424. सदा मी धूळ श्रीहरी चरणतळी

सदा मी धूळ श्रीहरी चरणतळी राहू दे ॥
नको जन्म मरण मज स्वस्वरूपी राहू दे॥

श्रीगुरू मज सांगती हरी पहावा कसा ॥
कुठे हरी करतो वस्ती आहे तो कसा ॥

श्रीगुरू मज जोडती श्रीहरी नामापाशी ॥
श्रीगुरू कृपेने ते मुखी आपोआप येती ॥

हरिनामि तिथे श्रीहरी नित्य तो पहावा ॥
हृदयस्थ हरी ऐसा गुरुपदेश मिळाला ॥

श्रीगुरू माझा कर्ताभाव हरविती ॥
भोग ना कुणी भोगतो समजावून देती ॥

श्रीगुरू तत्त्व आहे श्रीगुरू उपदेशी ॥
जन्म मरण अलेपित सदा अविनाशी ॥

425. सतगुरु भेटता

श्रीसतगुरु भेटता जीव आभास समजला ॥
स्वस्वरूपाचा मार्ग स्वये प्रशस्त जाहला ॥

आता काय चिंता आम्ही करू इथे देवा ॥
तुझ्या चरणी सर्व जीव वाहिला वाहिला ॥

कर्म गेले भोग ही गेले नुरली वासना ॥
सद्गुरू कृपे मुखी श्रीहरी आला आला ॥

षड्रिपू ना आता इथे घालतील डाका ॥
मनाचिया द्वारी हरी पहारेकरी उभा ॥

अंतर्बाह्य हरी त्याला श्वासांत गुंफला ॥
श्रीहरी नामी रंगला हो भक्तीचा सोहळा ॥

426. श्रीराम नाम

जह मुख लेत श्रीराम नाम भरपूरी ॥
हम सदा रहे उनके चरण धूरी ॥
ऐसी मति हम सतगुरु ते पाई ॥
हृद अंतर मेरे आप बसहु रघुराई ॥

यह तन मन मिथिया है रे भाई ॥
जह देखे माया मोह की खाई ॥
ऐसा सतगुरु जो मिलै भरपुरा ॥
चितही मे पाउ हरि परम प्रगासा ॥

गुरु चरण मन लागि हरी लडी लाई ॥
मन अंतर अति सुंदर प्रिय भाव जगाई ॥
हाथ पकड हमरे साथ चले हरी राई ॥
ऐसी चुकी अब हमरी आवण जानी ॥

सतगुरु सेविया हरि औखद पाया ॥
चूँका भरम बिनसे सभ माया ॥
उतम गति मति निर्मल हरिनाम ॥
सदा भजो रे श्रीराम जय राम ॥
श्रीराम जय राम ॥

427. नक्कीच भेटेल श्रीहरी

नक्कीच भेटेल श्रीहरी या साशंक जीवाला ॥

कशाला हव्यात आता
श्रद्धेच्या या कुबड्या ॥

विज्ञानरुपी गुरुने श्रीहरी
तळहाती आणला ॥

प्रवाहात आता भक्तीच्या
सपशेल तुम्ही झोकून द्या ॥

स्वानंदे श्रीहरी अंतर्बाह्य
अगदी पक्के हे जाणा ॥

नक्कीच भेटेल श्रीहरी या साशंक जीवाला ॥

संतांचे चरण माथ्यावर
हृदयी उपदेश त्यांचा ॥

श्रीहरी नाम सदा यावे मुखाला
नक्कीच भेटेल श्रीहरी या साशंक जीवाला ॥
नक्कीच भेटेल श्रीहरी या साशंक जीवाला ॥

428. बंध मुक्तीचे गाणे

असंख्य बंध येथेच्छ झाले मोकळे मोकळे ॥
रोमरोमातून अंतरी आनंद आकाश जोडले ॥

माझ्यातच ते मीपण मिसळूनि गेले ॥
शरीर तिथेच पण मला अनंत गवसले ॥

आता मी आरपार उदरी ब्रह्मांड जाणले ॥
तरीही ते मला अलेपित अस्पर्शित राहिले ॥

ना आकार ना विकार अद्वय स्वरूप ते ॥
तत्व निरंजन निरंकार निर्वाण प्रकटले ॥

आता शरीर मन बुद्धीशी जीव नातेच तुटले ॥
द्रव्य माझे वेगळे हरीनामजपि ते जाणले जाणले ॥

ना अंत ना पारावार मन ऐसे अमन जाहले ॥
नाद जीवाचा सोडून ते कुठे दिसेनासे झाले ॥

कोण होता जन्मला आता कोणास काय ठावे ॥
शरीर मन बुद्धीचे आता येणे जाणेचि संपले ॥

ऐसा हा अनुपम सोहळा घडून यावा श्रीगुरू कृपे ॥
श्रीहरीचे ऐश्वर्य मी सदा होऊन राहू दे ॥

429. सद्गुरु वाणी

श्री सद्गुरूंची वाणी ॥
साक्षात श्रीहरी सारंगपाणि ॥

आमुचे हृदयीचे आर्त
तेणे स्वये जाणूनी ॥
ऐसा हा झाला ग्रंथी ॥
आमुचा बोलविता धनी ॥

अखंड आम्ही तुमचे आहोत ऋणी ॥
आलो समर्पणी श्री सद्गुरू चरणी ॥

आलो समर्पणी श्री सद्गुरू चरणी ॥

धूळ व्हावी हा जन्म लागो संतांच्या चरणी ॥ पांडुरंग व्हावा जीव आता नको येरझार संसारी ॥

संतांचे अभंग त्यांचा रचिता पांडुरंग ॥ संत झाले माध्यम नित्य ते स्मरता परब्रह्म ॥

पांडुरंगा काळजी पडली भक्तांची अपार ॥ भक्तांसाठी त्याचा होतो जीव कासावीस ॥

स्वये रचिले अभंग जणू मुक्तीचे महामंत्र ॥ संतवाणी मधून प्रकटला लावूनी जीवाला आस ॥

ऐसे धरीले हात देवाने आमुचे त्याच्या हाती ॥ भय चिंता सरली आम्ही सुखे भवसागर तरति ॥

काय वर्णू शोभा या लोभस पांडुरंगाची ॥ जीव ओवाळून टाकला देवा तुझ्या चरणांशी ॥

धन्य धन्य झाला जीव तुमच्या दिव्य ऐश्वर्य दर्शनी ॥ घडावी तुमची सेवा नित्य कृपा अशी असू द्यावी ॥

ऐसा व्हावा जी सफल सुफल आमुचा जीवन सोहोळा ॥ विसर पडावा देवा नित्य आमुचाच आम्हाला ॥

430. हे ईश्वरी

हे ईश्वरी आत्मरूपा अनंत तू ॥
निरावयव निरंजन निरालंब तू ॥
अज्ञेया अलक्ष्या अगम्या तू ॥
अजा अद्वैता अमृता तू ॥
अक्षरा तू अक्षया तू ॥
अचिंत्य गुणातिता शक्तिरूपा तू ॥
निर्द्वंद्व निर्गुण सर्व साक्षी तू ॥
विज्ञानदीपांकुरी महाशून्या तू ॥
निर्विकल्प तू निर्वाणरूपा तू ॥
परब्रह्म रुपिणी कालातीता तू ॥
मृत्युंजया अजेया अपरा तू ॥
मी तुझा पुत्र प्रकट हो हृदयी तू ॥

431. दृश्याहून तो पहाणारा निराळा

श्री सद्गुरू चरणी विनम्र वंदन ॥

परम पूज्य श्री सद्गुरू डॉ काका यांनी परब्रह्म कसे आगळेवेगळे आहे हे अनेक वेगवेगळ्या पद्धतीने समजावून सांगितले अगदी पेपर वेटचे उदाहरण देऊन चित्तात ते प्रकाशा समान कसे प्रकट होते आणि सर्वाहून अलिप्त कसे राहते तेही त्यांच्या अनेक प्रवचनातून त्यांनी छान समजावून सांगितले. जे मनावर कायमचे कोरले गेले आहे.

या श्री सद्गुरू उपदेशानुसार जे जे जीवाकडून पाहिले जाते ते ते त्या ब्रह्म वस्तू हून वेगळे होत जाते अशी संकल्पना इथे पाहण्याच्या क्रियेतून मांडण्याचा प्रयत्न आहे. हे खंडणमंडणाचे practical आपण सहज बसल्या जागी करू शकतो.

दृश्याहूनी तो पहाणारा निराळा ॥
अत्यंत प्रखर हा नियम विज्ञानाचा ॥

रस गंध स्पर्श ध्वनी दृष्टी दृश्यमान होती जीवाला ॥
परि मायोद्धावे तो दृश्यातच अडकला ॥

श्रीसद्गुरू उपदेश खड्ग हाती घेता ॥
दृश्यमानाचे इथे खंडन ऐसे करूया ॥

(आपल्यातील सर्वोच्च मी हा भाव इथे पाहण्याच्या क्रियेपासून प्रथम वेगळा केला आहे.)

ब्रह्म प्रकाशातील सर्वोच्च भाव सोहळा ॥
सदा सर्वाहून आहे तो अलिप्त वेगळा ॥

पाहतो इथे सर्व काया अवस्थांना ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

पाहतो सर्व विचार स्मृती अन मनाला ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

पाहतो ह्या बुद्धी प्रतिभा विलासाला ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

पाहतो अहं गर्व अभिमानाला ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

पाहतो इच्छा वृत्ती वासनांना ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

पाहतो अंतर्बाह्य संवेदना जाणीवांना ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

पाहतो जन्म जीवन जरा मृत्यूला ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

पाहतो एकेक श्वास उच्छवासांना ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

पाहतो वस्तू विषय काल अवकाशाला ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

पाहतो ज्ञान विज्ञान अज्ञानाला ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

जाणतो द्वैत अद्वैताला ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

वेगळे जे जे आहे त्याहूनही मी वेगळा ॥
म्हणून मी सदा त्याहूनी अलिप्त वेगळा ॥

जरी एकमेव मी हा द्रष्टा जगाचा ॥
परि मज पाहण्या मी आहे आंधळा ॥

जे जे मी पाहे ते ना मी माझे मला ॥
कर्ता भोक्ता मिळाले श्रीहरी चरण धुळीला ॥

जे जे मी पाहे त्याचा संसर्ग ना कधी मला ॥
भाव मी सोडून सर्व बदलते क्षणाक्षणाला ॥

अशी तुटेल माया करता खंडन तिजला ॥
षड्रिपू तृष्णा भय दूर्मती क्षणात जाती लयाला ॥

तत्व एक ज्याने मी अलिप्त केला ॥
ते पहाणेचि झाले प्रकाशित मी सुद्धा प्रकाशिला ॥

मी वर प्रकाश पडता तो ही झाला वेगळा ॥
स्वतःमध्ये स्वतःच मी निःशब्द होऊन राहिला ॥

आता इथे केवळ ब्रह्म प्रकाश सोहोळा ॥
शून्याचा हा उंबरठा आधार मिळाला जीवाला ॥

शेवटी तो मी भाव सुद्धा ज्याच्यामुळे प्रकाशित होऊन वेगळा पडतो ते ब्रह्म तत्व आहे. इथे आपण मौन होतो. विचार संपतात. बुद्धी अदृश्य होते. आपले सर्व काही त्या ब्रह्म तत्त्वामुळे प्रकाशित होते आणि पाहण्याची क्रिया सुद्धा वेगळी पडते. इथे शेवटचा टप्पा अन आता पुढे ब्रह्मा शिवाय काहीही नाही व ते आपल्या सर्वांत आहे. इथे अहं ब्रह्मास्मि हा खूप मोठा दिलासा मनाला मिळतो की बुवा केवळ ब्रह्म तत्त्वाचीच इथे सत्ता आहे आणि अजूनही त्या मानवी जीवनाच्या स्पर्शाने ते ब्रह्म तत्त्व लिप्त झालेले नाहीये. अशा रीतीने आपण वेगाने शून्य उंबरठ्यावर येतो. इथे विसावा छान मिळतो अन श्रीहरीच्या आपण अगदी निकट आहे असे वाटते.

432. जर तुला असे वाटले कधी गोपाळा

आपले जीवन हे ईश्वराधीन आहेपण आपलाही थोडा अधिकार .तो जसे घडवितो त्याला आपण स्वतःला सादर करत असतो .
त्यावरून झालेली ही रचना .आहे की एक विनंती आपण त्याच्या चरणी ठेऊ शकतो

जर तुला असे वाटले कधी गोपाळा ॥
सुखे घालावे आम्हा पुन्हा इथे जन्माला ॥

परि देशील ऐसी वाचा देवा,
केवळ तुझेच नाम येईल आमुचे मुखा ॥

मन ऐसे दे तव चरणी,
अखंड व्हावी आनंदाश्रूवर्षा ॥

पाय आमचे चालो श्रीगुरू निवासाला ॥
हात सदा सेवो या श्रीगुरू चरणाला ॥

दे अशी दृष्टी डोळ्यांना ,
पाहतील नित्य तव सुंदर हरिरूपाला ॥

कान दे गा ऐसे देवा,
श्रवण करतील केवळ संतकीर्तनाला ॥

बुद्धी मती दे ऐसी देवा,
अद्वैतविज्ञानी तुझे दर्शन होईल आम्हाला ॥

भूक दे ऐसी देवा,
वेचिन संतग्रंथी त्या दिव्य शब्दब्रह्माला ॥

तहान दे ऐसी देवा,
प्राशिन नित्य श्रीगुरू उपदेश वाणीला ॥

दे ऐसी वस्त्र आम्हा देवा,
जणू तेच तुझे प्रेम व असेल तुझी कृपा ॥

निवारा दे ऐसा देवा,
जिथे तुझा जयघोष नित्य घुमेल देवा ॥

सुख दे ऐसे जे स्मित होऊन,
पावेल निःशब्द परम आनंदाला ॥

दुःख दे ऐसे देवा,
जिथे तुझ्या विरहाचा येईल आम्हा हुंदका ॥

मरण ऐसे दे देवा जसे सहजच,

ही आत्मज्योत मिलेल तव ब्रह्मज्योतीला ॥

जीवन ऐसे दे देवा,
कधी तुझा विसर ना व्हावा ॥
कधी कधीच तुझा विसर ना व्हावा ॥

जर तुला वाटले असे कधी गोपाळा ॥
सुखे घालावे आम्हा पुन्हा इथे जन्माला ॥

श्रीहरी चरणी समर्पित ॥

433. अद्वैताच्या प्रांगणी

जीवन आभासी असूनही ते सत्य समजून जगणे व हे सर्व समजत असूनही माणूस कार्यकारणभावाची कठपुतळी होण्यातच समाधान मानतो हे अति गुह्य आश्चर्य आहेम्हणून आता ब्रह्म स्वतः म्हणतेय की .,

माझ्या या अद्वैताच्या प्रांगणी,
कुठून आला हा सगुण डोंबारी ॥

जोडून शरीर मन अन बुद्धी,
केले असंख्य जीव कठपुतळी ॥

माझिया परम प्रकाशी,
निर्माण झाला अहं असंख्य त्या पिंडी ॥

माझिया परम प्रकाशी,
अनुभवा अर्थपूर्णता आली ॥

गंमत पाहतो कसा हा डोंबारी,
मी मी करुन जीव येतो काकुळती ॥

स्वप्नाशिवाय काही नाही या जीवनी,
हात रिक्त त्यांचे सदा मरते समयी ॥

भ्रमिष्ट ऐसे ते या भ्रांत सुखदुःखाशी,
इच्छा ईर्षा जीवात उगा स्पर्धा करिती ॥

जे धाव घेती सत्वर श्रीगुरू चरणी,
ते मजला येऊन नित्य हो मिळती ॥

जे वेडे होऊन राखति वासनावृत्ती,
त्यांची होते जीवनी पुन्हा पुनरावृत्ती ॥

मी सदा अलिप्त अनंत अभेद्य सदानंदी,
जीव विषयाने लिप्त मयदिची गुलामी ॥

श्री हरी चरणी समर्पित ॥

434. ब्रह्म ज्ञान द्या हो

ब्रह्म ज्ञान द्या हो मज ब्रह्म ज्ञान द्या ॥
नको जे जे समजते त्या मनबुद्धी मेंदूला ॥
ते त्रिगुणांचे ज्ञान आता नको हो मला ॥
कर्ता आणि भोक्ता आता नाही व्हायचे मजला ॥

ब्रह्म ज्ञान द्या हो मज ब्रह्म ज्ञान द्या ॥
त्या श्रीहरीच्या रंगात रंगू द्या ना मला ॥
त्या परम आनंदाचा आनंद होऊ द्या मला ॥
तत्त्व अद्वैत निरंजन अनंत स्वसंवेद्य जाणू द्या ना मला ॥

ब्रह्म ज्ञान द्या हो मज ब्रह्म ज्ञान द्या ॥
मी नाही मनबुद्धी काया कळू द्या ना मला ॥
इच्छा वासना वृत्ती आता कोण ह्या कुठल्या ॥
षड्रिपूंसह विश्व स्वप्न अनुभवू द्या ना मला ॥

ब्रह्म ज्ञान द्या हो मज ब्रह्म ज्ञान द्या ॥
अनुभवू दे अस्पर्शित अलेप्य मी सदा ॥
मी एक रेणू श्री सद्गुरू चरणतलांचा ॥
आस हो माझी तुम्ही जरा ही पुरवा ॥

दोन श्वासांच्या अवकाशी शोधतो मी ज्याला ॥
तो श्रीहरी दाखवा सद्गुरू मजला ॥
माझा प्रिय श्रीहरी तिथेच मज दाखवा ॥

435. स्वसंवेद्य तत्त्व नित्य

स्वसंवेद्य तत्त्व नित्य ॥

काया मन बुद्धी विषय वस्तूने अलेप्य ॥

साक्षात ते ब्रह्म चैतन्य ॥

त्याच्या शिवाय ना इथे कुणी अन्य ॥

जो समजावून देई ऐसे परम सत्य ॥

आमुचे श्री सद्गुरू साक्षात ईश्वर तुल्य ॥

श्रीहरी चरणी भाव सदा हा शरण्य ॥

436. श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी ॥
अति अति अवीट मधुर मधुर श्रीहरी ॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी॥
मन तन हरपले आत्मभान श्रीहरी ॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी॥
तहानभूक तो तोच अन्न आणि पाणी॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी॥
श्रीगुरु चरणी हट्ट नाम द्या हो श्रीहरी॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी॥
जिथे जाईल मन तिथे पाहीन श्रीहरी॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी ॥
ज्यामुळे अवघे ज्ञान विज्ञान प्रकाशती ॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी॥
जन्म जीवन मृत्यू पलिकडे तो श्रीहरी॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी॥
पाहता बोलता करता कर्म सर्व सर्व श्रीहरी॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी॥
सगेसोयरे देश काल स्थिती श्रीहरी ॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी॥
अनंत तत्त्व अमृतानंद कंद श्रीहरी ॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी॥
श्वास श्रीहरी प्राण श्रीहरी जाणीव श्रीहरी॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी॥
अंगावर शहारे डोळ्यात अखंड पाणी श्रीहरी ॥

श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी श्रीहरी ॥
केवळ श्रीहरी श्रीहरी आणि श्रीहरीच ॥

437. हरिदास

ज्या श्रीरामाने रावणाच्या सुद्धा सैन्यातील जखमी वीरांना औषध उपचार केले. अंतकाळी कुणाला मांडीवर घेऊन पाणी पाजले. साश्रु नयनांनी त्यांच्यावर अग्निसंस्कार केले. आणि अनेकदा रावणाला युद्धापासून परावृत्त करण्याचे प्रयत्न केले पण ऐकेचना म्हणून अंती स्वतःच्या मनावर दगड ठेऊन रावणाला मारले त्या परम अलौकिक श्रीरामाचा नारायणाचा दास होणे सोपे आहे का?

सोपे नाही होणे श्रीहरिचा दास ॥
तिथे होतो मी पणाचा नित्य सर्वनाश ॥

अणुरेणूमध्ये नित्य श्रीरामाचा वास ॥
तिथे नमितो सदा हा हरिचा दास ॥

डोळ्यात करुणा मनात आनंदाची रास ॥
प्रभूप्रेमात भिजलेला असतो हरिचा दास ॥

शत्रुत्व लादता कुणी त्यावर हो उगाच ॥
नाइलाजास्तव रोखती तिथे तो तयास ॥

परि शत्रू तोच भेटता पुन्हा कुठे तयास ॥
प्रेमालिंगन देतो त्यास हरीचा दास ॥

सुख दुःखाच्या प्रती नित्य असे हा उदास ॥
खेळ हा मायेचा तो जाणून असतो खास ॥

प्राणपति दर्शन त्याचा एक एक श्वास ॥
चैतन्यप्रकाशात पाहे जाणीवांचा भास ॥

पाचही तत्त्व होती त्या हरिदासाचे दास ॥
हा चालतो पुढे करुनी मागे इंद्रिय निरास ॥

श्रीगुरुचरणी नित्य त्याचा असे हो निवास ॥
ऐसा भाग्यवंत श्रीहरीचा नित्य असे बा दास ॥

श्रीहरी चरणी समर्पित ॥

438. खेळ हा कुणाचा

आपणच उगा द्रष्टा व्हायचं,
आपणच सर्व स्वप्नांतून जगायचं,

षड्रिपूं सत्यतेचे भास निर्माण करायचं,
त्या आकर्षणात उगाचच वाहून जायचं,

जन्म जीवन मृत्यूच्या संघर्षात रहायचं,
काहीही घडत नसताना सर्व काही सोसायचं,

स्वतःच स्वतःला कोड्यात टाकायचं,
जन्मोजन्मी उगाच भरकटत राहायचं,

आधी सृष्टीचे सृजन रचायचं,
पुन्हा विनाश करत राहायचं,

मिथ्या द्वैतात आपणच यायचं,
अद्वैत तिथे जीव तोडून समजून घ्यायचं,

वास्तवाचे भान सदा ठेवायचं,
पण सर्व आभासी असं मानायचं,

कर्ता आणि भोक्ता प्रत्यक्ष साकारायचं,
मात्र दोन्ही काल्पनिक समजून त्यांना त्यागायचं,

आहे म्हणता काहीच कुठे नसायचं,
नाही म्हणता सर्वत्र सदा असायचं,

ब्रह्मानुभवासाठी अष्टांग योगी व्हायचं,
स्वस्वरूपानुभव घेऊन विदेही व्हायचं,

बंधमुक्तीच्या प्रयत्नांना नाही इथे थकायचं,
मुक्तावस्थेत इथे बंधच नाही म्हणायचं,

तो अकर्ता अकर्मि कसे ते सगुण प्रकटायचं,
पण तोच सर्व करतो समजून त्यालाच शरण जायचं,

खेळ हा कुणाचा कधीच नाही कळायचं,
खेळायचा असा की अजिबातच नाही खेळायचं....

साक्षी तू...

जितकी माया आहे भरगच्च ॥

जितका साक्षीभाव कर तू घट्ट ॥

जितकी माया आहे चंचल ॥

जितका साक्षी अनुभव अचल ॥

ज्या मायेचा ना लागे अंत ॥

जितका तू आहेस साक्षी अनंत ॥

स्वप्न हे सर्व मायेच्या अलीकडे ॥

साक्षी तू सदा मायेच्या पलिकडे ॥

एक पाउल श्वासावर, ॥

दुसरे श्रीहरीनामावर, ॥

पहावा साक्षी साक्षात आत बाहेर ॥

440. श्री गुरु संत तुकाराम महाराज

श्री सद्गुरु भेटता पाठीराखा ॥
घर सोडले संसार सोडला ॥
बैसले संत साधन ओसरीवर आता ॥
घर उरले कर्त्या भोक्त्या विना ॥
पोरक्या झाल्या इच्छा वासना ॥
मिटल्या चिंता गेली ममता ॥
षड्रिपू विझले आत संपले आता ॥
विश्राम पावले संत शांती लाभली घराला ॥
नित्य घुमला आवाज श्रीहरी नामाचा ॥
उतरविले छप्पर अज्ञान जीवभावा ॥
तोडल्या खिडक्या सर्व असत कृतींच्या ॥
दरवाजे काढले त्या इच्छा आकांक्षा ॥
उतरवल्या भिंती सर्व द्वैतभेदांच्या ॥
नांगर वैराग्याचा घरावर फिरवला ॥
अहंकार सर्व भुईसपाट झाला ॥
अणुरेणूंमध्ये हरीघोष दुमदुमला ॥
झाला तुका आकाशाएवढा ॥
आता ज्ञान सूर्य मध्यान्ही आला ॥
उतरले विमान देव जवळी आला ॥
श्रीहरीने धरीला हाती हात संताचा ॥
अनंतात आनंद सदेह सामावला ॥

441. सती...

अस्मिता हे अहंकाराचे/गर्वाचे/अभिमानाचे एक स्वरूप आहे. जिथे अज्ञान तिथे ही अस्मिता तीव्र स्वरूपात असते. म्हणून तिला अज्ञान स्वरूप पतीची पत्नी असे म्हटले आहे. पण आता जीवाला श्री सद्गुरू भेटले असून ज्या क्षणी श्री गुरू उपदेशात आणि साधनेत त्याला श्रीहरीचे स्वरूप जाणवते तेव्हा तात्काळ अज्ञान निघून जाते. म्हणजेच त्याच्या अस्मितेचा अज्ञान स्वरूप मायावी पती मरतो. त्याच्यासह ती अस्मिता सुद्धा सती जाते आणि शेवटी जीव ब्रह्म ऐक्य उरते. असे रूपक इथे घेतले आहे. त्या अस्मितेचे हे स्वगत इथे रचनेत शब्दबद्ध झाले आहे.

हा अज्ञान अहं पती ऐसा लोपला गं बाई ॥ माझा मायावी पती लोपला गं बाई ॥

ह्या जीवाची अस्मिता अशी मी ॥

म्हणूनी सती चालले सहजानंदी ॥

तो अज्ञान स्वरूप मम अहंकार पती ॥

त्याची जन्मोजन्मी मी होते रती ॥

होती ओढ त्याचीच तीव्र मनभ्रांती ॥

मी जन्मोजन्मी गेले त्याच्याच आहारी ॥

षड्रिपू जन्मे त्याच्या द्वैतरूप संसारी ॥

वृत्ती इच्छा वासना ममता ही सासरची गं मंडळी ॥

थाटला त्याने संसार त्याच्या स्वप्नभुवनी ॥

तृष्णेने नांदली सदा माझा जीव व्याकूळती ॥

भोगिले जीवासह संसार सुख ते आभासी ॥

शेवटी मी दुःखी काहीच नुरले माझ्या हाती ॥

जीवाच्या त्या प्रत्येक मृत्यू समयी ॥

पळे इंद्रिय-लंपट हा अज्ञान पती ॥

इच्छा वासनांच्या दोरीने मज बांधूनी ॥

पुत्र पौत्र षड्रिपू मज अनेकदा जाळीती ॥

मी वेडी पुन्हा पुन्हा त्यास भाळली ॥
कैफ अहंशक्तीचा सदा वरीले अज्ञानासी ॥
आता जीव जागृत जाहला श्रीगुरुवचनी ॥
जाणले माझा मायबाप माहेर आहे श्रीहरी ॥
मी हे जाणता माझा मायबाप हो श्रीहरी ॥
मृत पावला हा तात्काळ अज्ञान अहं पती ॥
त्या अध्यात्म ज्ञानरूप दिव्य इंधनी ॥
श्रीहरी विरहाचा चेतवून तीव्र भडाग्नि ॥
त्यावरी ठेवुन मृत अज्ञान अहं-पती ॥
मी अस्मिता सहजी चालले गं सती ॥
पुत्र पौत्र षड्भिपू ज्वाळेत उडी घेती ॥
सासरची सर्व मज सवे ती जळती ॥
भिडल्या चितेच्या ज्वाळा आकाशाच्या अंती ॥
ज्ञानविज्ञान प्रकाश सूर्य दिसे अनंत कोटी ॥
जीव जाहला ऐसा मोकळा त्याच्या स्वस्वरूपी ॥
जीव-ब्रह्म ऐक्य प्रकटले त्याच्या गुह्य हृदयी ॥
ऐसा लोपता हा अज्ञान अहं पती ॥
ह्या जीवाची अस्मिता अशी ती ॥
म्हणून झाली सती सहजानंदी ॥

442. बाबा तू सर्व साक्षी हो

शरीर चालले तुझे मृत्यू कडे ॥

तू काहून रमलास बाबा इथे ॥

मृत होणाऱ्या तुझ्या शरीरासंगे ॥

अमरत्व तू हे काय मानिले ॥

ईश्वरीय लीलेने ती माया पसरते ॥

स्वतःमध्ये ती अति मशगूल होते ॥

स्वतः स्वतःची सूत्रधार ती होते ॥

स्वतः कठपुतळी होऊन नाचते ॥

असंख्य जीव ती उत्पन्न करते ॥

वेडे करते कर्ता भोक्ता भ्रांतिने ॥

सोडून तुला शरीर जाण्यापूर्वी ते ॥

तू ब्रह्म जाणून हो सर्व साक्षी इथे ॥

अशी ही संधी फक्त मानव जन्मीच रे ॥

तू ब्रह्म जाणून हो सर्व साक्षी इथे ॥

443. साधक

श्री समर्थाच्या दासबोध मध्ये साधक कसा असावा हे छान दिले आहे. त्यावरून ही रचना सुचली. त्याआधी त्या साधकाविषयी संक्षिप्त...एकदा का ह्या मायेचे मिथ्या पण समजले की साधक इथे असून नसल्यासारखाच रहातो. कर्ता भोक्ता भूमिकांचा तो त्याग करेल. सर्वांसाठी सर्व काही करेल पण कर्तृत्व त्याच क्षणाला विसरून जाईल. कोणतेही भोग व मान अपमान त्याला स्पर्श करणार नाही. ईर्ष्या तुलना द्वेष मत्सर क्रोध त्याच्या जवळ येणारच नाहीत. त्याच्या आतील लोभ मोह काम वासना व इतर षड्रिपू तो हरि भजन करून भक्ति मार्गाने नाहीसे करेल. त्यासाठी तो अद्वैत दर्शन शास्त्र समजून घेईल. तो संसाराच्या मर्यादा व कर्तव्य म्हणून इच्छा व्यक्त करेल, प्रयत्न करेल पण त्यात आसक्ती craving नसेल. जे काही तो मिळवेल ते ते त्याच क्षणी ईश्वराला अर्पण करेल. त्याला सुख दुःख प्रभावित करणार नाही. तो प्रत्येक क्षणी मुक्त असेल. राजकारण, वादविवाद, कुरघोडी, बदला घेणे, दांभिकपणा, लबाडी अशी जीवाचा सर्वनाश करणारी बुद्धी त्याला सुचणारच नाही. तो सतत क्षमा करणारा असेल, अत्यन्त विनम्र असेल, देव, आईवडील, गुरू यांच्या चरणी सतत लीन असेल. संसारीक जबाबदारीतून जेव्हा वेळ मिळेल तेव्हा तो एकटाच राहील आणि भजन ध्यान मनन चिंतन ह्यात वेळ व्यतीत करेल.

साकार आहे सगुणासह संसार आहे ॥
पण आता इथे माया नाही ॥

वृत्ती आहे इच्छेसह फळ ही आहे ॥
पण आता इथे कर्ता व भोक्ता नाही ॥

साक्षी आहे द्रष्टा आहे ॥
पण आता दृश्य दर्शन कुठेच नाही ॥

मी आहे माझे मला सुद्धा आहे ॥
पण आता इथे मालकी सत्ता कुणाचीच नाही ॥

जन्म आहे जीवन अन मृत्यू ही आहे ॥
पण आता इथे कुणी जीवच नाही ॥

श्रीहरी नामाची सतत धार आहे ॥
अहंमनबुद्धी इथे आता कुठे दिसतच नाही ॥

जरी इथे सर्व काही आहे आहे पण ॥
श्रीहरीशिवाय आता उरलेले काहीही नाही ॥

444. सती

अस्मिता हे अहंकाराचे/गर्वाचे/अभिमानाचे एक स्वरूप आहे. जिथे अज्ञान तिथे ही अस्मिता तीव्र स्वरूपात असते. म्हणून तिला अज्ञान स्वरूप पतीची पत्नी असे म्हटले आहे. पण आता जीवाला श्री सद्गुरू भेटले असून ज्या क्षणी श्री गुरू उपदेशात आणि साधनेत त्याला श्रीहरीचे स्वरूप जाणवते तेव्हा तात्काळ अज्ञान निघून जाते. म्हणजेच त्याच्या अस्मितेचा अज्ञान स्वरूप मायावी पती मरतो. त्याच्यासह ती अस्मिता सुद्धा सती जाते आणि शेवटी जीव ब्रह्म ऐक्य उरते. असे रूपक इथे घेतले आहे. त्या अस्मितेचे हे स्वगत इथे रचनेत शब्दबद्ध झाले आहे.

हा अज्ञान अहं पती ऐसा लोपला गं बाई ॥ माझा मायावी पती लोपला गं बाई ॥

हया जीवाची अस्मिता अशी मी ॥

म्हणूनी सती चालले सहजानंदी ॥

तो अज्ञान स्वरूप मम अहंकार पती ॥

त्याची जन्मोजन्मी मी होते रती ॥

होती ओढ त्याचीच तीव्र मनभ्रांती ॥

मी जन्मोजन्मी गेले त्याच्याच आहारी ॥

षड्रिपू जन्मे त्याच्या द्वैतरूप संसारी ॥

वृत्ती इच्छा वासना ममता ही सासरची गं मंडळी ॥

थाटला त्याने संसार त्याच्या स्वप्नभुवनी ॥

तृष्णेने नांदली सदा माझा जीव व्याकूळती ॥

भोगिले जीवासह संसार सुख ते आभासी ॥

शेवटी मी दुःखी काहीच नुरले माझ्या हाती ॥

जीवाच्या त्या प्रत्येक मृत्यू समयी ॥

पळे इंद्रिय-लंपट हा अज्ञान पती ॥

इच्छा वासनांच्या दोरीने मज बांधूनी ॥

पुत्र पौत्र षड्रिपू मज अनेकदा जाळीती ॥

मी वेडी पुन्हा पुन्हा त्यास भाळली ॥

कैफ अहंशक्तीचा सदा वरीले अज्ञानासी ॥

आता जीव जागृत जाहला श्रीगुरूवचनी ॥

जाणले माझा मायबाप माहेर आहे श्रीहरी ॥

मी हे जाणता माझा मायबाप हो श्रीहरी ॥
मृत पावला हा तात्काळ अज्ञान अहं पती ॥

या अध्यात्म ज्ञानरूप दिव्य इंधनी ॥
श्रीहरी विरहाचा चेतवून तीव्र भडाग्नि ॥

त्यावरी ठेवून मृत अज्ञान अहं-पती ॥
मी अस्मिता सहजी चालले गं सती ॥

पुत्र पौत्र षड्विपू ज्वाळेत उडी घेती ॥
सासरची सर्व मज सवे ती जळती ॥

भिडल्या चितेच्या ज्वाळा आकाशाच्या अंती ॥
ज्ञानविज्ञान प्रकाश सूर्य दिसे अनंत कोटी ॥

जीव जाहला ऐसा मोकळा त्याच्या स्वस्वरूपी ॥
जीव-ब्रह्म ऐक्य प्रकटले त्याच्या गुह्य हृदयी ॥

ऐसा लोपता हा अज्ञान अहं पती ॥
हया जीवाची अस्मिता अशी ती ॥
म्हणून झाली सती सहजानंदी ॥

445. संत श्री

श्री सद्गुरु भेटता पाठीराखा ॥
घर सोडले संसार सोडला ॥
बैसले संत साधन ओसरीवर आता ॥

घर उरले कर्त्या भोक्त्या विना ॥
पोरक्या झाल्या इच्छा वासना ॥

मिटल्या चिंता गेली ममता ॥
षड्रिपू विझले आत संपले आता ॥

विश्राम पावले संत शांती लाभली घराला ॥
नित्य घुमला आवाज श्रीहरी नामाचा ॥

उतरविले छप्पर अज्ञान जीवभावा ॥
तोडल्या खिडक्या सर्व असत कृतींच्या ॥

दरवाजे काढले त्या इच्छा आकांक्षा ॥
उतरवल्या भिंती सर्व द्वैतभेदांच्या ॥

नांगर वैराग्याचा घरावर फिरवला ॥
अहंकार सर्व भुईसपाट झाला ॥

अणुरेणूंमध्ये हरीघोष दुमदुमला ॥
झाला तुका आकाशाएवढा ॥

आता ज्ञान सूर्य मध्यान्ही आला ॥
उतरले विमान देव जवळी आला ॥

श्रीहरीने धरीला हाती हात संताचा ॥
अनंतात आनंद सदेह सामावला ॥

446. साक्षी तू ...

जितकी माया आहे भरगच्च ॥
तितका साक्षीभाव कर तू घट्ट ॥

जितकी माया आहे चंचल ॥
तितका साक्षी अनुभव अचल ॥

ज्या मायेचा ना लागे अंत ॥
तितका तू आहेस साक्षी अनंत ॥

स्वप्न हे सर्व मायेच्या अलीकडे ॥
साक्षी तू सदा मायेच्या पलिकडे ॥

एक पाउल श्वासावर, ॥
दुसरे श्रीहरीनामावर, ॥
पहावा साक्षी साक्षात आत बाहेर ॥

447. झालो मोकळे मोकळे

Big bang झाल्यानंतर बल आणि गुण यांचे असंख्य सूक्ष्म ऊर्जा कण प्रचंड वेगाने प्रवास करू लागले आणि त्यांनी हे विश्व अस्तित्वात आणले. ही ऊर्जा अशीच प्रचंड वेगाने प्रवास करत असताना त्यांनी विविध रूपे घेतली जसे अनेक तारे, ग्रह, शरीर, मन आणि बुद्धी.

हा वेग इतका अगम्य आहे की त्यात बल, गुण, स्थळ, काळ, वेळ, गती, मिती हा ऊर्जा समुच्चय मिसळल्यामुळे जीवाला वाटते की त्याच्या जीवनातील तोच सर्व काही करत आहे. पण प्रत्यक्षात शरीर मन आणि बुद्धी यांच्या एकत्रित येण्याने निर्माण झालेला जीव त्या वेग गुण आणि शक्ति आदी ऊर्जा समुच्चयांच्या प्रभावाने आपोआपच जगत असतो. त्याला big bang पासून लाभलेली गती आपोआप सर्व जीवन जगायला लावते. तो जीव त्याच्या क्षमता जशा आहेत तसे संवेदित होतो, अनुभावित होतो, प्रतिसाद देतो, निर्णय घेतो, स्मृती वापरतो.

त्या जीवातून सदबुद्धी आणि दुर्बुद्धी असे दोन ऊर्जा प्रकार सतत वहात असतात. त्यातील निरीक्षक म्हणून आपला कल कोणता असावा यासाठी मी मी असे म्हणणाऱ्या निरीक्षकास फ्री विल असते. तो सदबुद्धी प्रमाणे जीवन जगून दुर्बुद्धी कडे दुर्लक्ष करू शकतो. तसेच सदबुद्धी सुद्धा आपल्या पासून वेगळी आहे मानून तो सर्वा पासून अलिप्त राहू शकतो.

झालो मोकळे मोकळे

तुटले कर्माचे ते वेढे

शरीर मन आणि बुद्धीचे

खेळ असती सुरू त्यांचे

आम्ही आता अलिप्त वेगळे

गूढ कर्माचे आता मर्म समजले

448. ध्यास लागला

मीच माझ्या मध्ये भाऊ॥
परि माहीत नाही कसा॥
म्हणूनि ध्यास लागला ध्यास लागला॥
माझाच मला ध्यास लागला॥

ग्रंथ म्हणती मी जिवाच्या॥
आहे नित्य आत बाहेरा॥
परि माहीत नाही कसा ॥
म्हणूनि ध्यास लागला ध्यास लागला॥
माझाच मला ध्यास लागला॥

ग्रंथ म्हणती मी जीवाच्या ॥
आहे कारण चैतन्याला॥
परि माहीत नाही कसा॥
म्हणूनि ध्यास लागला ध्यास लागला॥
माझाच मला ध्यास लागला॥

ग्रंथ म्हणती प्रत्येक अनुभवाच्या॥
आहे कारण मी अर्थ बोधाला॥
परि माहीत नाही कसा॥
म्हणूनि ध्यास लागला ध्यास लागला॥
माझाच मला ध्यास लागला॥

ग्रंथ म्हणती मी नाही स्पर्शिल्या ॥
या सर्व मन बुद्धी देह अवस्था॥
परि माहीत नाही कश्या ॥
म्हणूनि ध्यास लागला ध्यास लागला॥
माझाच मला ध्यास लागला॥

ग्रंथ म्हणती मी अंश ब्रह्माचा ॥
अनादी अनंत अद्वैत कंद आनंदाचा ॥
परि माहीत नाही कसा ॥
म्हणूनि ध्यास लागला ध्यास लागला॥
माझाच मला ध्यास लागला॥

ग्रंथ म्हणती ये शरण श्रीगुरू चरणाला॥
कर समर्पित तुझ्या सर्वस्वाला॥
तळहाती घेऊन तू तुझ्या शीराला॥
हो मार्गस्थ त्या ब्रह्म पद दिशेला ॥

ग्रंथ म्हणती ये शरण श्रीगुरू चरणाला॥
धर हृदयाशी श्रीगुरू देतील त्या नामाला॥
लाग लाग अखंड नाम स्मरणाला॥

ग्रंथ म्हणती ये शरण श्रीगुरू चरणाला॥
कर अवलंब मानून श्रीगुरू उपदेशांना ॥
स्थितप्रज्ञ राहून जाग साक्षी तत्त्वाला ॥

मग भेटशील तू तुझ्या स्व स्वरूपाला॥
मग भेटशील तू तुझ्या स्व स्वरूपाला॥
म्हणूनि ध्यास लागला ध्यास लागला॥
माझाच मला ध्यास लागला॥

देतो देव प्रत्येक पुढचा श्वास
तरी ना बोले तो येऊन कुणास ॥
इथे करता कुणी कुणाला मदत
डंका वाजवेल तो वेळा हजार ॥

मीच केले तुम्हा वर अति उपकार
माझ्यामुळे झाले असे हो उच्चार ॥
वर अपेक्षांचा ठेवूनी हो भार
लोकांना करीती हैराण बेजार ॥

घेऊ या एक गोष्ट लक्षात
इथे नाही कुणी काही करत काम ॥
इथे डोलती जीव आपोआप
विश्वाची ही गती गूढ अगाध ॥

जर विवेक दृष्टी प्रकटे हृदयात
जाणवेल मी कुणीच नाही खास ॥
देव करतो इथे माध्यम जीवास
खेळ खेळतो तो सत्याचा आभास ॥

मन ते वेडे जी माया अहंभावित
मी कर्ता भोक्ता फुकाची दमछाक ॥
श्री गुरु चरणी वाहता अश्रूंचा लोट
कळेल कसा अकर्मि अकर्ता देव ॥

तरी सृष्टी चालते सदा अखंड
घडते सर्व तरी इथे काहीच नाही घडत ॥
जीव सदा हा कर्तृत्व भोक्तृत्वाने भ्रांत
म्हणून मायेचा करावा नामस्मरणी अंत ॥

450. पाती...

खालील रचना ही मनाच्या सहाय्याने रचली आहे. आपल्या मनाचेच सामान्य सदोष मन आणि त्यातील विवेक असे दोन भाग एकमेकांत संवाद साधताना विवेक हा साक्षीभावरूप असल्याने तो स्वतःला साक्षी म्हणतोय आणि सदोष मनाला तो माझ्याशी श्रीराम नामाची भागीदारी कर असे विनंती करून समजाऊन सान्गत आहे.

मना तुझी नी माझी करूया ना पाती ॥
तू रामनाम घे मी आहे तुझा साक्षी ॥

मी का लागावे त्या रामाच्या नामी ॥
कोण करेल पूर्ती ही इच्छा वासनांची ॥

मना तू सर्वांगाने आहेस आभासी ॥
तुझ्या मधून संसार ही प्रत्यक्ष भ्रांती ॥

अरे कोण म्हणतेय ही आहे भ्रांती ॥
आखख शरीर लावले माझ्या दावणी ॥

त्याला सुख देऊ देऊ मी किती ॥
माझे समाधान होणार नाही कधी ॥

मना हीच तुझी आहे रे बाबा भ्रांती ॥
ही इंद्रिये जणू वाटच तुझ्या मृत्यूची ॥

शरीर मन बुद्धी अशी आभासी जंत्री ॥
सुख दुःख तिथे नित्य खोटेच उपजती ॥

जो तुझा द्रष्टा अहंकार भाव असे की ॥
माझेच प्रतिबिंब तुझ्या चित्ती डोलती ॥

तुझ्यात वाहती अति गुण वेग शक्ति ॥
तुझ्या बंधन कारणे तेच निर्मिती भ्रांती ॥

श्रीगुरुप्रसादी येता राम नाम चित्ती ॥
तिथे ना कधी अहंकार वासना न वृत्ती ॥

दे सोडून नको गुंतू खोट्या जीवभावी ॥
हो माझा सखा हा इथे मी सर्व साक्षी ॥

सर्व सुखाचे निधान श्रीविठ्ठल रखुमाई ॥
तुझ्यातच मिळेल तुला श्रीगुरुउपदेशी ॥
मना तुझी नी माझी करूया ना पाती ॥
तू रामनाम घे मी आहे तुझा साक्षी ॥

451. तुला मृत्यू नाही

हे माझ्या प्रिय शरीर मन आणि बुद्धी ॥
नका ना रे तुम्ही लादू मजवरी ॥
तुमच्या असंख्य इच्छा वासना वृत्ती ॥
आता मी नाही तुमची कठपुतळी ॥

ब्रह्माचा अंश सदा हा असे मी ॥
समजले मज श्री सद्गुरू उपदेशी ॥
आता तुम्हा प्रती ठेऊन भाव साक्षी ॥
ओळख तुमच्यातील मी काढून घेतली ॥

तू निराकार निर्विकार अनंत अविनाशी ॥
असे माझे श्री सद्गुरू मजला सांगती ॥
का तुम्ही आगळीक करता मजवरती ॥
नका लादू तुमच्या त्या वृत्ती अभिमानी ॥

माझा बाप साक्षात परब्रह्म श्रीहरी ॥
माझी आई माता रुक्मिणी शेजारी ॥
विरहाची त्यांच्या श्री गुरूकृपे पडली ॥
माझ्या हृदयी प्रखर ती प्रेमळ ठिणगी ॥

बाजूला ठेवा आता इच्छा वासना वृत्ती ॥
माझी तुम्हाला ही शिरसावंदय विनंती ॥
व्हा माझी माध्यमे त्या प्रभू निरोपाची ॥
सांगा विरहावस्था त्यांना ही माझी ॥

विरहाचा हा पेटला आहे दिव्य अग्नी ॥
राख होऊन जाल घ्या हो हे ध्यानी ॥
त्यागा सर्व इच्छा वासना अन वृत्ती ॥
तुम्ही सुद्धा व्हा माझे इथे सखा सोबती ॥

अहो ऐकले का आता तिघांनी तुम्ही ॥
तुम्ही मज ऐकवा श्री सद्गुरूंची वाणी ॥
तुम्ही मज बोलवा अभंग ते कीर्तनी ॥
तुम्ही मज दाखवा अवतार रूप श्रीहरी ॥

तुम्ही मज गुंतवा श्रीहरी मनन चिंतनी॥
तुम्ही मज दाखवा सर्वत्र माझा श्रीहरी ॥
तुमचे होईल कल्याण होईल मनःशुद्धी ॥
तुमच्यातही भरेल परमानंद तो श्रीहरी ॥

माझे ऐक सर्व तू रे जीवा आता तरी ॥
नाही मजसी मृत्यू घे जीवा तू जाणूनी॥
हो निर्भय निःशंक लीन श्रीहरी चरणी ॥
मज भेटव हरी तुला मृत्यू येणार नाही॥
मज भेटव हरी तुला मृत्यू येणार नाही॥

452. भाग्योदय ..

श्री सद्गुरु उपदेश चिंतनी
श्रीहरी अंतर्बाह्य आहे जाणला ॥
लोक प्रतिष्ठा पद मान सन्मान
यांचा तात्काळ जाहला धुराळा ॥

नका कुणी आम्हा विचारू आता,
आमुचे क्षेमकुशल श्रीसद्गुरु त्राता ॥
भाग्योदय जाहला सदा श्रीहरी-विरह,
हृदयी पाझरे श्रीहरीनामाचा आनंद ॥

प्रसिद्धी दिखावा हाव सत्ता संपत्ती
त्यागली ही आचार विचार वृत्ती ॥
सदा आम्ही तुमची आहे चरण धूळ ॥
तुम्ही संत सज्जन पाहीला पांडुरंग ॥

सदा आम्ही श्रीहरीच्या दासांचे दास ॥
रचितो नित्य श्रीहरि नामाची हो रास ॥
फिका पडो सहजी त्या मायेचा रे रंग ॥
विरह जाहला दाखवा ह्या हृदयी श्रीरंग ॥

453. विरह अश्रू...

भवाचे रण अति तप्त तुझे हे
विरह अश्रू येता नयनी
वाफ होऊन अदृश्य जाहले ॥
म्हणून श्रीहरी ते तुला ना दिसले
जाण रे जाण रे देवा माझे प्रेम जाण रे ॥

भवसागरी दाटले मेघ भ्रम जलाचे
विरह अश्रू येता नयनी
त्या जल वर्षावी ते मिसळून गेले ॥
म्हणून श्रीहरी ते तुला ना दिसले
जाण रे जाण रे देवा माझे प्रेम जाण रे ॥

भवसागरी ह्या हिम अति अज्ञानाचे
विरह अश्रू येता नयनी
गोटून तिथे ते नेत्री थिजले ॥
म्हणून श्रीहरी ते तुला ना दिसले
जाण रे जाण रे देवा माझे प्रेम जाण रे ॥

भवसागरी दिन हे वसंत ऋतूचे
विरह अश्रू येता नयनी
संत अभंग मी आर्त गाईले ॥
तिथे तुला जर हे अश्रू दिसले
जाण रे जाण रे देवा माझे प्रेम जाण रे ॥

454. रिक्त रिक्त ..

रिक्त रिक्त रिक्त सदा मी हा रिक्त ॥
माझ्यातच तन मन बुद्धी जरी जाहले व्यक्त ॥
परि मी त्यांच्यामुळे कधी ना होईल लिप्त ॥

रिक्त रिक्त रिक्त सदा मी हा रिक्त ॥
तन मनाचा जीव का हा असा अतृप्त ॥
तृप्तीच्या पलिकडे मी सदा पूर्णातिपूर्ण ॥

रिक्त रिक्त रिक्त सदा मी हा रिक्त ॥
जीव जन्मतो जगतो होतो माझ्यातच अव्यक्त ॥
मी त्याच्या कर्मभोगांपासून सदा आहे निवृत्त ॥

रिक्त रिक्त रिक्त सदा मी हा रिक्त ॥
कृपा श्रीहरीची त्याने केला मज त्याचा भक्त ॥
मी माझ्यातच संपला गुरु चरण तेज हृदयी प्रतिदीप्त ॥

455. वारी

आपल्या मनाचे अध्यात्मिक आणि वैज्ञानिक दोन्ही प्रकारे re-engineering करणारा जगातील एकमेव चालता फिरता सोहळा म्हणजे पंढरीची वारी. इथे मी कुणीतरी विशेष आहे हा अहंभाव धुळीस मिळतो. मग ती निरंकारी धूळ आपल्या माथी लागावी म्हणून सर्व लहानथोर या वारकरी संप्रदायात हजारो वर्षांपासून एकमेकांच्या पाया पडतात. इथे लाखो वारकरी साक्षात चैतन्याचे पुतळे म्हणून देवाचे अभूतपूर्व वैभव अभंग गाऊन आणि कीर्तने करून सादर करतात ज्याच्या पुढे रत्न हिरे माणिक मोती सोने चांदी जवाहर जगातील साधन संपत्ती अक्षरशः माती समान होऊन जाते. ह्या वारीचा चैतन्य सोहळा प्रेम भक्ती आत्मसमर्पण विरह आभार सेवा अशा अनेक उच्चतम भावनांनी सजलेला असतो. ह्या अखिल ब्रह्मांडाचे सर्वोच्च असे design उद्दिष्ट इथेच या वारीतच जणू परिपूर्ण होऊन जाते आणि त्या विश्वात्मक शक्तीला सुद्धा श्री पांडुरंग चरणी या दिवसात थोडा विसावा मिळतो. इथे भेद तुलना स्पर्धा व इतर शत्रूंना आत शिरायला जागाच नाही. ईश्वर प्रेमाचा हा महा चैतन्य सोहळा एखाद्या उचंबळून आलेल्या लाटेप्रमाणे 280 किमी अंतर कापून विठ्ठल चरणी सामावून जातो. लिहिणे थांबणार नाही इतके या शब्दांचा लोट वारीचे वर्णन करण्यासाठी उत्स्फूर्तपणे निर्माण होतो. श्री राम कृष्ण हरी पांडुरंग हरी ॥

ज्यांच्या मनी आर्त,
भाव आहे पांडुरंगाचा ॥

ज्यांची पाउले वारीमध्ये,
चालती पंढरीच्या दिशेला ॥

त्यांच्या चरण धुळीचा,
आमुच्या मस्तकी टिळा ॥

आम्ही ह्या दासांचे हो दास,
भेटावा रोज माणसात पांडुरंग,
हीच आमची आहे आस ॥

456. विरह बल

काम येऊन कायी उभा राहिला ॥
लाज सोडून भुलविले मनाला ॥
परि मी विरहिणी मज ध्यास हरीचा ॥
हरि ध्यायीला विरही काम विरघळला॥

क्रोध भयंकर तो विष रूप भिनला ॥
अहंकार तो आंधळा जाहला ॥
परि मी विरहिणी मज ध्यास हरीचा ॥
हरी नामी मनी अहं क्रोध पांगुळला ॥

वस्तूविषय नाती लोभ मोह उपजला ॥
अनेक कल्पना त्या स्वप्नी तो रमला ॥
परि मी विरहिणी मज ध्यास हरीचा ॥
सर्व लोभ मोह श्रीगुरूवाणीत लोपला ॥

तुलना स्पर्धा मनी द्वेष मत्सर आला ॥
मन अस्थिर जीव चंचल जाहला ॥
परि मी विरहिणी मज ध्यास हरीचा ॥
मन प्रशांत स्थिर हरी श्वासावर घेतला ॥

श्रीहरी कृपेने जो संसार लाभला ॥
तिथे मनातून मद कैफ माजला ॥
परि मी विरहिणी मज ध्यास हरीचा ॥
श्रीगुरू चरणधूळीत मद कैफ नीवविला॥

इच्छा वासना ममता भय वणवा पेटला॥
जीव तिथे अज्ञानी तो अतृप्त पोळला ॥
परि मी विरहिणी मज ध्यास हरीचा ॥
विरह बलाने हा जीवभाव उपटला ॥

ऐसा विरह श्री गुरू कृपे प्रकटला ॥
श्रीहरी नाम स्मरणी जीव आर्तला ॥
श्रीगुरू चरणांची मी धूळ होता ॥
जीव जीवामधून मोकळा जाहला ॥

457. अद्वैत रूप घन

इथे जीवमाया त्यात आमुचे प्रतिबिंब ॥
मायेने शोषले भान अहर्निशि भ्रांत ॥
जीव नादला वाटे ब्रह्म अधःपतित ॥
रमतो जीव इथे त्याचे आभासी सत्य ॥

इथे शरणागती नित्य श्री गुरु चरण ॥
मग श्रीहरी विरह अग्नी उठतो पेटून ॥
जळून जातील माया वासना अन भेद ॥
मनोदेहभाव ते अदृश्य होतील क्षणात ॥

ऐसे ब्रह्मांडांतर्बाह्य अद्वैतरूप घन ॥
इथे भव आरण्य पेटले रण रण ॥
तिथे श्रीहरी आमच्यात आहे एकरूप ॥
इथे श्री सद्गुरु रूप श्रीहरीचे साक्षात ॥

चला आता श्रीहरीने धाडला हो निरोप ॥
तनमन बुद्धी ही आपली नाही ओळख ॥
त्या गावचा माणूस श्रीसद्गुरु साक्षात ॥
कृपाळू अनंत तो दावितो अद्वैत द्वैतात ॥

458. आले कुठून..

शरीर मन आणि बुद्धी यांच्यासह मी हा अहंकार हे ते चौघे अचानक कुठूनसे आले आणि आपल्या मध्येच त्यांचा जीवभाव निर्माण करून जगू लागले. काही हरकत नाही, पण आपण आता त्यांच्या जीवपणा मधून तटस्थ झालोच पाहिजे. कारण त्यांचे आजपर्यंतचे अवस्थांतर आपण जगलो आणि खात्री केली की त्या अवस्थांतराने आपल्याला स्पर्श सुद्धा केलेला नाहीये. म्हणून आता मात्र त्याला साक्षी रहायचे.

चार जण ते आले कुठूनसे
मला पकडून कसे इथे आणले
त्यांचे कर्म का मज वरी लादले
त्यांचा कर्ता का मजला केले

काय जाहले मज ना कळले
ह्या ब्रह्मभावाचे कुणी चौर्य केले
अहंकारातून मी पण लादले
अन मजला त्यांचा भोक्ता केले

ब्रह्म स्वरूप ते विसरून गेले
जीवाचे जीव पण माझे झाले
आंतीमधून मागे षड्रिपू लागले
भव सागराचे अग्नी कुंड पेटले

मानवदेही पातलो श्रीहरी कृपेने
तिथे श्री सद्गुरू दयाळू भेटले
चरणी त्यांच्या सर्वस्व वाहिले
मी पण चरण धुळीत मिळविले

श्री गुरू वाचनि जीवमायापण गेले
मायेने अलिप्त अस्पर्शित समजले
वर्म समजले त्या आभासी सत्याचे
श्री हरी नाम स्मरणी तनमन ठेविले

आता चार जण बाजूला पडले
कर्ता भोक्ता हरी विरही संपले
इच्छा वासना अहं वृत्ती विरले
श्रीहरीने आता हात हाती घेतले

459. नको पुन्हा जन्म

तू माझा सखा प्रिय श्रीहरी पांडुरंग ॥
प्रत्येक जीवाला तुझ्या चैतन्याचा संग ॥
चरणी तुझ्या ठेविले हे मस्तक कापून ॥
नको नको देवा आता पुन्हा कुठलाही जन्म ॥
तू आणि मी एकच यातच खरी आपली भेट ॥

460. देवाला झालेला विरह

देव हा विरही विरही ॥
अपार अश्रू ढाळती ॥
कुठे ही माझी लेकरे ॥
मायेत अशी हरविली ॥

माया ही अशी कशी ॥
आपोआपच निपजली ॥
जरी साक्षात चैतन्य पिंडी ॥
ही लेकरे आभासी दुरावली ॥

सर्व जीवांच्या अहंभाव कारणी ॥
ती माझीच मागे चैतन्य शक्ति ॥
माझ्याच दिव्य प्रकाशी ॥
जीव अर्थानुभव घेती ॥

परि मला ना ती ओळखती ॥
मायेत अति गुंतती ॥
मी विशुद्ध त्यांच्या तळहाती ॥
केवळ श्री सद्गुरू दाविती ॥

श्री सद्गुरू आणि श्रीहरी ॥
तिथे द्वय नाही नाही ॥
जा जा त्यांच्या चरणी ॥
पालटेल तुझी अंतरदृष्टी ॥

मला भेटशील नाम स्मरणी ॥
श्रीगुरू वाणी भक्ती कीर्तनी ॥
भेटशील तिथे मज उराउरी ॥
माझा विरह आता तुझिया हृदयी ॥

461. राम रघुराई

जिह जिह्वा गाए गुण रामरघुराई ॥
उनके चरण हम जांऊ वारि वारि ॥

जिन कै भीतरि है प्रेम सियाराम का ॥
उन का मै दास रहू जनम जनम का ॥

जिन के हृदय श्रीराम नाम बसत है ॥
उस की चरण धूल से अंग मज्जन है ॥

जिन जन राम नाम सिद्धि पाई ॥
उन पर हम सदा बलि बलि जाई ॥

462. विनंती

श्री गुरु लावती हरि भक्तीचे कुंकू मज कपाळी ॥
मी सौभाग्यवती झाले श्रीहरी माझा पती ॥

किती घेशील परीक्षा माझी देऊन भ्रांती दवैताची ॥
देवा नाही नाही नाही कुठे जाणार वाहवत मी ॥

का तुझे देवा माझ्यावर प्रेम नाही ॥
तूच तर सोडवतोस दयाळा माझ्या सर्व अडचणी ॥

घेतोस परीक्षा परि अंती कृपेने सांभाळून घेशी ॥
बुझ नाही देत देवा तू संत या भवसागरी ॥

सर्व संतांची लाज तू ऐशी देवा सांभाळीशी ॥
करु विनंती अंती कर मज धूळ त्या संत चरणांची ॥

463. घे ना रे सामावून मजला

अनादी अनंत अचंबित सर्व ही त्या अज्ञाताची लीला ॥

आपणची झाला निसर्ग अन आपणची आला पाहायला ॥

स्वतःचे पाहून अद्भुत आविष्कार स्वतःच चकित जाहला ॥

असंख्य आम्ही उभे केले इथे ह्या सृजन बुद्धीचे इमले ॥

तो कोण अज्ञात अवर्णनीय ज्याने ते मूळ बुद्धि द्रव्य निर्मिले ॥

चला हा रहस्यमय खेळ मांडू हो जीव जड सृष्टीचा ॥

कुणाचे हे इप्सित जणू इथे अस्तित्वच भेटले हो अस्तित्वाला ॥

दाखवा ना कुणीतरी मला तो कोण आहे ह्या गूढ विश्वाचा निर्माता ॥

अन जर तू माझ्यातच असशील मित्रा तर घे ना रे सामावून मजला ॥

तुझ्या अशा अदृश्य अस्तित्व भानाने मनी उठतो कल्लोळ आनंदाचा ॥

असह्य असह्य हा विरह आता तुझ्याच मध्ये सामावून जाण्याचा ॥

464. मुंगी...

मलाच बिचारी मुंगी दिसते ॥
घाबरून सैरावैरा पळत असते ॥
सगळे जग त्याच्या घाईत असते ॥
मुंगीच्या जीवावर संकट असते ॥
तिला वाचवू कशी मज चिंता पडते ॥

मलाच बिचारा कोळी दिसतो ॥
जाळ्या विना सैरभैर असतो ॥
कुणीतरी सफाई करत असत ॥
जाळे त्याच सदा तुटत असत ॥
माझे मन फारच चिंतित असत ॥

देवा कशी रे ही तुझी रचना ॥
असंख्य जीव दिसती मरताना ॥
कुणी इथे नाचे बागडे सुखाने ॥
पण पायाखाली त्याच्या देवा...
निष्पाप जीव हे का बा सापडे..॥

खेळ तुझा भारी अगम्य.. ॥
माया ही तुझी भारी दुस्तर..॥
जन्म मरण जरी आभासी सत्य ॥
आम्ही अज्ञानी मानतो सुख दुःख ॥
श्रीगुरू कृपेने ही संपन्न होवो साधना..॥
देवा साक्षात तुमचे रहस्य दाखवा..॥

465. हरि प्रेमजल...

ईश्वराने त्याच्या अमृतमय प्रेमाने आपल्याला न्हाऊ घालावे आणि सगळी त्याची माया त्यात वाहून जावी,
वैराग्याचे कपडे त्याने आपल्याला घालावेत आणि मुक्तीचा टिळा लावुन हाताला धरून त्याच्या घरी घेऊन
जावे असा आपल्या सर्वांचाच गोड हट्ट आहे. तो त्याने जरूर पुरवावा...

हरि प्रेमजल मन महि नही माई ॥
माया धोवन को हरिप्रेमजल नही माई॥

जिसकी माया उस हरि से ही जाई ॥
अवर नही उपाव कोई सुन रि मेरी माई॥

इस जीवन सरूप मन मरुथल महि॥
सभ देखू पाऊ तहा मृगजल है माई ॥

मनुमाया अब किस यतन से जाई ॥
हरि किरपा भई सतगुर ते मिलाई ॥

सतगुरु शबदी हरिप्रेम रंग रंगाई ॥
रसना जप जप श्रीहरि गुण गाई॥

बरसे कृपामेघ हरीप्रेमजल मन माहि॥ पाया लाल, फुली फली हरि बनराई॥

हरिराई लाई प्रेमजल मोहि मन तन धोई ॥ पहने कीरतन कपडे ता मै हुआ बैरागी ॥

मुक्ति का टिका हरि मेरे माथे लगाई ॥
इस गुरुदास कौ हरि दरस दिखाई ॥

अब जह देखू तह पाऊ मेरे रघुराई ॥
जह देखू तह पाऊ मेरे रघुराई ॥

श्री समर्थाच्या दासबोध मध्ये साधक कसा असावा हे छान दिले आहे. त्यावरून ही रचना सुचली. त्याआधी त्या साधकाविषयी संक्षिप्त...एकदा का ह्या मायेचे मिथ्या पण समजले की साधक इथे असून नसल्यासारखाच रहातो. कर्ता भोक्ता भूमिकांचा तो त्याग करेल. सर्वांसाठी सर्व काही करेल पण कर्तृत्व त्याच क्षणाला विसरून जाईल. कोणतेही भोग व मान अपमान त्याला स्पर्श करणार नाही. ईर्ष्या तुलना द्वेष मत्सर क्रोध त्याच्या जवळ येणारच नाहीत. त्याच्या आतील लोभ मोह काम वासना व इतर षड्रिपू तो हरि भजन करून भक्ति मार्गाने नाहीसे करेल. त्यासाठी तो अद्वैत दर्शन शास्त्र समजून घेईल. तो संसाराच्या मर्यादा व कर्तव्य म्हणून इच्छा व्यक्त करेल, प्रयत्न करेल पण त्यात आसक्ती craving नसेल. जे काही तो मिळवेल ते ते त्याच क्षणी ईश्वराला अर्पण करेल. त्याला सुख दुःख प्रभावित करणार नाही. तो प्रत्येक क्षणी मुक्त असेल. राजकारण, वादविवाद, कुरघोडी, बदला घेणे, दांभिकपणा, लबाडी अशी जीवाचा सर्वनाश करणारी बुद्धी त्याला सुचणारच नाही. तो सतत क्षमा करणारा असेल, अत्यन्त विनम्र असेल, देव, आईवडील, गुरू यांच्या चरणी सतत लीन असेल. संसारीक जबाबदारीतून जेव्हा वेळ मिळेल तेव्हा तो एकटाच राहील आणि भजन ध्यान मनन चिंतन ह्यात वेळ व्यतीत करेल. □

साकार आहे सगुणासह संसार आहे ॥
पण आता इथे माया नाही ॥

वृत्ती आहे इच्छेसह फळ ही आहे ॥
पण आता इथे कर्ता व भोक्ता नाही ॥

साक्षी आहे द्रष्टा आहे ॥
पण आता दृश्य दर्शन कुठेच नाही ॥

मी आहे माझे मला सुद्धा आहे ॥
पण आता इथे मालकी सत्ता कुणाचीच नाही ॥

जन्म आहे जीवन अन मृत्यू ही आहे ॥
पण आता इथे कुणी जीवच नाही ॥

श्रीहरी नामाची सतत धार आहे ॥
अहंमनबुद्धी इथे आता कुठे दिसतच नाही ॥

जरी इथे सर्व काही आहे आहे पण ॥
श्रीहरीशिवाय आता उरलेले काहीही नाही ॥

467. आता ना धरवे धीर..

आता ना धरवे धीर या मनी तनी ॥
नीव नीवविले शीर सदा सतगुर चरणी ॥

मी दीन मज षड्गिपू वाहवत दूर नेती ॥
मी दुबळा तुज मी कसा ध्याऊ रे हरी ॥

माया जरी भारी करील द्वांताची भ्रांती ॥
तव चरण सदा मी घट्ट धरीले रे श्रीहरी ॥

ना मज शक्ति जरी ना माझी भक्ती ॥
ना मज योग जरी ना शास्त्र सुमती ॥

तरी मी आहे तुझा पुत्र घे मज हृदयी ॥
तुझ्या पदस्पर्शाने घे मज शुद्ध करूनी ॥

तुझ्या खेळात जरी आहे मी कठपुतळी ॥
लाज राख देवा माझी तू पतितांसी उद्धारी ॥

एक माझा गुरु केवळ मजला आधारी ॥
चालवे मज हाती धरूनी या भवसागरी ॥

ना सोडील आता तव चरण हे मुरारी ॥
जरी यम नेईल माझा प्राण त्याच्या घरी ॥

आता ना धरवे धीर या मनी तनी ॥
नीव नीवविले शीर सदा सतगुर चरणी ॥

468. सोपे नाही होणे श्रीहरिचा दास

ज्या श्रीरामाने रावणाच्या सुद्धा सैन्यातील जखमी वीरांना औषध उपचार केले. अंतकाळी कुणाला मांडीवर घेऊन पाणी पाजले. साश्रु नयनांनी त्यांच्यावर अग्निसंस्कार केले. आणि अनेकदा रावणाला युद्धापासून परावृत्त करण्याचे प्रयत्न केले पण एकेचना म्हणून अंती स्वतःच्या मनावर दगड ठेऊन रावणाला मारले त्या परम अलौकिक श्रीरामाचा नारायणाचा दास होणे सोपे आहे का?

सोपे नाही होणे श्रीहरिचा दास ॥
तिथे होतो मी पणाचा नित्य सर्वनाश ॥

अणुरेणूमध्ये नित्य श्रीरामाचा वास ॥
तिथे नमितो सदा हा हरिचा दास ॥

डोळ्यात करुणा मनात आनंदाची रास ॥
प्रभूप्रेमात भिजलेला असतो हरिचा दास ॥

शत्रुत्व लादता कुणी त्यावर हो उगाच ॥
नाइलाजास्तव रोखती तिथे तो तयास ॥

परि शत्रू तोच भेटता पुन्हा कुठे तयास ॥
प्रेमालिंगन देतो त्यास हरीचा दास ॥

सुख दुःखाच्या प्रती नित्य असे हा उदास ॥
खेळ हा मायेचा तो जाणून असतो खास ॥

प्राणपति दर्शन त्याचा एक एक श्वास ॥
चैतन्यप्रकाशात पाहे जाणीवांचा भास ॥

पाचही तत्त्व होती त्या हरिदासाचे दास ॥
हा चालतो पुढे करुनी मागे इंद्रिय निरास ॥

श्रीगुरुचरणी नित्य त्याचा असे हो निवास ॥
ऐसा भाग्यवंत श्रीहरीचा नित्य असे बा दास ॥

469. खेळ हा कुणाचा?

आपणच उगा द्रष्टा व्हायचं,
आपणच सर्व स्वप्नांतून जगायचं,

षड्रिपूं सत्यतेचे भास निर्माण करायचं,
त्या आकर्षणात उगाचच वाहून जायचं,

जन्म जीवन मृत्यूच्या संघर्षात रहायचं,
काहीही घडत नसताना सर्व काही सोसायचं,

स्वतःच स्वतःला कोड्यात टाकायचं,
जन्मोजन्मी उगाच भरकटत राहायचं,

आधी सृष्टीचे सृजन रचायचं,
पुन्हा विनाश करत राहायचं,

मिथ्या दवैतात आपणच यायचं,
अद्वैत तिथे जीव तोडून समजून घ्यायचं,

वास्तवाचे भान सदा ठेवायचं,
पण सर्व आभासी असं मानायचं,

कर्ता आणि भोक्ता प्रत्यक्ष साकारायचं,
मात्र दोन्ही काल्पनिक समजून त्यांना त्यागायचं,

आहे म्हणता काहीच कुठे नसायचं,
नाही म्हणता सर्वत्र सदा असायचं,

ब्रह्मानुभवासाठी अष्टांग योगी व्हायचं,
स्वस्वरूपानुभव घेऊन विदेही व्हायचं,

बंधमुक्तीच्या प्रयत्नांना नाही इथे थकायचं,
मुक्तावस्थेत इथे बंधच नाही म्हणायचं,

तो अकर्ता अकर्मि कसे ते सगुण प्रकटायचं,
पण तोच सर्व करतो समजून त्यालाच शरण जायचं,

खेळ हा कुणाचा कधीच नाही कळायचं,
खेळायचा असा की अजिबातच नाही खेळायचं....

470. श्रीमहागुरुवाणी

जयाच्या हृदयी सदा तीव्र आर्त उमाळा ॥
तो पावला श्रीमहागुरुतत्त्व प्रचितीला ॥

श्रीसद्गुरु चरणी त्यांना मिळाला विसावा ॥
हाच इथे महाउत्सव नित्य महासोहळा ॥

हृदयी श्रीसद्गुरु मातृतत्त्वाचा पुतळा ॥
श्रीहरी आला तिथे त्यांच्या दर्शनाला ॥

भक्तांनी केला श्रीहरीसंगे महा संकीर्तन काला ॥
विसरलो तिथे आम्ही जन्म जीवन मृत्यूला ॥

कोण कुठल्या वृत्ती इच्छा अन वासना ॥
विसरले षड्रिपू मन विसरले त्या मनाला ॥

नुरले अस्तित्व त्या काया मन बुद्धिला ॥
कोण विचारतो आता बंध अन मोक्षाला ॥

सदा श्रीगुरुसन्मुख बसविले श्रीहरीने आम्हाला ॥
जीव सद्गुरु चरणी हा सहजी सामावला ॥

श्रीसद्गुरु सुहागण सहज ब्रह्मावस्था ॥
पती परब्रह्म तिथे महाआनंद रुपे प्रकटला ॥

ज्यांनी वर्णिले सहजी ऐसे त्या अवर्णनीयाला ॥
नमस्कार आमुचा त्या श्रीमहागुरुवाणीला ॥

471. अंतर्बाह्य स्वसंवेद्य

खरं तर जिथे कुठलीच क्रिया घडत नाही ते स्वसंवेद्य परब्रह्म तत्त्व आहे. पण ते जीवात आत्मा रुपाने आपले सर्व ते पहाते असे रुपक घेऊन झालेली रचना. □

ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

विचार बोलणे ते पाहते ॥

पाहते मन बुद्धी दृष्टी ते ॥

आसू हसू ते पाहते ॥

ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

इच्छा आकांक्षा ते पाहते ॥

पाहते वासना वृत्ती ते ॥

षड्रिपू ही सर्व दाविते ॥

ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

संवेदना ते पाहते ॥

दाविते अनुभव त्रिपुटी ते ॥

प्रतिसाद ही ते पाहते ॥

ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

सुख दुःख ते पाहते ॥

अकर्ता ते कर्ता भोक्ता दाविते ॥

अनादि ते जन्म जीवन मृत्यू पाहते ॥

ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

सर्वव्याप्त असूनही ते अस्पर्शित आहे ॥

अलिप्त आहे ते अलेप्य आहे ॥

शब्दांना फुटलेल्या अश्रूंत ते आहे ॥

ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

श्रीगुरू चरणी सदा मस्तक लीन आहे ॥

तिथे मजला त्याची चाहूल आहे ॥

त्याच्यातच सर्व सामावयाचे आहे ॥

ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

472. अद्वैताच्या अनंत प्रांगणी

कार्यकारणभावाची शृंखला ही एखाद्या डोंबारी प्रमाणे फसवून आपल्याला खेळवते. असे हे जीवन आभासी असूनही माणूस कार्यकारणभावाच्या कठपुतळी मध्ये अडकून पडणे हे अति गुह्य आश्चर्य आहे. म्हणून आता ब्रह्म स्वतः म्हणतेय की,

माझ्या या अद्वैताच्या अनंत प्रांगणी,
कुरुन आला हा सगुण डोंबारी ॥

बांधून मोट शरीर मन अन बुद्धीची,
केले असंख्य जीव इथे कठपुतळी ॥

संकटातूनी जीवास सोडवावयासी,
मी भावे धावलो प्रत्येक पिंडी ॥

म्हणूनी माझिया परम प्रकाशी,
जीवनानुभवा अर्थपूर्णता आली ॥

गंमत पाहतो कसा हा डोंबारी,
अहंभावे गर्वे जीव येतो काकुळती ॥

स्वप्नाशिवाय काही नाही इथे या जीवनी,
सर्व शून्य रिक्त जीव सदा मरते समयी ॥

स्खलित ऐसे ते या भ्रांत सुखदुःखाशी,
इच्छा ईर्ष्या जीवात उगा स्पर्धा करिती ॥

जे वेडे होऊन राखति विविध वासनावृत्ती,
त्यांची होते जीवनी पुन्हा पुनरावृत्ती ॥

मी सदा अलिप्त अनंत अभेद्य सदानंदी,
जीव विषयाने लिप्त करतो मर्यादेची गुलामी ॥

जे धाव घेती सत्वर श्रीगुरू चरणी,
ते मजला येऊन खास नित्य हो मिळती ॥

473. श्रीहरीने माझा शृंगार केला

श्रीहरीने माझा शृंगार केला ॥
अद्वैताचा मळवट भरुनि ॥
निर्गुणाचा गं टिळा लाविला ॥

श्रीहरीने माझा शृंगार केला ॥
नेसविली कीर्तन रुपी पैठणी ॥
अन भक्तीचा साज घातला ॥

श्रीहरीने माझा शृंगार केला ॥
हरिप्रेमाचे हाती घालून कंकण ॥
पायी पैजण दिली नित्य हरिसेवा ॥

श्रीहरीने माझा शृंगार केला ॥
हरीनामरुप हार मज घालूनि ॥
श्रीसदगुरूंनी अमृत उपदेश केला ॥

श्रीहरीने माझा शृंगार केला ॥
तनमन मी विसरले ॥
प्राण श्रीहरीने असा गं शोषिला ॥

श्रीहरीने माझा शृंगार केला ॥
दुजाभाव गं आता पुरता सरला ॥
जीव नित्य श्रीकृष्णाकार जाहला ॥

474. सदा चित्त अनंत

ही साधकाची सर्वोच्च अवस्था जिथे ना मायेचा उद्भव, ना सिध्दिंचा प्रभाव, ना मी परब्रह्म म्हणून अद्वैताचे वेगळे भान, ना मुक्तीचे भान अशी निर्वाण अवस्था जी साधकाला अनंतात विलीन झाल्याने प्राप्त होते. तो साधक वेगळेपणाने काहीही जाणून घेण्याच्या अवस्थेत नाही कारण त्याचा अहंकार नाहीसा झालाय. आता जाता ज्ञेय ज्ञान ही त्रिपुटीच त्या अनंतात नाहीशी झाली आहे.

कोण इथे आसक्त कोण निरासक्त ॥
कुठले आराध्य इथे कोण हा भक्त ॥
जाणणारा इथे कुणी नाही ॥
सदा चित्त अनंत अनंत ॥

कोण आहे लिप्त इथे कोण हो अलिप्त ॥
जरी वृत्ती इच्छा-वासना सत्याचे आभासा॥
जाणणारा इथे कुणी नाही ॥
सदा चित्त अनंत अनंत ॥

ना सुख-दुःख ना मान-अपमान ॥
कोण आहे द्वैतात कोण हो अद्वैत ॥
जाणणारा इथे कुणी नाही ॥
सदा चित्त अनंत अनंत ॥

कोण हा संसारी वाहतो कर्तव्य कर्म ॥
जरी का असेल शिवले कर्तृत्व-भोक्तृत्व ॥
जाणणारा इथे कुणी नाही ॥
सदा चित्त अनंत अनंत ॥

कोण कुठला अहंकार गर्व नि अभिमान॥
कोण आता सन्यस्त कोण हो विरक्त ॥
जाणणारा इथे कुणी नाही ॥
सदा चित्त अनंत अनंत ॥

कोण जन्मला जीव कुणास मृत्यूचे भान ॥
ना कुणी अमर अमर्त्य अष्टसिद्ध मुक्त ॥
जाणणारा इथे कुणी नाही ॥
सदा चित्त अनंत अनंत ॥

जरी श्रीगुरु कृपे समाधी लाभले तुर्य ॥
परि कोणाचे जाहले इथे महानिर्वाण ॥
जाणणारा इथे कुणी नाही ॥
सदा चित्त अनंत अनंत ॥

475. याची देहि याची डोळा

याची देही याची डोळा पाहीन देवा तुजला ॥
काय तू आम्हावरी ही केलीस तुझी महाकृपा ॥
अखंड विरह तुझा तू आमुच्या मनी उपजविला ॥
भक्तीचा झरा इथे वाणी अमृत घेऊन आला ॥

श्रीसद्गुरु कृपा ऐसी अवर्णनीय जाहली ॥
श्रीहरी नाम सिद्धी मनी सहज पावली ॥
देहाभिमान अहंकार दबकून लांबून चालती ॥
आता विटाळ षड्रिपूंचा या जीवी नाही नाही ॥

भाग्य उजळले मिळाली साधूसंतांची संगती ॥
उच्च शिखरे भक्तीची आली आली हो हाताशी ॥
श्रीहरी गुण गातो आम्ही नित्य भजनी कीर्तनी ॥
सगुण हा ईश्वर ठायीठायी रूप निर्गुण आम्हा दावी ॥

476. रूप गेल रंग गेला

रूप गेलं गेला गं रंग
आकार विकारपण हरविलं ॥
कर्तृत्वासहीत भोक्तृत्वही गेलं ॥
शून्यातचि मज अनंत भेटलं ॥

अगं चांगलं गेलं वाईटही गेलं
सुख दुःख पण गं सहजच गेलं॥
ऐक ना माझ्यातच मला आज
माझं वेगळं अनाम रूप भेटलं॥

आहे गेलं नाही पण गेलं
काळाचं गं माझं भानच सरलं ॥
तुलना संपली नुरले भेद
मन इच्छा वासना वृत्ती विसरलं ॥

आता कसली भिती कुणाला चिंत
मान अपमान अभिमानित्व संपलं ॥
षड्रिपूंचे झालं होत्याचं नव्हतं
मन अवकाशाच्या पल्याड झालं गं मोकळं ॥

माझ्या श्रीसद्गुरूंच्या कृपा प्रसादानं
जळलं गं कर्म आता जन्मोजन्मीचं ॥
झालो अनुग्रहीत मिळालं श्रीहरी नाम
विरह दाटला मनी ते हरिभक्तीचं गं दान ॥

477. आम्ही मोकळे मोकळे

ऐसे आम्ही सदा मोकळे मोकळे ॥
क्षणाक्षणाला आम्ही मायेतून मोकळे ॥
जाणिवांचे थवे नित्य येती असे ते ॥
सांगती तेच की तुम्ही मोकळे हो मोकळे ॥

इच्छा वासना आकर्षण अन वृत्तीचे ॥
फुटले फुटले सर्व भोपळे ते भ्रमाचे ॥
साम्राज्य संपले त्या गर्व अभिमानाचे ॥
कर्तृत्व भोक्तृत्व दोघे दूर पळूनि गेले ॥

श्री सद्गुरु चरणी तन मन-धी ठेविले ॥
उपदेशामृत दिव्य नित्य ते प्राशिले ॥
सहज विश्राम आता अस्तित्वा पलिकडे ॥
देह-जीव-भाव नाते तुटले हो तुटले ॥

ऐसे आम्ही सदा मोकळे मोकळे ॥
क्षणाक्षणाला आम्ही मायेतून मोकळे ॥

श्रीहरी चरणी समर्पित ॥
जाणीवा सकल आणि जाणणारा
दोघांपासून साक्षी निघाला वेगळा ॥1॥
त्या अनंत साक्षीचे स्वरूप अनादी
निराकार निर्विकार सदा हा जागता ॥2॥
अंतर्बाह्य चैतन्य साक्षी स्वरूपी अरूप
साक्षात ब्रह्म तत्त्व सदा हा निर्लेप ॥3॥
ऐसा श्री गुरु चरणी जीव हा संपला,
चिरंतन सत्य एक साक्षी तिथे प्रकटला ॥4॥

478. महाकठीण परीक्षा

किती अवघड परीक्षा देव घेत असतो नाही. ज्या शरीर मन आणि बुद्धी यांच्या सह आपण जन्माला येतो त्यांच्या सहाय्याने त्यांना बाजूला करायचे. त्यांच्या सहाय्याने ते म्हणजे आपण नाही हे जाणून घ्यायचे. त्या सर्व जीव क्षमतांचा वापर शून्य करून त्या जीवाला त्यापलीकडे घेऊन जायचे, त्यांच्या प्रशांत अवस्थेत आपणच आपल्याला ओळखायचे.

मन तन बुद्धी सह जीव कसे हे जन्मले
तेच मी असे ह्या अज्ञानी ते जाणले ॥

जीव म्हणूनि संघर्ष अतोनात केला
शेवटी हाती भ्रमाचा भोपळा आला ॥

श्रीगुरू उपदेशी जीव एकजीव केला
जीव केले माध्यम एकतत्त्व जाणायाला ॥

अशी ही आपली अगम्य अपूर्व परीक्षा
जीवाला जीवातून सोडवून न्यायचे शून्याला ॥

तन मन बुद्धीला ऐसे न्यायचे उंचीला
मी नाही जीव ऐसे जाणून त्यांना तिथेचि सोडायला ॥

कोण हा मागे उरतो इथे ह्या जाणीवांच्या
केवळ साक्षी भाव तो असे परब्रह्म तत्त्वाचा ॥

महा कठीण परीक्षा...

महाकठीण परीक्षेस आम्हा देवाने बसविले ॥
आकारातून निराकार कसे समजून घ्यायचे॥

आकार जिथे जिथे विकार तिथे तिथे ॥
विकारातून निर्विकार कसे समजून घ्यायचे॥

विकार जिथे जिथे गुण तिथे तिथे ॥
गुणात राहून निर्गुणी कसे समजून घ्यायचे॥

गुण जिथे जिथे द्रवैत तिथे तिथे॥

द्वैतातून परम अद्वैत कसे समजून घ्यायचे॥

द्वैत जिथे जिथे भ्रम तिथे तिथे॥
भ्रमात राहून परमात्म कसे समजून घ्यायचे॥

देवा शक्य कसे होईल आम्हा सर्व असे हे ॥
अरे आम्ही दुर्बल खेळवले की मायेने॥

थकले भागले कित्येक जन्म गेले ॥
परि देवा आम्ही तुज ना जाणले ॥

आता श्रीसद्गुरूचरणी सर्वस्व वाहीले॥
तूच कर्ता करविता आम्ही हात टेकले ॥

देवा तुझे हृदय कल्लोळ कृपा प्रेमाचे॥
सामावून घे आम्हा..
जरी असलो पुतळे इथे असंख्य पापांचे ॥

479. मी निघाले ग बाई

जीवरूप नववधू तिच्या ब्रह्मरूप पतीकडे निघाली आहे कारण आता त्याला सामावून घेण्याची पात्रता तिला प्राप्त झाली आहे. तिच्या सखीला ती म्हणते मी निघाले गं बाई.

इथे असूनही मी सगुण साकार सांत ॥ निर्गुण निराकार आता मज पावले गं बाई ॥

प्रत्येक स्पर्शाला मी शोषले गं बाई ॥ होऊनही स्पर्श मी अस्पर्शित राहीले बाई ॥

गंध आता विरला तिथे वायूसम तो ॥ गंधाने धुंद मन आता होत नाही बाई ॥

रस चव जरी जिव्हेवर रोज येता ॥ मन त्यास स्खलीत आता होत नाही बाई ॥

नजरेतून सदा विश्व उतरे जरी मनी ॥ पहाणारा वेगळा मी ते पाहत नाही बाई ॥

जरी ते कर्ण बहुविध श्रवण करती ॥ श्रीरामनामाविना अन्य काही ऐकू येत नाही बाई ॥

षड्रिपू आता असे झाले इथे पांगळे ॥ इच्छा वासना वृत्ती कुठे दिसेना गं बाई ॥

पाच तत्त्वातील माया अशी सहज गं सरली ॥ देहभान हरपले बाई मी जागले आत्मज्ञानी ॥

श्री गुरु चरणी ठेऊन सर्व तनमन बुद्धी ॥ मी निघाले गं माझ्या ब्रह्म पती गृही बाई ॥

मी निघाले गं माझ्या ब्रह्म पती गृही बाई ॥

480. जयाच्या हृदयी

जयाच्या हृदयी सदा तीव्र आर्त उमाळा ॥
तो पावला श्रीमहागुरुतत्त्व प्रचितीला ॥

श्रीसद्गुरू चरणी त्यांना मिळाला विसावा ॥
हाच इथे महाउत्सव नित्य महासोहळा ॥

हृदयी श्रीसद्गुरू मातृतत्त्वाचा पुतळा ॥
श्रीहरी आला तिथे त्यांच्या दर्शनाला ॥

भक्तांनी केला श्रीहरीसंगे महा संकीर्तन काला ॥
विसरलो तिथे आम्ही जन्म जीवन मृत्यूला ॥

कोण कुठल्या वृत्ती इच्छा अन वासना ॥
विसरले षड्रिपू मन विसरले त्या मनाला ॥

नुरले अस्तित्व त्या काया मन बुद्धिला ॥
कोण विचारतो आता बंध अन मोक्षाला ॥

सदा श्रीगुरुसन्मुख बसविले श्रीहरीने आम्हाला ॥
जीव सद्गुरू चरणी हा सहजी सामावला ॥

श्रीसद्गुरू सुहागण सहज ब्रह्मावस्था ॥
पती परब्रह्म तिथे महाआनंद रुपे प्रकटला ॥

ज्यांनी वर्णिले सहजी ऐसे त्या अवर्णनीयाला ॥
नमस्कार आमुचा त्या श्रीमहागुरूवाणीला ॥

481. परम तत्त्व

खरं तर जिथे कुठलीच क्रिया घडत नाही ते स्वसंवेद्य परब्रह्म तत्त्व आहे. पण ते जीवात आत्मा रुपाने आपले सर्व ते पहाते असे रुपक घेऊन झालेली रचना.

विचार बोलणे ते पाहते ॥
पाहते मन बुद्धी दृष्टी ते ॥
आसू हसू ते पाहते ॥
ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

इच्छा आकांक्षा ते पाहते ॥
पाहते वासना वृत्ती ते ॥
षड्रिपू ही सर्व दाविते ॥
ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

संवेदना ते पाहते ॥
दाविते अनुभव त्रिपुटी ते ॥
प्रतिसाद ही ते पाहते ॥
ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

सुख दुःख ते पाहते ॥
अकर्ता ते कर्ता भोक्ता दाविते ॥
अनादि ते जन्म जीवन मृत्यू पाहते ॥
ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

सर्वव्याप्त असूनही ते अस्पर्शित आहे ॥
अलिप्त आहे ते अलेप्य आहे ॥
शब्दांना फुटलेल्या अश्रूंत ते आहे ॥
ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

श्रीगुरु चरणी सदा मस्तक लीन आहे ॥
तिथे मजला त्याची चाहूल आहे ॥
त्याच्यातच सर्व सामावयाचे आहे ॥
ते अंतर्बाह्य आहे, ते स्वसंवेद्य आहे ॥

482. घेता ऐसे नाम

ईश्वराचे किंवा संतांचे किंवा सद्गुरूंचे एक दिव्य नाव नेहमी आपल्या हृदयी असे असावे की ज्याचा कधीही उच्चार करता अंगावर शहारे आणि डोळ्यात पाणी येईल. असे दिव्य नाव ही एक परम शक्ति आहे जी त्या मूळ तत्त्वाचे सगुण स्वरूपातील आलंबन असते. असे दिव्य नाव आपल्याला त्या मूळ अद्वैत परम शक्ति सह घट्ट जोडते. असे दिव्य नाव मायेचे सर्व बंध तोडते. मन विशुद्ध करते. आणि शेवटी त्या परम तत्त्वात आपल्याला मिसळून टाकते. श्रीहरी चरणी समर्पित ॥

नाम एक मनी असावे प्रिय श्रीहरीचे ॥
भाग्यात असावी प्राप्ती श्रीसद्गुरूमुखे ॥

घेता ऐसे नाम ते अंग अंग शहारावे ॥
घेता ऐसे नाम नकळत नयनी अश्रू यावे ॥

ऐसे नाम आहे ते आलंबन परम तत्त्वाचे ॥
या नामात सामावले ते अद्वैत तत्त्व जगाचे ॥

नाम स्मरणास लाभले अधिष्ठान विज्ञानाचे ॥
अंतर्बाह्य स्वरूप बदले जीवाच्या अणुरेणूंचे ॥

या नामी मन ते सात्विक विशुद्ध होतसे ॥
या नामी सहजी ते भवबंध तुटतसे ॥

या नामी साक्षात परम तत्त्व प्रकटतसे ॥
या नामी जीव त्यात सामावून जातसे ॥

ऐसा हा नामाचा महिमा नामातची आहे ॥
नाम घेऊनी नाम होऊनी अंती नामालाच मिळावे ॥

श्री हरी चरणी समर्पित ॥

सुंदर नाम तिहारो राम ॥
तुमरे चरण मस्तक अर्पण ॥
तुम ही के गुण गान ॥
श्रीराम जय राम जय जय राम ॥

बिरहा बिरहा बहे आसुवन ॥
कब आवोगे मेरे मनभावन ॥
तनमन खोए खोए मान अपमान ॥
श्रीराम जय राम जय जय राम ॥

गुरु पुरे की बाणी राम ॥
गुरु पुरे का उपदेस राम ॥
गुरु पुरे के आशिष राम ॥
श्रीराम जय राम जय जय राम ॥

(गुरु पुरे म्हणजे पूर्णातिपूर्ण ब्रह्म स्वरुप गुरु)

484. परब्रह्म अद्वितीय...

अद्वैत चिंतन

माझ्यामध्ये सर्व ब्रह्मांड आहे पण त्याचा मला पत्ता किंवा संग नाही. पण आता एक पायरी खाली उतरून माझं मीपण भोगणारा कोण हे मी पहातोय. शरीर आणि मन यासह (संवेदना जाणून घ्यायच्या अंतःकरणाच्या पाच क्षमता (क्वांटम शास्त्रानुसार क्षमता धारण करणारी उर्जा तिच्या पुंजीय स्वरूपात शून्यातून निर्माण होते), पंचप्राण, पंचमहाभूते, पंचज्ञानेंद्रिये आणि पंचकर्मेन्द्रिये अशी ही पंचवीस तत्वे) २५ उर्जा तत्वे एकत्र येऊन एक जीवरूप समुच्चय निर्माण झाला. ही प्रत्येक उर्जा तत्त्व स्वतंत्रपणे निर्गुणच आहेत पण माझे चैतन्य या उर्जा समुच्चयात प्रकट झाले आणि त्या मनाला मात्र या विश्वात सगुणाचा आभास निर्माण झाला आणि त्याचा संग त्याला जडला. तो जीव म्हणजे मी नव्हे. पण तो जीव स्वतःला मी म्हणतो. त्या मनाने २५ उर्जा तत्वांच्या सहवासात तयार केलेला मी सगुण स्वरूप निरीक्षक आहे तर मी त्यापासून अलेप्य आहे. "समुच्चयात सगुणत्व" हा विश्व सिध्दांत आहे. मी कोणत्याही समुच्चयाचा भाग नाही, म्हणून मला सगुणत्वाची बाधा नाही. "एकतत्वात निर्गुणत्व" हा ब्रह्म सिध्दांत आहे. मी निर्गुण, निराकार, निरहंकार, निर्विकार व अनंत आहे असे तो जीवाचा मी म्हणतो पण मला त्याची जाणीव नाही. आणि त्या जीवाच्या मी ला ही सर्व वैशिष्ट्ये जाणण्यासाठी इंद्रिये नाहीत म्हणून तोसुद्धा त्या वैशिष्ट्यांना जाणू शकत नाही. मी माझ्यासह सर्व ब्रह्मांडांना अज्ञेय आहे. म्हणून हा अज्ञेय-नाद त्याने सोडावा. उर्जा समुच्चयातून निर्माण झालेल्या सगुणापासून जीवाच्या मी ने अलिप्त राहून मला चिंतावे. प्रथम स्वतःला आकाश स्वरूप मानून मला तेथे चिंतावे. पूरक श्वासांनी आकाशाला आत घ्यावे आणि रेचक श्वासांनी सोडून मधल्या बाह्य कुंभक अवधीत मला निश्चित करावे. (आत घेतला जाणारा श्वासरूप पूरक, बाहेर सोडला जाणारा प्रश्वासरूप रेचक आणि दरम्यान काही काळची स्तब्धता म्हणजे बाह्य-कुंभक होय.) आकाशाच्या अनंत व्याप्तीला मी अर्थ प्रदान करतो म्हणून मी आकाशाहून अलिप्त आहे, असा भाव निश्चित करावा. आणि त्याचे चिंतन करावे. हा भाव त्या जीवरूप मी ला मदस्वरूप करेल. मी त्या जीवाच्या मी सह सतत आहे. आभासी सत्य अशा भवतापांपासून सुटण्यासाठी त्याने मला प्रकट करावे इतकेच सांगणे.

द्वैताद्वैत चिंतन

ज्यांना हे जमणार नाही त्यांनी माझे शुध्द सात्विक स्वरूप म्हणून ईश्वरीय सगुण अधिष्ठान चिंतावे. क्रियाकर्म नाममात्र ठेवावे. तिथे भक्तीमार्गाने जाऊन मनाचा भक्तीमध्ये लय साधावा. तत्क्षणी मनाचा मी लय पावेल आणि मी तिथे प्रकट होईल. दोन्ही मार्गाने तो जीव मदस्वरूप होऊ शकतो. पण तेव्हा जीवाचा मी त्या जीवात नसल्याने मी अ-जाणता किंवा अज्ञेय म्हणून त्या जीवात प्रकट होईल. जीवाचे जन्म मृत्यू कायमचे मिटतील. जो जीव त्याच्यातील २५ उर्जा तत्वांपासून अलिप्त झाला तो कायम प्रज्ञांत, प्रज्ञावान, कारुण्यसिंधू आणि सतशील असा प्रतित होईल. तरीही माझे वर्णन करण्यास तो मुका असेल. आता ती २५ उर्जा तत्वे निर्गुण तत्वात विलीन होतील. कारण त्यांच्या समुच्चयात सगुणत्वाचा आभास निर्माण करणारा जीवाचा निरीक्षक मी आता तिथे नाही.

इथे मराठी भाषेचे वैभव इतके की माझी प्रत्येक ओळीच्या शेवटी "य" यावा ही इच्छा पूर्ण झाली.

परब्रह्म तत्त्व अद्वितीय...

परब्रह्म तत्त्व अद्वितीय अप्रमेय
त्याच्यासह सकळांसी ते असे अज्ञेय ॥धृ॥

महाउर्जेचा पंचवीस तत्त्व समुच्चय
त्यात विलसे ब्रह्म होऊन जीवाचे चैतन्य

"समुच्चयात सगुणत्व" सिध्दांत हा विश्वमय
"एकत्वात निर्गुणत्व" परमतत्त्व हे ब्रह्ममय

ब्राह्मानुरोधे हे विश्व असे जे आभासमय
जीवानुरोधे ते विश्व प्रखर वास्तव सत्य

ब्रह्मास ना ठावे ते सर्वव्याप्त अन अलेप्य
ओळखण्या ते नसे जीवास कुठले इंद्रिय

जीव जर जाणे सगुणापासोनी तो अन्य
धारण जर करील जीवनी प्रखर वैराग्य

जर ना चुकवे कधी कुंभक तो बाह्य
प्रकटेल अंतर्यामी ब्रह्मभाव एक अनन्य

अर्थबोधन आकाशाचे जेव्हा प्रकाशे चैतन्य
आकाशाहून ब्रह्म अलिप्त ऐसा व्हावा दृढनिश्चय

ऐसे करावे चिंतन जरी ते ब्रह्म अचिंत्य
होईल जीव ब्रह्ममय ते एक परम सत्य

जो साधक न जाणे श्रुती-अद्वैतभाष्य
चिंतावे मनी सुंदर अधिष्ठान ईश्वरीय

भक्ती होता अनन्य तेथे मनाचा होईल लय
प्रकटेल तिथे ते ब्रह्म जरी असती ते अज्ञेय

485. महाप्रसाद ...

हा परमार्थ ज्ञान एक महाप्रसाद
शमवृत्ती मम मानस प्रमाद , आज मज भेटला गा ॥1॥

येथे न काही चाले देहबुद्धी
श्रीगुरुकृपे प्रकटावी हो इथे आत्मसिद्धी ॥2॥

तेथे व्हावी मम बुद्धी हो आंधळी
कोटी सूर्य तेजात ती जाऊनी मिळावी ॥3॥

अकर्ता अकर्मी होऊनी न काही होई
ऐसे ते अनिर्वचनिय इथे प्रकटावे काही ॥4॥

म्हणोनी अर्पिले तनमन या विरहाग्री
तुम्ही माझे नाथ सद्गुरु, नतनत मी तव चरणी ॥5॥

486. आभार श्रीगुरुंचे

अवघा सागर हा परम ज्ञानाचा
पुतळा प्रज्ञा, शील अन करुणेचा

जो असे शरण सदा त्या दिव्यत्वाला
आम्ही नतमस्तक ऐशा श्रीगुरुरूपाला

लाभो ऐसे श्रीगुरुजन सर्व साधकांना
विनम्र हे मागणे आमुचे असे ईश्वराला

श्रीगुरू साक्षात अवतार परमेश्वराचा
जो अलगद नेईल पल्याड त्या शून्याच्या

आभार श्रीगुरुंचे मानती साधक हे सदा
ज्यांनी घालविले आमुच्या अहंकाराला

प्रणाम आमुचा श्रीगुरुराया तुम्हा
प्रणाम श्रीगुरुराया...